जनवरी - मार्च, 2012 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (1947 का 2) – धारा 19 – अभियोजन की मंजूरी – लोक सेवक की सेवानिवृत्ति के पश्चात् संज्ञान – यदि लोक सेवक के सेवा में रहने के दौरान अभियोजन की मंजूरी देने से इनकार कर दिया जाता है तो उसे उसकी सेवानिवृत्ति के पश्चात् अभियोजित नहीं किया जा सकता है ।

चितरंजन दास बनाम **उड़ीसा राज्य** 98

संसद् के अधिनियम

किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ
(1) – (25) क्रमशः

पृष्ठ संख्या 1 – 174 **[2012] 1 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – जनवरी - मार्च, 2012 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 174]

संपादक-मंडल

श्री विनोद कुमार भसीन,
सचिव, भारत सरकार

श्री एन. एल. मीना,
अपर सचिव, भारत सरकार

श्रीमती शारदा जैन,
संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी

डा. बी. एन. मणि,
अधिवक्ता, (पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, विधिक अध्ययन विद्यापीठ, लखनऊ

डा. वैभव गोयल संकायाध्यक्ष,
सरदार पटेल सुभारती इंस्टीट्यूट, ऑफ लॉ, मेरठ, उ.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, उपाध्यक्ष एवं कुल सचिव, भारतीय अनुवाद परिषद्, दिल्ली

डा. सुरेन्द्र शर्मा, प्राचार्य,
विधि विभाग, डी. आई. आर. डी. गुरु गोविन्द सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड, दिल्ली

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन दिल्ली

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. एम. सी. पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, गोविन्द लाल बतरा, एम. पी. सिंह, जसवन्त सिंह और बी. के. भटनागर

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2012 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जनवरी - मार्च, 2012

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **बनाम** भरत सिंह और अन्य	1
गोपाल **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य	67
चितरंजन दास **बनाम** उड़ीसा राज्य	98
झारखंड राज्य और अन्य **बनाम** अशोक कुमार डांगी और अन्य	107
बीनाबाई भाटे **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य और अन्य	124
भारत संघ और अन्य **बनाम** विक्रमभाई मगनभाई चौधरी	89
मध्य प्रदेश राज्य **बनाम** शंकर लाल और अन्य (देखिए पृष्ठ सं. 67)	
रंगकू दत्ता **उर्फ** रंजन कुमार दत्ता **बनाम** असम राज्य	75
राजस्थान राज्य और एक अन्य **बनाम** जे. के. सिंथेटिक्स लिमिटेड और एक अन्य	133
शेहला बर्नी (डा.) और अन्य **बनाम** सैयद अली मूसा राजा (मृतक) [विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से] और अन्य	55
सुदाम **उर्फ** राहुल कनीराम जाधव **बनाम** महाराष्ट्र राज्य	164
हरजीत सिंह **बनाम** पंजाब राज्य	43

संसद् के अधिनियम

किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (25)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987

– धारा 20-क(1) और 19 [सपठित दंड संहिता, 1860 – धारा 120-ख] – प्रथम इत्तिला सूचना अभिलिखित किए जाने के पूर्व पुलिस उपाधीक्षक से पूर्व अनुमोदन प्राप्त करना आज्ञापक है – पूर्व अनुमोदन मौखिक रूप से प्राप्त किया जा सकता है – प्रथम इत्तिला सूचना अभिलिखित किए जाने के समय पुलिस उपाधीक्षक से पूर्व अनुमोदन न होने पर यद्यपि तत्पश्चात् अन्वेषण पुलिस उपाधीक्षक द्वारा ही किया गया हो यह नामंजूर किए जाने को दायी है और त्रुटि सुधार किए जाने का अभिवाक् अस्वीकार्य है तथा कार्यवाहियां दूषित होने के आधार पर अपीलार्थी की दोषमुक्ति की गई ।

रंगकू दत्ता उर्फ **रंजन कुमार दत्ता** बनाम **असम राज्य** 75

उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980

– धारा 13, 6 और 8 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 154] – आयोग द्वारा किए गए चयन की विधिमान्यता के बारे में जांच संस्थित करने की शक्ति – राज्य सरकार द्वारा शिकायतें प्राप्त होने पर ऐसी जांच संस्थित करना और व्यथित अभ्यर्थियों द्वारा उसी चयन प्रक्रिया की विधिमान्यता को चुनौती देने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल करना – चूंकि उच्च न्यायालय ने राज्य के काउन्सेल को यह अवसर दिया था कि वह इस संबंध में अनुदेश प्राप्त करे कि क्या सरकार इस मामले में आगे जांच कराना चाहती है किन्तु काउन्सेल ने राज्य सरकार से इस संबंध में कोई अनुदेश प्राप्त होने के बारे में रिपोर्ट नहीं की इसलिए उच्च न्यायालय का

पृष्ठ संख्या

जांच अधिकारी की नियुक्ति करने वाले आदेश तथा उसके द्वारा जारी किए गए नियुक्तियां न करने संबंधी अनुदेशों को अभिखंडित करना सही है क्योंकि उन्ही प्रश्नों के संबंध में सरकार के स्तर पर समानांतर जांच अनावश्यक होगी ।

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम **भरत सिंह और अन्य** 1

केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965

– नियम 29 – अनुशासनिक कार्यवाही – अपील प्राधिकारी द्वारा अनुशासनिक प्राधिकारी के आदेश का नियम 29(1)(vi) के अधीन पुनर्विलोकन – पुनर्विलोकन कार्यवाहियों को चुनौती – अधिकरण द्वारा पुनर्विलोकन संबंधी अधिसूचना को इस आधार पर अभिखंडित करना कि उसमें पुनर्विलोकन के लिए कोई समय-सीमा विनिर्दिष्ट नहीं की गई – यदि अधिसूचना में ऐसी कोई समय-सीमा विनिर्दिष्ट नहीं की जाती है जिसके भीतर विनिर्दिष्ट प्राधिकारी नियम 29(1)(vi) के अधीन पुनर्विलोकन शक्ति का प्रयोग कर सकता है तो वह अधिसूचना नियम 29 के निबंधनानुसार नहीं होगी और अधिकरण का उसे अभिखंडित करना पूर्णतः न्यायोचित होगा ।

भारत संघ और अन्य बनाम **विक्रमभाई मगनभाई चौधरी** 89

खनिज रियायत नियम, 1960

– नियम 64-क, 31 और 27 – खनन पट्टे की बाबत स्वामिस्व – स्वामिस्व के बकाया पर ब्याज – क्या नियम 64 में प्रयुक्त "24 प्रतिशत की दर से साधारण ब्याज प्रभारित कर सकेगी" शब्द प्रभारित की जाने वाली दर के संबंध में राज्य में विवेकाधिकार निहित करते हैं – नियम 64-क में "सकेगी" शब्द का प्रयोग राज्य सरकार को प्रभारित किए जाने वाले ब्याज की दर के संबंध में

पृष्ठ संख्या

विवेकाधिकार देने के संदर्भ में नहीं किया गया है बल्कि इसका प्रयोग उसे पट्टे का पर्यवसान करने या 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज प्रभारित करने के संबंध में विकल्प प्रदान करने के लिए किया गया है ।

राजस्थान राज्य और एक अन्य बनाम **जे. के. सिंथेटिक्स लिमिटेड और एक अन्य** 133

खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 (1957 का 67)

– धारा 9(3) [सपठित खनिज रियायत नियम, 1960 का नियम, 64-क] – खनन पट्टे की बाबत स्वामित्व के बकाया पर ब्याज – राज्य सरकार की 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज की मांग को उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की सीमा तक स्वीकार करना – अंतर-न्यायालीय अपीलों में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा एकल न्यायाधीश के आदेश को महाधिवक्ता की स्वीकृति/रियायत पर आधारित मानकर यह अभिनिर्धारित करना कि एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती – चूंकि महाधिवक्ता ने केवल यह निवेदन किया था कि राज्य सरकार 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज की हकदार है और एकल न्यायाधीश की यह मताभिव्यक्ति कि राज्य सरकार को विलंबित संदायों पर कम से कम 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज मिलना चाहिए, एकल न्यायाधीश की एक मताभिव्यक्ति मात्र है न कि महाधिवक्ता द्वारा दी गई कोई रियायत इसलिए ऐसा कथन राज्य सरकार द्वारा एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती देने के मार्ग में बाधक नहीं होगा यदि उसके मतानुसार वह उच्चतर दर पर ब्याज प्राप्त करने की हकदार है ।

राजस्थान राज्य और एक अन्य बनाम **जे. के. सिंथेटिक्स लिमिटेड और एक अन्य** 133

पृष्ठ संख्या

– धारा 9(3) [सपठित खनिज रियायत नियम, 1960 का नियम 64-क] – स्वामिस्व के बकाया पर ब्याज – उच्च न्यायालय के अंतरिम आदेशों द्वारा बढ़ी हुई दरों पर स्वामिस्व की वसूली करने पर रोक – मामला अंततः खारिज हो जाने पर अंतरिम आदेशों के कारण विधारित स्वामिस्व के अंतर पर ब्याज संदत्त करने की मांग – जब दर या टैरिफ में पुनरीक्षण के संबंध में कोई अंतरिम रोकादेश किया जाता है, तब जब तक अंतरिम रोकादेश या रिट याचिका को खारिज करने वाले अंतिम आदेश में अन्यथा विनिर्दिष्ट नहीं किया जाता है, रिट याचिका के खारिज या अंतरिम आदेश के बातिल हो जाने पर अंतरिम आदेश के फायदाग्राही को उस रकम पर, जो अंतरिम आदेश के कारण विधारित की गई है या संदत्त नहीं की गई है, ब्याज का संदाय करना होगा और जहां कानून या संविदा में ब्याज की दर विनिर्दिष्ट की गई है वहां प्रायः उसी दर पर ब्याज का संदाय करना होगा तथा जहां ब्याज के संदाय के लिए कोई कानूनी या संविदात्मक उपबंध न हो वहां भी न्यायालय को अंतरिम रोकादेश को बातिल करते समय या रिट याचिका को खारिज करते समय जब तक ऐसा न करने के लिए विशेष कारण न हों, प्रत्यास्थापन के तौर पर किसी युक्तियुक्त दर पर ब्याज का संदाय करने का निदेश देना होगा ।

राजस्थान राज्य और एक अन्य बनाम **जे. के. सिंथेटिक्स लिमिटेड और एक अन्य** 133

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 – हत्या – विरल से विरलतम मामला – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अपनी पहली पत्नी तथा चार बच्चों की निर्मम हत्या कर पोखर में फेंक देना – अभियुक्त का एक अन्य महिला से अवैध संबंध होना तथा पहली पत्नी और बच्चों से पीछा छुड़ाने के लिए सभी की क्रूर और

पृष्ठ संख्या

जघन्य रीति में हत्या करना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को मृत्युदंड दिया गया जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई – मामला विरल से विरलतम मामलों की श्रेणी में आता है क्योंकि अपीलार्थी अपनी पहली पत्नी और बच्चों को पोखर के पास लाया और गला दबाकर बच्चों की हत्या करने के पश्चात् पोखर में फेंककर पहली पत्नी की सुनियोजित रीति में सिर कुचलकर हत्या करके शव को पत्थर से बांधकर पोखर में फेंक दिया – साक्षियों के समक्ष की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति तथा पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला पूरी होने पर मृत्युदंड की शास्ति उचित ठहराते हुए निचले न्यायालयों के निर्णय की पुष्टि की गई ।

सुदाम उर्फ **राहुल कनीराम जाधव** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 164

– धारा 302/149, 304 भाग (I), 147, 148, 323/149 – हत्या – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता पक्ष द्वारा हमला किए जाने पर अपनी प्रतिरक्षा में हमला करना जिसमें मृतक की उसे पहुंची क्षतियों के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई – उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की दोषसिद्धि को धारा 302 से धारा 304 भाग (I) में सही तौर पर परिवर्तित किया गया – अपीलार्थी द्वारा पहले ही भोगी जा चुकी अवधि तक दंडादेश सीमित किया गया ।

गोपाल बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 67

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (1947 का 2)

– धारा 19 – अभियोजन की मंजूरी – लोक सेवक की सेवानिवृत्ति के पश्चात् संज्ञान – यदि लोक सेवक के सेवा में रहने के दौरान अभियोजन की मंजूरी देने से इनकार कर दिया जाता है तो उसे उसकी सेवानिवृत्ति के पश्चात् अभियोजित

पृष्ठ संख्या

नहीं किया जा सकता है ।

चितरंजन दास बनाम **उड़ीसा राज्य** 98

मध्य प्रदेश नगर तथा ग्राम निवेश अधिनियम, 1973

– धारा 17, 18, 19 और 23क – प्रारूप विकास योजना का प्रकाशन – समिति द्वारा योजना के आक्षेपकर्ता के आक्षेपों को स्वीकार करते हुए संकल्प पारित करना – राज्य सरकार द्वारा प्रारूप विकास योजना को किसी उपांतरण के बिना अनुमोदित करना – पुनर्विलोकन – समिति द्वारा पारित संकल्प आत्यांतिक, अंतिम और बाध्यकारी नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि किसी विकास योजना का अनुमोदन करने के विषय में अंतिम प्राधिकार राज्य सरकार के पास होता है ।

बीनाबाई भाटे बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** 124

– धारा 23 और 23क – अंतिम विकास योजना का अनुमोदन – पुनर्विलोकन – पुनर्विलोकन की शक्ति कानून द्वारा सृजित की जाती है जिसके लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध करना होता है और किसी अधिनियम के उपबंधों में पुनर्विलोकन की ऐसी शक्ति के अभाव में पुनर्विलोकन से इनकार करना न्यायोचित होगा ।

बीनाबाई भाटे बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** 124

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14, 15 और 16 [सपठित उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 की धारा 14, 11, 12, 13, 15, 32 और 31 तथा उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की धारा 3]

पृष्ठ संख्या

– सहायताप्राप्त और सहबद्ध डिग्री और स्नातकोत्तर संस्थाओं में प्रधानाचार्य के पद पर आरक्षण – विभिन्न सहायताप्राप्त और सहबद्ध डिग्री और स्नातकोत्तर संस्थाओं में प्रधानाचार्यों के पद का कोई काडर नहीं है और प्रत्येक संस्था में प्रधानाचार्य का एकल पद होने के कारण वह पद किसी प्रकार के आरक्षण के अध्यधीन नहीं हो सकता है क्योंकि पद की अंतर-परिवर्तनीयता और पदधारियों का उसी काडर के किसी अन्य पद पर स्थानांतरण किसी काडर के आवश्यक लक्षण होते हैं जो कि प्रधानाचार्य के पद की दशा में नहीं है ।

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम **भरत सिंह और अन्य** 1

– अनुच्छेद 16 [सपठित झारखंड प्राथमिक अध्यापक नियुक्ति नियम, 2002 का नियम 2(ख)(वर्ष 2003 में यथा-संशोधित)] – प्राथमिक विद्यालय अध्यापक के पदों पर नियुक्ति – व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापक के रूप में नियुक्ति के लिए पात्रता – उच्च न्यायालय द्वारा किसी सरकारी नीति के अभाव में प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के 5 प्रतिशत पद व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों में से भरने का निदेश देना नीति विरचित करने की कोटि में आएगा और नीति संबंधी विषय में ऐसा कोई निदेश देना अनुचित है ।

झारखंड राज्य और अन्य बनाम **अशोक कुमार डांगी और अन्य** 107

– अनुच्छेद 133 [सपठित झारखंड प्राथमिक विद्यालय नियुक्ति नियम, 2002 का नियम 2(ख)(2003 में यथा-संशोधित)] – नया अभिवाक् – राज्य सरकार को प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के 5 प्रतिशत पद व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों में से भरने संबंधी निदेश को चुनौती – व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा यह अभिवाक् करना कि संशोधित

पृष्ठ संख्या

नियम 2(ख) इससे पूर्व विज्ञापित पदों को लागू नहीं होगा – चूंकि राज्य ने संशोधित उपबंध के अनुरूप विज्ञापन का शुद्धिपत्र जारी कर दिया था और प्रत्यर्थियों ने इस पर कोई आक्षेप किए बिना चयन प्रक्रिया में भाग लिया था इसलिए प्रथम बार उच्चतम न्यायालय में उठाए गए उनके अभिवाक् पर विचार नहीं किया जा सकता है ।

झारखंड राज्य और अन्य बनाम **अशोक कुमार डांगी और अन्य** 107

– अनुच्छेद 136 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, आदेश 6, नियम 2 और आदेश 7, नियम 5 और 7] – उच्चतम न्यायालय में अपील – नया अभिवाक् उठाया जाना – मुद्दा मामले की जड़ तक जाना जिस पर विचार करने के लिए तथ्यों के आगे के अन्वेषण की कोई आवश्यकता नहीं – मुद्दा उच्चतम न्यायालय में प्रथम बार उठाया जा सकता है ।

शेहला बर्नी (डा.) और अन्य बनाम **सैयद अली मूसा राजा (मृतक) [विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से] और अन्य** 55

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 7, नियम 5 और 7 – कब्जा प्राप्त करने के लिए वाद – आलिप्त किए गए पक्षकार जिसके विरुद्ध राहत का दावा नहीं किया, के विरुद्ध राहत प्रदान किए जाने का दावा अननुज्ञेय है – कब्जे के लिए वाद मूल रूप से केवल मूल प्रतिवादी सं. 1 के हितपूर्वाधिकारी के विरुद्ध ही संस्थित किया गया – बाद में वादपत्र संशोधित करते हुए प्रतिवादी सं. 2 अपीलार्थियों के हित पूर्वाधिकारी को मूल या संशोधित वादपत्र में आलिप्त किया गया – विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया गया किन्तु उच्च न्यायालय ने वादियों को कब्जे की डिक्री का हकदार

पृष्ठ संख्या

अभिनिर्धारित किया – पोषणीयता – न्यायालय को ऐसे प्रतिवादी के विरुद्ध राहत प्रदान किए जाने की कोई अधिकारिता नहीं है जिसके विरुद्ध किसी राहत का दावा नहीं किया गया है – चूंकि प्रतिवादी सं. 2 के विरुद्ध किसी राहत का दावा नहीं किया गया था इसलिए वर्तमान अपीलार्थियों के हित पूर्वाधिकारी के विरुद्ध किसी राहत का दावा नहीं किया जा सकता – उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त करते हुए विचारण न्यायालय का निर्णय बहाल किया गया ।

शेहला बर्नी (डा.) और अन्य बनाम **सैयद अली मूसा राजा (मृतक) [विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से] और अन्य** 55

स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985

– धारा 18 [सपठित धारा 2(xv)] – अपीलार्थी-अभियुक्त के पास अफीम पाया जाना – पाई गई अफीम की मात्रा, विहित न्यूनतम मात्रा से अधिक होना तथा वाणिज्यिक मात्रा पाया जाना किंतु अपीलार्थी व्यौहारी नहीं था – अपीलार्थी-अभियुक्त की निचले न्यायालयों द्वारा की गई दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

हरजीत सिंह बनाम **पंजाब राज्य** 43

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2012] 1 उम. नि. प.

जनवरी-मार्च, 2012

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.	ए. आई. आर. (एस. सी.)	एस. सी. सी.
1	2	3	4	5
1.	उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **बनाम** भरत सिंह और अन्य (8 मार्च, 2011)	[2011] 1 1	- -	(2011) 4 120
2.	हरजीत सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (30 मार्च, 2011)	43	- -	4 441
3.	शेहला बर्नी (डा.) और अन्य **बनाम** सैयद अली मूसा राजा (मृतक) [विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से] और अन्य (21 अप्रैल, 2011)	55	- -	6 529
4.	गोपाल **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य तथा मध्य प्रदेश राज्य **बनाम** शंकर लाल और अन्य (19 मई, 2011)	67	2011 2325	6 354
5.	रंगकू दत्ता **उर्फ** रंजन कुमार दत्ता **बनाम** असम राज्य (20 मई, 2011)	75	2011 2321	6 358

1	2	3	4	5
6.	भारत संघ और अन्य **बनाम** विक्रमभाई मगनभाई चौधरी (1 जुलाई, 2011)	[2011] 1 89	– –	(2011) 7 321
7.	चित्तरंजन दास **बनाम** उड़ीसा राज्य (4 जुलाई, 2011)	98	2011 2893	7 167
8.	झारखंड राज्य और अन्य **बनाम** अशोक कुमार डांगी और अन्य (4 जुलाई, 2011)	107	2011 3182	13 383
9.	बीनाबाई भाटे **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य और अन्य (4 जुलाई, 2011)	124	– –	13 32
10.	राजस्थान राज्य और एक अन्य **बनाम** जे. के. सिंथेटिक्स लिमिटेड और एक अन्य (4 जुलाई, 2011)	133	– –	12 518
11.	सुदाम **उर्फ** राहुल कनीराम जाधव **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (4 जुलाई, 2011)	164	– –	7 125

[2012] 1 उम. नि. प. 1

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

बनाम

भरत सिंह और अन्य

8 मार्च, 2011

न्यायमूर्ति वी. एस. सिरपुरकर और न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14, 15 और 16 [सपठित उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 की धारा 14, 11, 12, 13, 15, 32 और 31 तथा उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की धारा 3] – सहायताप्राप्त और सहबद्ध डिग्री और स्नातकोत्तर संस्थाओं में प्रधानाचार्य के पद पर आरक्षण – विभिन्न सहायताप्राप्त और सहबद्ध डिग्री और स्नातकोत्तर संस्थाओं में प्रधानाचार्यों के पद का कोई काडर नहीं है और प्रत्येक संस्था में प्रधानाचार्य का एकल पद होने के कारण वह पद किसी प्रकार के आरक्षण के अध्यधीन नहीं हो सकता है क्योंकि पद की अंतर-परिवर्तनीयता और पदधारियों का उसी काडर के किसी अन्य पद पर स्थानांतरण किसी काडर के आवश्यक लक्षण होते हैं जो कि प्रधानाचार्य के पद की दशा में नहीं है ।

उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 – धारा 13, 6 और 8 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 154] – आयोग द्वारा किए गए चयन की विधिमान्यता के बारे में जांच संस्थित करने की शक्ति – राज्य सरकार द्वारा शिकायतें प्राप्त होने पर ऐसी जांच संस्थित करना और व्यथित अभ्यर्थियों द्वारा उसी चयन प्रक्रिया की विधिमान्यता को चुनौती देने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल करना – चूंकि उच्च न्यायालय ने राज्य के काउन्सेल को यह अवसर दिया था कि वह इस संबंध में अनुदेश प्राप्त करे कि क्या सरकार इस मामले में आगे जांच कराना चाहती है किन्तु काउन्सेल ने राज्य सरकार से इस संबंध में कोई अनुदेश प्राप्त होने के बारे में रिपोर्ट नहीं की

इसलिए उच्च न्यायालय का जांच अधिकारी की नियुक्ति करने वाले आदेश तथा उसके द्वारा जारी किए गए नियुक्तियां न करने संबंधी अनुदेशों को अभिखंडित करना सही है क्योंकि उन्ही प्रश्नों के संबंध में सरकार के स्तर पर समानांतर जांच अनावश्यक होगी ।

उत्तर प्रदेश सरकार ने उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा अधिनियम (यू. पी. हायर एजूकेशन सर्विसिज़ ऐक्ट), 1980 की धारा 3 के निबंधनों के अनुसार 'उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग' के रूप में ज्ञात एक आयोग की स्थापना की है । आयोग अधिनियम के अधीन उसे सौंपे गए अन्य कृत्यों के साथ-साथ महाविद्यालयों में अध्यापकों की भर्ती की पद्धति और परीक्षाएं संचालित करने से संबंधित दिशानिर्देश तैयार करने, साक्षात्कार लेने और अध्यापकों के रूप में नियुक्त किए जाने वाले अभ्यर्थियों का चयन करने और चयनित अभ्यर्थियों की नियुक्ति के संबंध में संबंधित प्रबंधमंडलों को सिफारिशें करने के लिए सशक्त है । तथापि, आयोग द्वारा अपनाई जाने वाली चयन प्रक्रिया केवल उन महाविद्यालयों तक सीमित है जिन्हें विश्वविद्यालय द्वारा सहबद्धता या मान्यता के विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं जिनमें वे महाविद्यालय भी हैं जो स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा चलाए जाते हैं । वे महाविद्यालय, जो राज्य सरकार द्वारा चलाए जाते हैं या वे महाविद्यालय, जो चिकित्सा शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, ऊपर उल्लिखित अधिनियम के कार्यक्षेत्र से बाहर हैं । आयोग द्वारा एक समेकित विज्ञापन जारी किया गया था जिसके द्वारा उक्त विज्ञापन में उल्लिखित रिक्तियों के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए थे । उक्त विज्ञापन को चुनौती देते हुए अनेक रिट याचिकाएं उच्च न्यायालय के समक्ष प्रमुख रूप से इस आधार पर फाइल की गई थीं कि आयोग द्वारा अधिसूचित उपलब्ध प्रधानाचार्यों के पद विश्वविद्यालय से सहबद्ध भिन्न-भिन्न महाविद्यालयों में थे जो कि उस काडर में एकल पद थे और वे आरक्षण के अधीन नहीं आते थे । ये रिट याचिकाएं उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण कर ली गई थीं अंतरिम आदेशों द्वारा आयोग को इस आशय के निदेश जारी किए गए थे कि प्रधानाचार्य के पद अनारक्षित पद माने जाएंगे । आयोग ने उपरोक्त निदेशों का अनुपालन करते हुए एक नया विज्ञापन जारी किया था, जिसके द्वारा प्रधानाचार्यों के 140 पदों के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए थे जिनमें से 87 पद स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में उपलब्ध थे जबकि अन्य 53 पद डिग्री महाविद्यालयों में थे । उस विज्ञापन में किसी प्रकार के आरक्षण का कोई उल्लेख नहीं था जिसका अभिप्राय यह था कि वे पद सामान्य/खुले योग्यता प्रवर्ग में प्रस्थापित किए गए थे । संपूर्ण चयन प्रक्रिया उच्च न्यायालय के समक्ष

लंबित रिट याचिकाओं के अंतिम निर्णय के अधीन थी । यह सामान्य आधार है कि उच्च न्यायालय के अंतरिम आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिकाएं फाइल करके चुनौती दी गई थी किन्तु उक्त याचिकाएं इस न्यायालय द्वारा विलंब और प्रमाद के आधार पर खारिज कर दी गई थीं । आयोग ने चयन प्रक्रिया पूरी करने में लगभग दो वर्ष का समय लिया जिसकी परिणति एक चयन सूची प्रकाशित करने पर हुई । चयन सूची के प्रकाशन के साथ ही उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित रिट याचिकाओं का वह समूह, जिसमें ऊपर उल्लिखित अंतरिम आदेश जारी किए गए थे, निष्फल रूप में खारिज कर दिया गया था । उच्च न्यायालय ने ऐसा करते समय आयोग की ओर से किए गए इस निवेदन का उल्लेख किया कि स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों का कोई काडर नहीं था और प्रधानाचार्यों के पद अंतर-परिवर्तनीय या अंतरणीय नहीं थे । अपीलार्थी-उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में, इससे पूर्व कि चयन सूची में सम्मिलित व्यक्तियों को नियुक्ति आदेश जारी किए जा सकते, उसके द्वारा आयोग द्वारा आयोजित चयन के विरुद्ध अनेक शिकायतें प्राप्त हुई थीं जिनमें यह अभिकथित किया गया था कि चयन प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर अनियमितताएं और गंभीर प्रकृति के अनाचार कारित किए गए थे और इस संबंध में जांच की मांग की गई थी । तदनुसार, राज्य सरकार ने प्रभागीय आयुक्त को इन अभिकथनों के संबंध में 15 दिन के भीतर जांच करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश दिया । इस पर प्रभागीय आयुक्त ने सेवा आयोग से इस जांच के संबंध में कतिपय जानकारी मांगी और उसकी एक प्रति उच्चतर शिक्षा निदेशक को यह अनुरोध करते हुए भेजी कि वह सेवा आयोग से प्राप्त सिफारिशों के अनुसार नियुक्ति आदेश जारी करने में संयम बरते । चयनित अभ्यर्थियों ने उक्त संसूचना से व्यथित होकर सरकार द्वारा जारी की गई उस अधिसूचना को, जिसके द्वारा प्रभागीय आयुक्त को जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था और उसके द्वारा शिक्षा निदेशक को चयनित अभ्यर्थियों के पक्ष में नियुक्ति आदेश जारी करने से रोकने के लिए लिखे गए पत्र को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष अनेक रिट याचिकाएं फाइल कीं । जबकि उक्त रिट याचिकाएं अभी निपटारे के लिए लंबित थीं, प्रभागीय आयुक्त ने एक प्रारंभिक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उसने प्रथमदृष्ट्या यह निष्कर्ष लेखबद्ध किया कि सेवा आयोग द्वारा चयन के अनुक्रम में अनेक अनियमितताएं और अनाचार बरते गए थे । इसी बीच, उच्च न्यायालय ने उस अधिसूचना के प्रवर्तन को रोकते हुए एक अंतरिम आदेश पारित किया जिसके द्वारा प्रभागीय आयुक्त को जांच

अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था और प्रत्यर्थी को यह निदेश दिया कि चयनित अभ्यर्थियों को तीन सप्ताह के भीतर नियुक्ति पत्र जारी किए जाएं । ऊपर निर्दिष्ट अंतरिम आदेश से व्यथित होकर, राज्य ने उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका फाइल की जिसमें इस न्यायालय ने अंतरिम निदेश पर रोक लगा दी, जहां तक उसके द्वारा उच्चतर शिक्षा निदेशक को चयनित अभ्यर्थियों के पक्ष में नियुक्ति पक्ष जारी करने का निदेश दिया गया था । इस न्यायालय द्वारा उक्त विशेष इजाजत याचिका का अंतिम रूप से निपटारा करते हुए उच्च न्यायालय से चार मास के भीतर रिट याचिकाओं का निपटारा करने का अनुरोध किया गया था । इसी बीच उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किया गया अंतरिम आदेश जारी रहा था । उच्च न्यायालय के समक्ष, सरकार ने यह कथन करते हुए रिट याचिका में प्रति-शपथपत्र फाइल किया कि प्रक्रिया में गंभीर त्रुटियां थीं और इस मामले की गहराई से जांच की जानी आवश्यक है । उच्च न्यायालय ने अंततोगत्वा रिट याचिका में आक्षेपित आदेशों को अभिखंडित करते हुए रिट याचिका मंजूर कर ली और उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग के निदेशक को चयनित अभ्यर्थियों के पक्ष में नियुक्ति आदेश जारी करने संबंधी परमादेश जारी किया । प्रस्तुत अपीलों में, उक्त आदेशों की शुद्धता को चुनौती दी गई है । इन मामलों में पारित अंतरिम आदेश द्वारा उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी-राज्य को इन अपीलों में चयनित अभ्यर्थियों-प्रत्यर्थियों को इन अपीलों के विनिश्चय के अध्यधीन रहते हुए एक मास के भीतर विभिन्न सहायताप्राप्त गैर-सरकारी डिग्री महाविद्यालयों और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में नियुक्त करने का निदेश दिया था बशर्ते प्रत्यर्थी इस न्यायालय में इस आशय के वचनबंध फाइल कर दें कि यदि वे यह लड़ाई हार जाते हैं तो वे रीडर के पद पर प्रत्यावर्तित हो जाएंगे और उनके द्वारा प्रधानाचार्यों के रूप में आहरित वेतन की रकम के अंतर की वसूली कर ली जाएगी और उसका राज्य को वापस भुगतान कर दिया जाएगा । इसी निदेश को उच्चतम न्यायालय द्वारा दोहराया गया जिसके द्वारा इस न्यायालय ने यह निदेश दिया कि यद्यपि चयन सूची में से 56 अभ्यर्थियों को विभिन्न डिग्री और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में पहले ही नियुक्त किया जा चुका है तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किए गए निदेश का उक्त आदेश की तारीख से एक मास के भीतर पूर्ण रूप से अनुपालन किया जाना चाहिए । यह विवादग्रस्त नहीं है कि राज्य ने उपर्युक्त निदेश के अनुसरण में चयनित अभ्यर्थियों को इस न्यायालय के समक्ष अपने वचनबंध फाइल करने पर नियुक्त किया है

जिसके परिणामस्वरूप सभी चयनित अभ्यर्थियों को प्रस्तुत अपीलों के परिणाम के अधीन रहते हुए और ऊपर उल्लिखित अंतरिम आदेशों में अनुबंधित शर्तों के अधीन रहते हुए सम्यक् रूप से नियुक्त कर दिया गया है । उच्चतम न्यायालय द्वारा तदनुसार आदेश करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस तथ्य का कि राज्य सरकार सहबद्ध महाविद्यालयों को ऐसी संस्थाओं में सेवा करने वाले अध्यापकों को वेतन का संदाय करने के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करती है, इस प्रश्न से कोई संबंध नहीं है कि क्या भिन्न-भिन्न प्रबंधमंडलों के अधीन विभिन्न महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों के पद एक काडर गठित करते हैं । मात्र इस कारण कि सरकार उन संस्थाओं को सहायता प्रदान करती हैं जो अन्य सब बातों में अपना कामकाज करने के लिए स्वतंत्र हैं और उनका प्रबंध उनके अपने-अपने प्रबंधमंडलों द्वारा किया जाता है, किसी भी तर्काधार पर ऐसे महाविद्यालयों में के पदों का एक ही काडर गठित करने वाली परिस्थिति के रूप में नहीं माना जा सकता है । इसी प्रकार, इस तथ्य का भी कि विभिन्न महाविद्यालयों में सेवारत ऐसे अध्यापकों की, जिनके अंतर्गत प्रधानाचार्य भी हैं, सेवा के निबंधन और शर्तें ऐसे महाविद्यालयों के एक ही विश्वविद्यालय से सहबद्ध होने और एक ही प्रकार के कानूनों, नियमों और विनियमों द्वारा शासित होने के कारण समरूप हैं, ऐसे पदों को समाविष्ट करने वाला एक ही काडर सृजित करने या विद्यमान होने से कोई संबंध नहीं है । इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि ऐसे सामान्य लक्षण ऐसी संस्थाओं के स्वतंत्र स्वरूप को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करते हैं और न ही वेतन का संदाय और कर्मचारियों की सेवा-शर्तों की समरूपता यह अभिनिर्धारित करने के लिए किसी कसौटी का उपबंध नहीं करती हैं कि यद्यपि ऐसी संस्थाओं में नियुक्त किए गए प्रधानाचार्य एक-दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र रूप में भिन्न-भिन्न संस्थाओं में सेवा कर रहे हैं, तथापि, वे एक सामान्य काडर गठित करते हैं । (पैरा 34)

प्रधानाचार्य का एक संस्था से किसी दूसरी संस्था में स्थानांतरण करने के लिए उस मामले में राज्य सरकार में या किसी अन्य प्राधिकारी में कोई शक्ति निहित नहीं है, जैसा कि वह उदाहरणार्थ सरकार द्वारा चलाई जाने वाली संस्थाओं के मामले में कर सकती है जहां एक सरकारी महाविद्यालय के प्रधानाचार्य को उसी काडर में किसी अन्य सरकारी महाविद्यालय में स्थानांतरित किया जा सकता है । उपर्युक्त नियम 4 के उपनियम (1) में किसी प्राधिकारी में स्थानांतरण की शक्ति निहित होने के बारे में उल्लेख

नहीं है । इसमें दस वर्ष की सेवा के पश्चात् संपूर्ण सेवा अवधि में केवल एक बार स्थानांतरित किसी स्थायी अध्यापक की हकदारी के बारे में उल्लेख किया गया है । उपनियम (2) में यह उपबंध है कि स्थानांतरित अध्यापक उस महाविद्यालय का कर्मचारी हो जाएगा जिसमें उसे स्थानांतरित किया गया है । इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उपनियम (4) में यह उपबंध है कि स्थानांतरित अध्यापक उस काडर में, जिसमें उसे स्थानांतरित किया जा सकता है, सबसे नीचे होगा । उस उपबंध का तब अधिक महत्व नहीं हो सकेगा जब किसी प्रधानाचार्य को एक महाविद्यालय से किसी दूसरे महाविद्यालय में स्थानांतरित करने का प्रश्न उठता है किन्तु इससे निश्चित रूप से यह दर्शित होता है कि जहां प्रधानाचार्य से नीचे वाले काडर में पदों की बहुलता होती है वहां किसी अन्य संस्था से स्थानांतरित व्यक्ति उक्त काडर में सबसे नीचे आएगा । यह भी एक ऐसी परिस्थिति है जो कि इस सिद्धांत को नकारती है कि प्रधानाचार्य एक ही काडर के भाग हैं । प्रधानाचार्यों के मामले में अंतर-परिवर्तनीयता और स्थानांतरणीयता के लक्षण उसी अनुपात में मौजूद नहीं हैं जिस अनुपात में वे निचले काडर में अध्यापकों के मामले में मौजूद हैं । अतः यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि भिन्न-भिन्न सहायताप्राप्त और सहबद्ध संस्थाओं में सेवारत प्रधानाचार्यों का कोई काडर नहीं है और प्रधानाचार्य का पद किसी संस्था में एकल पद है । ऐसे किसी पद का आरक्षण न केवल इस कारण स्पष्ट रूप से अननुज्ञेय है क्योंकि उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम [उत्तर प्रदेश पब्लिक सर्विसेज़ (रिज़र्वेशन फॉर शेड्यूल्ड कास्ट्स, शेड्यूल्ड ट्राइब्स एंड अदर बैकवर्ड क्लासिज़) ऐक्ट],1994 में सहायताप्राप्त संस्थाओं में 'काडर सदस्य-संख्या' पर आधारित आरक्षण के लिए उपबंध है बल्कि इस कारण भी कि ऐसी सदस्य-संख्या काडर में केवल एक पद तक सीमित होने के कारण इस न्यायालय के निर्णयों के प्रकाश में वैध रूप से आरक्षण के अध्यधीन नहीं है । (पैरा 37 और 39)

यह सही है कि 1982 के अधिनियम की धारा 10 में, जो कि सीधी भर्ती के लिए अभ्यर्थियों के चयन के लिए प्रक्रिया नियत करती है, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों का अवधारण करना और ऐसी रिक्तियों को उक्त अधिनियम के अधीन स्थापित आयोग को निर्दिष्ट करना अपेक्षित है किन्तु संस्था के प्रधानाचार्य/प्रमुख को उक्त अवधारण से

अपवर्जित किया गया है किन्तु यह भी समान रूप से सही है कि 1982 के अधिनियम की धारा 12 के अधीन आरक्षित प्रवर्गों के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित रखी जाने वाली रिक्तियों की संख्या का अवधारण करने के लिए संस्थाओं द्वारा कोई कार्यवाही की जाना अपेक्षित नहीं है । परिणामस्वरूप, ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसके द्वारा संस्था के प्रधानाचार्य/प्रमुख के पद को ऐसी किसी प्रक्रिया से अपवर्जित किया जाता है । दोनों उपबंधों की उस अर्थ में बराबरी नहीं की जा सकती है । एक मामले में आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों की संख्या का अवधारण करना आवश्यक होता है जबकि दूसरे मामले में ऐसी कोई अपेक्षा अनुबंधित नहीं की गई है । अतः, 1982 के अधिनियम के अधीन प्रधानाचार्य के पद को ऐसे अवधारण से अपवर्जित करने पर 1980 के अधिनियम की धारा 12 के अधीन आरक्षित रिक्तियों के अवधारण की अपेक्षा करने वाले किसी उपबंध के अभाव में अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है । (पैरा 42)

जहां तक सहबद्ध और सहायताप्राप्त संस्थाओं में प्रधानाचार्य के एकल पदों पर आरक्षण लागू करने का संबंध है, इस प्रश्न का उत्तर देते समय उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत की पुष्टि कर दी गई है । उस सीमा तक इस संविवाद को समाप्त किया जा रहा है । फिर भी, यह प्रश्न कि क्या कोई अनाचार किया गया था और यदि ऐसा किया गया था तो क्या राज्य सरकार द्वारा 1980 के अधिनियम की धारा 6 या संविधान के अनुच्छेद 154 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए चयन प्रक्रिया अकृत की जा सकती है, इस तथ्य को देखते हुए अनिर्णीत छोड़ा गया है कि चयन प्रक्रिया की वैधता से संबंधित प्रश्न उच्च न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए लंबित है जहां सभी संबंधित पक्षकारों के पास अपना-अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने का अवसर होगा । उन प्रश्नों के संबंध में सरकारी स्तर पर किसी समानांतर जांच को हमारे द्वारा अनावश्यक अभिनिर्धारित किया गया है । अतः, जहां तक चयन प्रक्रिया की वैधता का संबंध है, पक्षकारों के बीच विवाद का अंतिम न्यायनिर्णयन नहीं किया गया है । ऐसी स्थिति होने के कारण नियुक्त किए गए अभ्यर्थियों को उनके द्वारा दिए गए उस वचनबंध से उत्पन्न होने वाली बाध्यताओं से उन्मोचित करना आवश्यक नहीं है जिनके अध्यधीन ही नियुक्तियां करना अनुज्ञात किया गया था । तथापि, इससे यह अभिप्रेत नहीं हो सकता है कि नियुक्त किए गए अभ्यर्थी उस पद के पूर्ण फायदों का दावा करने के हकदार नहीं होंगे जो कि ऐसे पदधारी को उस अवधि के दौरान अनुज्ञेय है जिसमें ऐसी नियुक्तियां प्रवृत्त बनी रहती हैं जिस पर उन्हें नियुक्त किया गया है । वे

निदेश भी, जिनके अधीन नियुक्तियां की जानी अनुज्ञात की गई थीं, राज्य को उन फायदों को रोकने की अनुज्ञा नहीं देते जो विधिसम्मत रूप से ऐसी नियुक्तियों से उत्पन्न होते हैं । यदि नियुक्त किए गए अभ्यर्थियों को भत्तों के रूप में कोई अतिरिक्त वित्तीय फायदे संदेय हो जाते हैं तो उन्हें वे फायदे लेने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए । इन सभी फायदों का उपभोग भी उन वचनबंधों के अधीन होंगे जो नियुक्त किए गए अभ्यर्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष फाइल किए हैं । (पैरा 51)

परिणामस्वरूप, इन निदेशों के साथ इन अपीलों का निपटारा किया जाता है – (1) उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश, जिस सीमा तक वे यह अभिनिर्धारित करते हैं कि सहबद्ध/सहायताप्राप्त महाविद्यालयों में प्रधानाचार्य के पद आरक्षण के अध्यधीन नहीं हैं, पुष्ट किए जाते हैं । (2) सरकार द्वारा जारी किया गया तारीख 12 जून, 2007 का वह आदेश, जिसके द्वारा इलाहाबाद के मंडल आयुक्त को चयन प्रक्रिया की वैधता की जांच करने के लिए जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था और उक्त जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट अभिखंडित की जाती है और उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में पारित आदेश की पुष्टि की जाती है । (3) यह प्रश्न कि क्या सरकार उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 की धारा 6 के अधीन या संविधान के अनुच्छेद 154 के अधीन चयन प्रक्रिया की वैधता की जांच करने का निदेश देने के लिए सक्षम थी अथवा नहीं, उच्च न्यायालय के समक्ष चयन प्रक्रिया की वैधता को चुनौती देने वाली रिट याचिकाओं के लंबित रहने के कारण अनिर्णीत छोड़ा जाता है । (4) उच्च न्यायालय अपने समक्ष लंबित रिट याचिकाओं में प्रश्नगत चयन प्रक्रिया से संबंधित सभी मुद्दों की परीक्षा करने के लिए स्वतंत्र होगा जिसमें उसमें अनुसरण की गई प्रक्रिया की वैधता भी है । सरकार इस बात पर निर्भर करते हुए कि उच्च न्यायालय चयन प्रक्रिया को विधिमान्य पाता है अथवा नहीं, राज्य सेवा चयन आयोग के सदस्यों के विरुद्ध जांच संस्थित करने के लिए स्वतंत्र होगी, यदि ऐसी जांच विधि के अधीन अन्यथा अनुज्ञात हो । तथापि, यदि उच्च न्यायालय चयन प्रक्रिया को कायम रखता है और रिट याचिकाएं खारिज कर देता है तो राज्य सरकार के लिए प्रशासनिक दृष्टि से मामले के संबंध में और जांच प्रारंभ करने की कोई गुंजाइश नहीं होगी । व्यथित पक्षकार उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत को विधि के अनुसार समुचित कार्यवाहियों में चुनौती देने के लिए स्वतंत्र होगा । (5) वे चयनित अभ्यर्थी, जिन्होंने इस न्यायालय में वचनबंध

फाइल किए हैं और जिन्हें इस न्यायालय के आदेशों के अनुसरण में प्रधानाचार्य के पदों पर नियुक्त किया गया है, उच्च न्यायालय में लंबित ऐसी प्रत्येक रिट याचिका में पक्षकार के रूप में आलिप्त हो जाएंगे, जिनमें चयन प्रक्रिया को चुनौती दी गई है । चयनित अभ्यर्थी इस निदेश के आधार पर प्रत्येक याचिका में कोई और नोटिस दिए बिना तारीख 2 मई, 2011 को उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे और अपने-अपने प्रति-शपथपत्र फाइल करेंगे । अभ्यर्थियों की ओर से आवश्यक कार्रवाई करने में हुई असफलता पर उच्च न्यायालय द्वारा उपयुक्त रूप से कार्यवाही की जाएगी, जिसे उन अभ्यर्थियों के विरुद्ध जो इस निदेश का अनुपालन करने में असफल रहते हैं, एकपक्षीय रूप से कार्यवाही करने की स्वतंत्रता होगी । (6) मामले की सुनवाई शीघ्र करने की दृष्टि से इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से अनुरोध किया जाता है रिट याचिकाओं की शीघ्र सुनवाई और निपटारे के लिए उन्हें यथासंभव तारीख 31 दिसम्बर, 2011 से पूर्व उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष रखा जाए । (7) उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिकाओं का निपटारा होने तक चयनित अभ्यर्थी प्रधानाचार्य के पद पर अन्यथा अनुज्ञेय अपने वेतन और भत्ते, जिनमें वेतनवृद्धियां इत्यादि भी हैं इस प्रकार प्राप्त करने के हकदार होंगे मानो उनकी नियुक्तियां किसी विधिमान्य और सारभूत आधार पर की गई थीं । तथापि, इससे उत्पन्न होने वाले ऐसे फायदे उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाओं के परिणाम और नियुक्त किए गए अभ्यर्थियों द्वारा इस न्यायालय को दिए गए वचनबंधों के अध्यधीन होंगे और उन वचनबंधों के बारे में यह समझा जाएगा कि वे उस समय तक बने हुए हैं जब तक रिट याचिकाओं का अंतिम रूप से निपटारा नहीं कर दिया जाता है । (पैरा 53)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	(2008) 12 एस. सी. सी. 1 : **बलबीर कौर और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद और अन्य** ;	18,41,44
[2001]	(2001) 1 एस. ए. सी. 505 : **ओंकार दत्त शर्मा और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ;	14

[1998]	(1998) 4 एस. सी. सी. 1 : **स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा और अनुसंधान संस्थान, चंडीगढ़** बनाम **संकाय संघ और अन्य** ;	40,47
[1997]	(1997) 4 एस. सी. सी. 278 : **भारत संघ** बनाम **ब्रज लाल ठाकुर** ;	47
[1997]	(1997) 2 एस. सी. सी. 332 : **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **माधव पुत्र गजानन चौबल और एक अन्य** ;	47
[1995]	(1995) सप्ली. (1) एस. सी. सी. 432 : **बिहार राज्य** बनाम **बागेश्वरी प्रसाद** ;	47
[1993]	(1993) सप्ली. (3) एस. सी. सी. 527 : **भिडे गर्ल्स एजूकेशन सोसायटी** बनाम **शिक्षा अधिकारी, जिला परिषद्, नागपुर और अन्य** ;	46
[1992]	(1992) सप्ली. (3) एस. सी. सी. 217 : **इंदिरा साहनी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	45
[1988]	(1988) 2 एस. सी. सी. 214 : **डा. चक्रधर पासवान** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ;	40,46
[1974]	(1974) 1 एस. सी. सी. 87 : **आरती राय चौधरी** बनाम **भारत संघ** ;	46
[1964]	ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 179 : **टी. देवदासन** बनाम **भारत संघ** ;	46
[1963]	ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 649 : **एम. आर. बालाजी** बनाम **मैसूर राज्य** ।	46

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की सिविल अपील सं. 2351, 2352, 2353-2355, 2356-2358, 2359-60 और 2361 तथा 2009 की अंतरण याचिका (सिविल) सं. 3 और 1136 और 2009 की अवमान याचिका सं. 32.

2007 की सिविल रिट याचिका सं. 29524 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 7 अगस्त, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री रवीन्द्र श्रीवास्तव, दिनेश द्विवेदी, पी. एस. पटवालिया, पल्लव शिशोदिया, वी. शेखर, पी. एस. नरसिंहन, ज्येष्ठ अधिवक्ता, टी. एन. सिंह, राजीव दुबे, कुनाल वर्मा, कमलेन्द्र मिश्रा, राणा मुखर्जी, दीपेन्द्र नारायण सिंह, (सुश्री) कीर्ति यादव, (सुश्री) सुनैना कुमार, (सुश्री) अंकिता मिश्रा (मैसर्स लीगल आप्शन्स की ओर से), संजय विसेन, जे. के. मिश्रा, जी. पी. सिंह, विदित खन्ना, अनिरुद्ध पी. मायी, अमित आनन्द तिवारी, राकेश मिश्रा, राजीव कुमार बंसल, अमनप्रीत सिंह राजी, तुषार बख्शी, मनोज कुमार मिश्रा, राज सिंह राणा, के. एल. जंजनी, पंकज सिंह, अविनाश जैन, (सुश्री) पूजा धर, प्रशांत कुमार (ए. पी. एंड जे. चैम्बर्स की ओर से), (सुश्री) निरंजना सिंह, नलिन त्रिपाठी, दीपक अग्निहोत्रि (राजीव अग्निहोत्री की ओर से), रामेश्वर प्रसाद गोयल की ओर से, रणबीर सिंह यादव, प्रनीत रंजन, प्रणय रंजन, जीवन प्रकाश, प्रवीण जैन, आर. डी. उपाध्याय, आफताब अली खान, एस. एस. नेहरा, एच. के. पुरी, निखिल नायर, अभिषेक अत्रे, श्याम नारायण सिंह, प्रवीण स्वरूप, राकेश कुमार शर्मा, (सुश्री) संगीता चौहान अनिरुद्ध पी. मायी, प्रनीत रंजन, सुललित कुमार शिशोदिया, वी. जे.

फ्रांसिस, अनुपम मिश्रा, नगेन्द्र सिंह, विश्व पाल सिंह, नलिन त्रिपाठी, दीपक अग्निहोत्रि और अनिल कुमार पाठक

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर ने दिया ।

न्या. ठाकुर – इजाजत दी जाती है ।

2. ये अपीलें इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 7 अगस्त, 2008 के उस निर्णय और आदेश से उद्भूत हुई हैं जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने चयन किए गए अभ्यर्थियों द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाएं मंजूर कर ली थीं, उनमें आक्षेपाधीन आदेशों को अभिखंडित कर दिया था और परमादेश द्वारा उच्चतर शिक्षा निदेशक को सहायता-प्राप्त/सहबद्ध डिग्री और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों के पदों पर नियुक्ति के लिए उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को प्रभावी करने का निदेश दिया था । उच्च न्यायालय ने इसके अलावा चयनित अभ्यर्थियों के पक्ष में अविलंब नियुक्ति आदेश जारी करने का निदेश दिया था । वे तथ्य, जिनके कारण याचिकाएं फाइल की गईं हैं, संक्षेप में निम्न प्रकार हैं ।

3. उत्तर प्रदेश सरकार ने उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा अधिनियम (यू. पी. हायर एजूकेशन सर्विसिज़ ऐक्ट), 1980 की धारा 3 के निबंधनों के अनुसार 'उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग' के रूप में ज्ञात एक आयोग की स्थापना की है । आयोग, अधिनियम के अधीन उसे सौंपे गए अन्य कृत्यों के साथ-साथ महाविद्यालयों में अध्यापकों की भर्ती की पद्धति और परीक्षाएं संचालित करने से संबंधित दिशानिर्देश तैयार करने, साक्षात्कार लेने और अध्यापकों के रूप में नियुक्त किए जाने वाले अभ्यर्थियों का चयन करने और चयनित अभ्यर्थियों की नियुक्ति के संबंध में संबंधित प्रबंधमंडलों को सिफारिशें करने के लिए सशक्त है । तथापि, आयोग द्वारा अपनाई जाने वाली चयन प्रक्रिया केवल उन महाविद्यालयों तक सीमित है जिन्हें विश्वविद्यालय द्वारा सहबद्धता या मान्यता के विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं जिनमें वे महाविद्यालय भी हैं जो स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा चलाए जाते हैं । वे महाविद्यालय, जो राज्य सरकार द्वारा चलाए जाते हैं या वे महाविद्यालय, जो चिकित्सा शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, ऊपर उल्लिखित अधिनियम के कार्यक्षेत्र से बाहर हैं । हम अब अधिनियम के उपबंधों का

काफी विस्तार से उल्लेख करेंगे किन्तु हम इस प्रक्रम पर केवल यह कह सकते हैं कि अधिनियम की धारा 12 के निबंधनानुसार, महाविद्यालयों के प्रबंधमंडलों से यह अपेक्षित है कि वे विद्यमान रिक्तियां और आगामी शैक्षणिक वर्ष के दौरान होने वाली संभावित रिक्तियां शिक्षा निदेशक को सूचित करें जो कि इसके पश्चात् आयोग को चयन प्रक्रिया आरंभ करने और उसे पूरा करने में समर्थ बनाने के लिए सभी महाविद्यालयों द्वारा उसे सूचित की गई रिक्तियों की विषय-वार समेकित सूची आयोग को अधिसूचित करेगा ।

4. उपरोक्त प्रक्रिया के निबंधनानुसार आयोग को अधिसूचित सूचना के आधार पर उसके द्वारा तारीख 29 मई, 2003 को बहु-संख्यांक (33 से 36) वाला एक समेकित विज्ञापन जारी किया गया था जिसके द्वारा उक्त विज्ञापन में उल्लिखित रिक्तियों के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए थे । उक्त विज्ञापन को चुनौती देते हुए अनेक रिट याचिकाएं इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष प्रमुख रूप से इस आधार पर फाइल की गई थीं कि आयोग द्वारा अधिसूचित उपलब्ध प्रधानाचार्यों के पद विश्वविद्यालय से सहबद्ध भिन्न-भिन्न महाविद्यालयों में थे जो कि उस काडर में एकल पद थे और वे आरक्षण के अधीन नहीं आते थे । ये रिट याचिकाएं उच्च न्यायालय द्वारा ग्रहण कर ली गई थीं और तारीख 1 सितम्बर, 15 सितम्बर और 22 सितम्बर, 2003 के अंतरिम आदेशों द्वारा आयोग को इस आशय के निदेश जारी किए गए थे कि प्रधानाचार्य के पद अनारक्षित पद माने जाएंगे ।

5. आयोग ने उपरोक्त निदेशों का अनुपालन करते हुए तारीख 14 फरवरी, 2005 को एक नया विज्ञापन जारी किया जो कि विज्ञापन सं. 39 था, जिसके द्वारा प्रधानाचार्यों के 140 पदों के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए थे जिनमें से 87 पद स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में उपलब्ध थे जबकि अन्य 53 पद डिग्री महाविद्यालयों में थे । उस विज्ञापन में किसी प्रकार के आरक्षण का कोई उल्लेख नहीं था जिसका अभिप्राय यह था कि वे पद सामान्य/खुले योग्यता प्रवर्ग में प्रस्थापित किए गए थे । संपूर्ण चयन प्रक्रिया इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित रिट याचिकाओं के अंतिम निर्णय के अधीन थी । यह सामान्य आधार है कि तारीख 1 सितम्बर, 2003, 15 सितम्बर, 2003 और 22 सितम्बर, 2003 के अंतरिम आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिकाएं फाइल करके चुनौती दी गई थी किन्तु उक्त याचिकाएं इस न्यायालय के तारीख 3 नवम्बर, 2008 के आदेश द्वारा विलंब और प्रमाद के आधार पर खारिज कर

दी गई थीं ।

6. आयोग ने चयन प्रक्रिया पूरी करने में लगभग दो वर्ष का समय लिया जिसकी परिणति तारीख 15 मई, 2007 की अधिसूचना के निबंधनानुसार एक चयन सूची प्रकाशित करने पर हुई । चयन सूची के प्रकाशन के साथ ही उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित रिट याचिकाओं का वह समूह, जिसमें ऊपर उल्लिखित अंतरिम आदेश जारी किए गए थे, निष्फल रूप में खारिज कर दिया गया था । उच्च न्यायालय ने ऐसा करते समय आयोग की ओर से किए गए इस निवेदन का उल्लेख किया कि स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों का कोई काडर नहीं था और प्रधानाचार्यों के पद अंतर-परिवर्तनीय या अंतरणीय नहीं थे ।

7. अपीलार्थी-उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में, इससे पूर्व कि चयन सूची में सम्मिलित व्यक्तियों को नियुक्ति आदेश जारी किए जा सकते, उसके द्वारा आयोग द्वारा आयोजित चयन के विरुद्ध अनेक शिकायतें प्राप्त हुई थीं जिनमें यह अभिकथित किया गया था कि चयन प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर अनियमितताएं और गंभीर प्रकृति के अनाचार कारित किए गए थे और इस संबंध में जांच की मांग की गई थी । तदनुसार, राज्य सरकार ने इलाहाबाद के प्रभागीय आयुक्त को इन अभिकथनों के संबंध में 15 दिन के भीतर जांच करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश दिया । इस पर प्रभागीय आयुक्त ने सेवा आयोग से इस जांच के संबंध में कतिपय जानकारी मांगी और उसकी एक प्रति उच्चतर शिक्षा निदेशक को यह अनुरोध करते हुए भेजी कि वह सेवा आयोग से प्राप्त सिफारिशों के अनुसार नियुक्ति आदेश जारी करने में संयम बरते ।

8. चयनित अभ्यर्थियों ने उक्त संसूचना से व्यथित होकर सरकार द्वारा जारी की गई उस अधिसूचना को, जिसके द्वारा प्रभागीय आयुक्त को जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था और उसके द्वारा शिक्षा निदेशक को चयनित अभ्यर्थियों के पक्ष में नियुक्ति आदेश जारी करने से रोकने के लिए लिखे गए पत्र को चुनौती देते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष अनेक रिट याचिकाएं फाइल कीं । जबकि उक्त रिट याचिकाएं अभी निपटारे के लिए लंबित थीं, प्रभागीय आयुक्त ने तारीख 6 जुलाई, 2007 की एक प्रारंभिक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उसने प्रथमदृष्ट्या यह निष्कर्ष लेखबद्ध किया कि सेवा आयोग द्वारा चयन के अनुक्रम में अनेक अनियमितताएं और अनाचार बरते गए थे । इसी बीच, उच्च न्यायालय ने उस अधिसूचना के प्रवर्तन को रोकते हुए तारीख 13 जुलाई, 2007 का

अंतरिम आदेश पारित किया जिसके द्वारा प्रभागीय आयुक्त को जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था और प्रत्यर्थी को यह निदेश दिया कि चयनित अभ्यर्थियों को तीन सप्ताह के भीतर नियुक्ति पत्र जारी किए जाएं ।

9. ऊपर निर्दिष्ट अंतरिम आदेश से व्यथित होकर, राज्य ने इस न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका फाइल की जिसमें इस न्यायालय ने तारीख 21 अगस्त, 2007 के आदेश द्वारा अंतरिम निदेश पर रोक लगा दी, जहां तक उसके द्वारा उच्चतर शिक्षा निदेशक को चयनित अभ्यर्थियों के पक्ष में नियुक्ति पत्र जारी करने का निदेश दिया गया था । इस न्यायालय द्वारा तारीख 12 फरवरी, 2008 को उक्त विशेष इजाजत याचिका का अंतिम रूप से निपटारा कर दिया गया था जिसमें उच्च न्यायालय से चार मास के भीतर रिट याचिकाओं का निपटारा करने का अनुरोध किया गया था । इसी बीच इस न्यायालय द्वारा तारीख 21 अगस्त, 2007 को जारी किया गया अंतरिम आदेश जारी रहा था ।

10. उच्च न्यायालय के समक्ष, सरकार ने यह कथन करते हुए रिट याचिका में प्रति-शपथपत्र फाइल किया कि प्रक्रिया में गंभीर त्रुटियां थीं और इस मामले की गहराई से जांच की जानी आवश्यक है । उच्च न्यायालय ने अंततोगत्वा रिट याचिका में आक्षेपित तारीख 12 जून, 2007 और 16 जून, 2007 के आदेशों को अभिखंडित करते हुए रिट याचिका मंजूर कर ली और उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग के निदेशक को चयनित अभ्यर्थियों के पक्ष में नियुक्ति आदेश जारी करने संबंधी परमादेश जारी किया । प्रस्तुत अपीलों में, उक्त आदेशों की शुद्धता को चुनौती दी गई है ।

11. हम इस प्रक्रम पर यह उल्लेख कर सकते हैं कि इन मामलों में पारित तारीख 20 नवम्बर, 2008 के अंतरिम आदेश द्वारा इस न्यायालय ने अपीलार्थी-राज्य को इन अपीलों में चयनित अभ्यर्थियों-प्रत्यर्थियों को इन अपीलों के विनिश्चय के अध्यधीन रहते हुए एक मास के भीतर विभिन्न सहायताप्राप्त गैर-सरकारी डिग्री महाविद्यालयों और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों के प्रधानाचार्यों के रूप में नियुक्त करने का निदेश दिया था बशर्ते प्रत्यर्थी इस न्यायालय में इस आशय के वचनबंध फाइल कर दें कि यदि वे यह लड़ाई हार जाते हैं तो वे रीडर के पद पर प्रत्यावर्तित हो जाएंगे और उनके द्वारा प्रधानाचार्यों के रूप में आहरित वेतन की रकम के अंतर की वसूली कर ली जाएगी और उसका राज्य को वापस भुगतान कर दिया जाएगा । इसी निदेश को इस न्यायालय द्वारा तारीख 23 अप्रैल, 2009 के

आदेश के अनुसार दोहराया गया जिसके द्वारा इस न्यायालय ने यह निदेश दिया कि यद्यपि चयन सूची में से 56 अभ्यर्थियों को विभिन्न डिग्री और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में पहले ही नियुक्त किया जा चुका है तथापि, इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए निदेश का उक्त आदेश की तारीख से एक मास के भीतर पूर्ण रूप से अनुपालन किया जाना चाहिए । विशेष इजाजत याचिकाओं की सुनवाई भी तुरंत करने का निदेश दिया गया था । यह विवादग्रस्त नहीं है कि राज्य ने उपर्युक्त निदेश के अनुसरण में चयनित अभ्यर्थियों को इस न्यायालय के समक्ष अपने वचनबंध फाइल करने पर नियुक्त किया है जिसके परिणामस्वरूप सभी चयनित अभ्यर्थियों को प्रस्तुत अपीलों के परिणाम के अधीन रहते हुए और ऊपर उल्लिखित अंतरिम आदेशों में अनुबंधित शर्तों के अधीन रहते हुए सम्यक् रूप से नियुक्त कर दिया गया है ।

12. अपीलार्थी-राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले श्री श्रीवास्तव ने अपीलों के समर्थन में दोहरी दलीलें दीं । प्रथमतः, उसने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने तारीख 12 जून, 2007 के उस आदेश को अभिखंडित करके गलती की है जिसके द्वारा इलाहाबाद के प्रभागीय आयुक्त को सरकार द्वारा प्राप्त शिकायतों के अधार पर चयन प्रक्रिया में अनाचारों के अभिकथनों की प्रारंभिक जांच करने के लिए नियुक्त किया गया था । उसने इस बात पर जोर दिया कि उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 की धारा 6(1) राज्य सरकार को सेवा आयोग के किसी सदस्य को ऐसी स्थितियों में पद से हटाने के लिए सशक्त करती है जहां राज्य सरकार साबित अवचार के कारण उन्हें पद पर बने रहने के लिए अनुपयुक्त समझती है । विद्वान काउन्सेल के अनुसार, इस प्रकार उपलब्ध शक्ति का स्रोत सरकार के लिए चयन प्रक्रिया की वैधता और प्रक्रियात्मक नियमितता के संबंध में अभिकथनों की जांच करने के लिए पर्याप्त था क्योंकि ऐसी किसी जांच के आधार पर ही सरकार यह अवधारित कर सकती थी कि आयोग के सदस्यों द्वारा कोई अवचार कारित किया गया था अथवा नहीं । सरकार जांच के परिणाम के आधार पर ऐसे अवचार और अनियमितता के लिए दायी सदस्य के विरुद्ध कार्यवाही कर सकती थी और/या चयन प्रक्रिया के अंतिम परिणाम को अनुमोदित करने से इनकार कर सकती थी । अतः, विद्वान काउन्सेल ने यह तर्क दिया कि प्रारंभिक जांच को विधि की मंजूरी प्राप्त थी और उसे उच्च न्यायालय द्वारा उस रीति में छोटा नहीं किया जा सकता था जिस रीति में उसने किया है ।

13. श्री श्रीवास्तव ने इसके आगे यह दलील दी कि भले ही धारा 6 का निर्बंधित निर्वचन किया जाता है उसके निर्बंधन आयोग के सदस्यों को पद से हटाने तक सीमित हैं और वे चयन प्रक्रिया की विधिमान्यता के बारे में कोई जांच करने तक विस्तारित नहीं होते फिर भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 154 के अधीन राज्य सरकार में निहित साधारण कार्यपालिका शक्ति इतनी व्यापक थी कि सरकार को ऐसे मामलों में, जिनमें अनियंत्रित भ्रष्टाचार, अनाचार और इसी तरह के अभिकथन किए गए हैं जिनसे चयन प्रक्रिया दूषित हो जाती है, इस प्रकार की जांच संस्थित करने के लिए हकदार बनाया जा सकता है । इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लेते हुए इस बात पर जोर दिया गया था कि किसी भी अभ्यर्थी को मात्र इस कारण नियुक्ति की ईप्सा करने का अधिकार नहीं था कि उसे ऐसी किसी नियुक्ति के लिए पैनलित किया गया है । ऐसे मामलों में, जहां राज्य के चयन प्रक्रिया की ऋजुता के बारे में गंभीर संदेह हैं और जहां इस प्रक्रिया की वैधता और औचित्य के संबंध में संदेह किया गया है वहां राज्य जांच से इनकार नहीं कर सकेगा और न ही ऐसी किसी जांच को विखंडित कर सकेगा और चयन प्रक्रिया की, जिसके परिणामस्वरूप ऐसी नियुक्तियां की गई हैं, आत्यांतिक शुद्धता बनाए रखने संबंधी बाध्यकारी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए नियुक्तियां करने का आदेश कर सकेगा ।

14. द्वितीयतः, यह तर्क दिया गया था कि उच्च न्यायालय ने रिट याचिका सं. 39369/2003, 39370/2003, 48621/2003, 41191/2003, 52411/2003, 70062/2003, 42992/2003, 41345/2003 और 38714/2003 को निष्फल मानकर उनका निपटारा करने में गलती की थी । उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को अनदेखा कर दिया था कि उच्च न्यायालय के अंतरिम निदेश के अनुसरण में विज्ञापन सं. 39 जारी करना और उसके आधार पर चयन प्रक्रिया का पूरा होना उक्त रिट याचिकाओं के परिणाम के अध्यधीन था । उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का अनुपालन करते हुए नई अधिसूचना जारी करने या चयन प्रक्रिया पूरी करने मात्र से रिट याचिकाएं निष्फल नहीं हो गई थीं क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर उच्च न्यायालय को देना था कि क्या प्रधानाचार्य के पद आरक्षण के अध्यधीन थे जो कि उसने नहीं किया । इसके अलावा, यह दलील दी गई थी कि उच्च न्यायालय ने न केवल **ओंकार दत्त शर्मा और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में समान न्यायपीठ के विनिश्चय की अनदेखी की

---

[1] (2001) 1 एस. ए. सी. 505.

है बल्कि वह इस प्रश्न पर संतोषप्रद रूप से विचार करने में असफल रहा कि क्या प्रधानाचार्यों के पद एक काडर गठित करते थे और इसलिए वह पद उत्तर प्रदेश सेवा (अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम [उत्तर प्रदेश सर्विसिज़ (रिज़र्वेशन फॉर शेड्यूल्ड कास्ट्स एंड शेडयूल्ड ट्राइब्स एंड अदर बैकवर्ड क्लासिज़) ऐक्ट], 1994 के निबंधनों के अनुसार आरक्षण के अध्यधीन था । यह दलील दी गई थी कि उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 के उपबंधों का प्रभाव विभिन्न सहबद्ध महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों के पदों को संयोजित करना था और जब चयन प्रक्रिया और नियुक्ति के लिए सिफारिशें करने के प्रयोजनार्थ ऐसा संयोजन कानूनी रूप से विहित कर दिया गया था तो उक्त पदों को एक ही काडर के भाग के रूप में माना जा सकता था जिसे आरक्षण अधिनियम, 1994 के उपबंध लागू होंगे ।

15. प्रबंधमंडल की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान ज्येष्ठ काउन्सेल श्री दिनेश द्विवेदी ने, जो कि 2008 की विशेष इजाजत याचिका सं. 27077 में मध्यक्षेपी हैं, यह दलील दी कि आरक्षण अधिनियम, 1994 में आने वाले 'काडर' पद का निर्वचन उदार रूप से किया जाना था । विद्वान काउन्सेल ने यह दलील दी कि उत्तर प्रदेश उच्चतर सेवा आयोग अधिनियम का इस प्रकार निर्वचन करने पर उसका प्रभाव सहायताप्राप्त और सहबद्ध डिग्री और स्नातकोत्तर संस्थाओं में प्रधानाचार्यों का एक काडर बनाना था । इसके अलावा, उसने यह दलील दी कि अनेक लक्षण ऐसी संस्थाओं में इन पदों को काडरीकृत करने का समर्थन करते थे । उदाहरणार्थ, ऐसी संस्थाओं में पदधारी प्रधानाचार्यों का वेतन राज्य सरकार द्वारा संदत्त किया जाता था । इस संबंध में उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 60-क, 60-ख, 60-घ और 60-ङ के प्रति निर्देश किया गया था । यह दलील दी गई थी कि 1980 के अधिनियम के अधीन सामान्य चयन प्रक्रिया आयोजित करने के लिए इन पदों का संयोजन और यह तथ्य कि उक्त पद पर नियुक्ति की शक्ति अधिनियम की धारा 12 और 13 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए प्रभावी रूप से निदेशक के पास थी, यह भी एक ऐसी महत्वपूर्ण विशेषता है जिससे यह उपदर्शित होता था कि ये पद प्रधानाचार्यों के एक ही काडर में सम्मिलित थे । अध्यापकों के पद भी कतिपय शर्तों और निर्बंधनों के अधीन रहते हुए परस्पर-अंतरणीय थे । इस तथ्य से भी कि सहबद्ध विश्वविद्यालयों द्वारा अनुबंधित सुसंगत नियमों के

अधीन कर्मचारियों की सेवा-शर्तें और निबंधन एकसमान थे और सेवानिवृत्ति और सेवा-समाप्ति प्रबंधमंडलों के हाथों में नहीं थी, यह संकेत मिलता था कि प्रधानाचार्यों के पद एकल काडर गठित करते थे । श्री द्विवेदी ने इस तथ्य से भी समर्थन लिया कि माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाचार्यों के पद आरक्षण के निर्बंधनों से अपवर्जित थे जबकि डिग्री और स्नातकोत्तर संस्थाओं को इस प्रकार की कोई उन्मुक्ति प्राप्त नहीं थी । श्री द्विवेदी के अनुसार, दो उपबंधों के बीच महत्वपूर्ण अंतर था और उनसे यह दर्शित होता था कि जहां कहीं भी यह आशय था कि प्रधानाचार्यों के पद को आरक्षण लागू न किया जाए, जैसा कि माध्यमिक विद्यालयों के मामले में है, वहां कानून में इस आशय का विनिर्दिष्ट उपबंध किया गया था ।

16. प्रत्यर्थियों की ओर से ज्येष्ठ काउन्सेल श्री पी. एस. पटवालिया ने यह दलील दी कि सरकार द्वारा चयन प्रक्रिया की विधिमान्यता के संबंध में की गई जांच राजनैतिक विचारणाओं से प्रेरित थी । उसने इस बात पर जोर दिया कि चूंकि आयोग द्वारा चयन प्रक्रिया उत्तर प्रदेश राज्य में पिछली सरकार के दौरान पूरी कर ली गई थी इसलिए उत्तरवर्ती सरकार की उसमें रुचि नहीं थी, जिसने किसी न किसी बहाने से संपूर्ण कार्यवाही को समाप्त करने की युक्ति बनाई ।

17. श्री पटवालिया ने आगे यह दलील दी कि सरकार के पास चयन की विधिमान्यता के संबंध में कोई जांच संस्थित करने का कोई वास्तविक आधार नहीं था विशेष रूप से तब जब कि अभिकथन पूर्णतः अस्पष्ट, निराधार और काल्पनिक थे जिनमें सरकार से कोई अनाचार कारित किए जाने के संबंध में किसी ठोस साक्ष्य की बजाय जाति और समुदाय के आधार पर हस्तक्षेप करने की अपील की गई थी । उसने यह दर्शित करने के लिए हमारा ध्यान उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की ओर आकृष्ट किया कि राज्य सरकार ऐसा कोई विनिर्दिष्ट कथन करने में असफल रही थी कि वह इस मामले में कोई अतिरिक्त जांच या कार्यवाहियां करना चाहती थी । अतः, उच्च न्यायालय का प्रभागीय आयुक्त द्वारा प्रस्तुत की गई प्रारंभिक रिपोर्ट को विशेष रूप से इस कारण अभिखंडित करना न्यायोचित था कि विद्वान काउन्सेल के अनुसार सरकार के पास उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा अधिनियम की धारा 6 के अधीन विधिमान्य रूप से पूरी की गई चयन प्रक्रिया को अकृत करने की शक्ति नहीं थी । उसने इस दलील का खंडन किया कि सरकार संविधान के अनुच्छेद 154 के अधीन अपनी साधारण कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग कर सकती थी और यह

दलील दी कि उच्च न्यायालय के समक्ष कभी भी ऐसा कोई तर्क नहीं दिया गया था ।

18. श्री पटवालिया ने आगे यह दलील दी कि उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम के उपबंधों का प्रभाव प्रधानाचार्यों का एक काडर बनाना नहीं था और उसने इस संबंध में दी गई दलीलों को पूर्णतः भ्रामक बताया । उसने यह दलील दी कि यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि किसी विशिष्ट सेवा में कोई काडर अस्तित्व में है, न्यूनतम अपेक्षा यह है कि उन व्यक्तियों का, जो उस विशेष काडर का भाग गठित करते हैं, एक ही नियोजक होना चाहिए । वर्तमान मामले में यह अपेक्षा पूरी नहीं होती थी क्योंकि प्रत्येक प्रधानाचार्य का नियोजक संबंधित महाविद्यालय का प्रबंधमंडल था । प्रधानाचार्य के पद पदधारियों और उस प्रबंधमंडल की, जिसके अधीन वे सेवारत थे, पारस्परिक सम्मति के सिवाय नियमों के अधीन अंतर-परिवर्तनीय या अंतरणीय नहीं थे । श्री पटवालिया के अनुसार यह प्रश्न कि क्या इन परिस्थितियों में कोई काडर विद्यमान था, **बलबीर कौर और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय द्वारा विनिश्चित किया जा चुका है ।

19. श्री पल्लव शिशोदिया और श्री वी. शेखर, ज्येष्ठ काउन्सेल ने भी, जो कुछ प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित हुए थे, श्री पटवालिया द्वारा दिए गए इन तर्कों को अंगीकार किया कि उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम या 1994 के आरक्षण अधिनियम के उपबंधों में इस विषय में कुछ भी नहीं था जिससे यह संकेत मिलता हो कि विधानमंडल का आशय भिन्न-भिन्न प्रबंधमंडलों के अधीन सेवा करने वाले प्रधानाचार्यों का एक काडर सृजित करना है । विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, इन दोनों विधानों में अंतर्निहित एकमात्र प्रयोजन यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रधानाचार्यों की नियुक्तियां ऋजु और पारदर्शी आधार पर की जाएं, प्रधानाचार्यों के रूप में नियुक्ति के लिए उपयुक्त अभ्यर्थियों के चयन के लिए एकसमान पद्धति का उपबंध करना था । राज्य ने न केवल उन संस्थाओं के लिए, जो कि विश्वविद्यालयों से सहबद्ध थीं और एक प्रशंसनीय लोक प्रयोजन पूरा कर रही थीं, सर्वोत्तम अभ्यर्थी प्राप्त करने के हित में बल्कि ऐसी रिक्तियों के अधीन नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों

---

[1] (2008) 12 एस. सी. सी. 1.

को संदेय वेतन की इन संस्थाओं को राज्य द्वारा प्रतिपूर्ति करने के लिए भी ऐसा आवश्यक समझा ।

20. दो प्रश्न हमारे अवधारणार्थ उद्भूत होते हैं, वे ये हैं :–

(i) क्या उच्च न्यायालय का चयन प्रक्रिया के अनुक्रम में अभिकथित रूप से कारित अनाचार के अभिकथनों की जांच करने के लिए नियुक्त किए गए जांच अधिकारी की नियुक्ति अभिखंडित करना न्यायोचित था, और

(ii) क्या विभिन्न सहबद्ध/सहायताप्राप्त डिग्री और स्नातकोत्तर संस्थाओं में प्रधानाचार्यों के पद एक काडर गठित करते हैं और इसलिए वे 1994 के आरक्षण अधिनियम के उपबंधों के अधीन यथा-विहित आरक्षण के अध्यधीन हैं ।

21. हम इन प्रश्नों पर क्रमानुसार विचार करना चाहते हैं ।

<u>प्रश्न सं. (i) के संबंध में</u>

22. सहबद्ध/सहायताप्राप्त डिग्री और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों का चयन उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, उसके अधीन विरचित नियमों और विनियमों द्वारा शासित होता है । आयोग द्वारा चयन प्रक्रिया उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए अंतरिम निदेशों के अनुसरण में पद को खुले प्रवर्ग का पद मानकर आरंभ और पूरी की गई थी । चयन सूची भी सम्यक् रूप से अधिसूचित की गई थी । सामान्य अनुक्रम में, अध्यापकों के रूप में जिनमें महाविद्यालयों के लिए प्रधानाचार्य भी हैं, उपयुक्त अभ्यर्थियों का चयन करने के लिए स्थापित किसी कानूनी आयोग की सिफारिशों को वही सम्मान मिलना चाहिए जिसका वह पात्र होता है । तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकार ने कुछ शिकायतें प्राप्त की थीं जिसके आधार पर उसने जांच संस्थित की जिसके फलस्वरूप ऐसी प्रारंभिक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसमें चयन प्रक्रिया के संचालन में आयोग द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया त्रुटिपूर्ण पाई गई । अपीलार्थी-उत्तर प्रदेश राज्य के अनुसार, शिकायत में किए गए अभिकथन गंभीर प्रकृति के थे और उनकी परीक्षा की जानी चाहिए । इस बात पर जोर दिया गया था कि राज्य का उस प्रारंभिक रिपोर्ट के आधार पर, जो उसके समक्ष प्रस्तुत की गई थी, मामले के संबंध में आगे जांच करने का पूरा आशय था । उच्च न्यायालय ने ऐसा नहीं सोचा था । 2007 की रिट याचिका सं. 29524 में पारित आदेश के पठन मात्र से यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने

राज्य के विद्वान् काउन्सेल को इस संबंध में अनुदेश लेने का अवसर दिया था कि क्या सरकार इस मामले में आगे कोई जांच करना चाहती है । राज्य के विद्वान् काउन्सेल ने अवसर मिलने के बावजूद इस मामले में किन्हीं अनुदेशों के संबंध में रिपोर्ट नहीं किया था । यह उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश में आने वाले निम्नलिखित पद्यांश से स्पष्ट है :–

> "इन सभी तारीखों को हमने स्थायी काउन्सेल से राज्य सरकार का पक्षकथन प्रस्तुत करने का अनुरोध किया था । विद्वान् स्थायी काउन्सेल ने यह सूचित किया है कि उसने राज्य सरकार को सूचना भेजी थी किन्तु उसने कोई भी अनुदेश प्राप्त नहीं किए हैं ।"

23. अतः, उच्च न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही की कि सरकार इस मामले में और कोई जांच नहीं कराना चाहती थी और तदनुसार उसने जांच अधिकारी नियुक्त करने वाला आदेश तथा उसके द्वारा नियुक्तियां करने के विरुद्ध जारी किए गए अनुदेशों को भी अभिखंडित कर दिया । हम इस बात की परीक्षा करना अनावश्यक समझते हैं कि क्या राज्य सरकार द्वारा अभिकथित रूप से प्राप्त की गई शिकायतों से इस मामले में जांच करने का कोई प्रथमदृष्ट्या मामला साबित होता है या क्या सरकार द्वारा संस्थित की गई जांच किन्हीं राजनैतिक या अन्य कारणों से दूषित थी । हम इस प्रश्न की जांच नहीं करना चाहेंगे कि क्या उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम की धारा 6 के अधीन राज्य में निहित शक्ति का, जिसका राज्य सरकार ने तात्पर्यित रूप से अवलंब लिया है, उसके द्वारा चयन प्रक्रिया को अकृत करने के प्रयोजनों के लिए अवलंब लिया जा सकता था और यदि नहीं लिया जा सका था तो क्या उसके द्वारा मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में कोई जांच संस्थित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 154 के अधीन राज्य में निहित साधारण कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किया जा सकता था । हम ऐसा इसलिए नहीं कह रहे हैं क्योंकि प्रश्न हमारे समक्ष वाले संविवाद से संबद्ध नहीं थे बल्कि इस कारण कह रहे हैं क्योंकि राज्य सरकार द्वारा की जाने वाली किसी जांच से, चाहे वह धारा 6 के अधीन उसकी शक्तियों का प्रयोग करते हुए या अनुच्छेद 154 के अधीन उसकी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करते हुए की जाए, केवल उस कार्यवाही को दोहराना होगा जो कि अनेक रिट याचिकाओं के रूप में उच्च न्यायालय के समक्ष पहले से लंबित हैं, जिसमें व्यथित अभ्यर्थियों ने अनेक आधारों पर चयन प्रक्रिया की विधिमान्यता से संबंधित विवाद्यक उठाए हैं जिनमें वे विवाद्यक भी हैं

जिनकी राज्य सरकार द्वारा उन शिकायतों के आधार पर जो उसने प्राप्त की हैं, परीक्षा की जाना तात्पर्यित है । हमने इस दृष्टि से श्री श्रीवास्तव से यह पूछा कि क्या राज्य सरकार द्वारा कोई समानांतर कार्यवाही आरंभ की जानी आवश्यक है, विशेष रूप से तब जब कि चयन की विधिमान्यता से संबंधित सभी विषयों के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा परीक्षा किए जाने से न केवल राज्य सरकार को बल्कि उन व्यथित अभ्यर्थियों को भी जिनका चयन किया गया है, उसके समक्ष अपना-अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा । यदि उच्च न्यायालय पक्षकारों द्वारा उसके समक्ष रखी गई किसी भी प्रकार की सामग्री के आधार पर यह निष्कर्ष निकालता है कि चयन प्रक्रिया में कोई भी त्रुटि नहीं थी तो राज्य द्वारा की गई कोई भी जांच पूर्णतः अनावश्यक होगी । इसके विपरीत, यदि उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि चयन किसी अवैधता या अनियमितता से दूषित था तो राज्य सरकार अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकती थी और किसी ऐसे सदस्य को हटाने के लिए, जिसने ऐसी किसी अवैधता या अनियमितता में भागीदार होकर कोई अवचार कारित किया हो, कोई जांच संस्थित कर सकती थी । श्री श्रीवास्तव को श्रेय देते हुए हमें यह अवश्य ही लेखबद्ध करना चाहिए कि वह हमारे द्वारा सुझाई गई कार्रवाई से एकमात्र इस अपवाद के साथ सहमत थे कि राज्य सतर्कता विभाग द्वारा जो सतर्कता मामला रजिस्ट्रीकृत हो चुका है उसे इस बात की जांच करने के लिए चलते रहने दिया जाए कि क्या आयोग द्वारा किए गए तथाकथित अवैध चयन में कोई दांडिक दृष्टिकोण अंतर्वलित है । अतः, इन परिस्थितियों में हमारे लिए आधिकारिक रूप से इस प्रश्न का अवधारण करना अनावश्यक है कि क्या राज्य सरकार द्वारा जांच संस्थित करना न्यायोचित था और यदि ऐसा था तो क्या सरकार ने शक्ति के जिस स्रोत का अवलंब लिया था वह वास्तव में उसे उपलब्ध थी । हमारा यह मत है कि व्यथित अभ्यर्थियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई रिट याचिकाओं में मामले के सभी पहलुओं की परीक्षा की जा सकेगी जिसमें चयन प्रक्रिया से संबद्ध प्रत्येक व्यक्ति को अपना दृष्टिकोण रखने का अवसर प्राप्त होगा ।

24. हमें यह बताया गया है कि हो सकता है कि चयनित अभ्यर्थियों को लंबित रिट याचिकाओं में पक्षकार न बनाया गया हो यद्यपि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए वे आवश्यक पक्षकार हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा चयन की विधिमान्यता के संबंध में पारित किए जाने वाले किसी आदेश का

उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । अतः, उन चयनित अभ्यर्थियों को, जिन्हें इस चयन प्रक्रिया के आधार पर नियुक्त किया गया है और जिन्होंने इस न्यायालय के समक्ष वचनबंध फाइल किए हैं, कार्यवाहियों में किसी तकनीकी त्रुटि और मामले के निपटारे में होने वाले पारिणामिक विलंब से बचने के लिए लंबित रिट याचिकाओं में पक्षकार बनाया जाएगा । हमारे द्वारा इस संबंध में विनिर्दिष्ट निदेश इस आदेश के प्रभावी भाग में जारी किया जा रहा है । प्रश्न सं. (i) का उत्तर तदनुसार दिया जाता है ।

प्रश्न सं. (ii) के संबंध में

25. उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 डिग्री और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में अध्यापकों के चयन को ऋजु, वस्तुनिष्ठ और पारदर्शी बनाने के लिए पुरःस्थापित किया गया था । इस विधान के उद्देश्यों और कारणों के कथन में, ऐसे महाविद्यालयों के लिए अभ्यर्थियों का चयन करने में पक्षपात बरते जाने और चयन प्रक्रिया में ऐसे दोषों का विलोप करने का उल्लेख इस अधिनियमिति में अंतर्निहित उद्देश्यों में से एक उद्देश्य के रूप में किया गया है ।

26. अधिनियम की धारा 4 के निबंधनानुसार, धारा 3 के अधीन स्थापित आयोग में एक अध्यक्ष और दो से अन्यून और चार से अनधिक अन्य सदस्य शामिल होते हैं जिन्हें राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है और जो उसकी उपधारा (2) और (2-क) के अधीन अनुबंधित पात्रता शर्तों को पूरा करते हैं । धारा 11 में आयोग के कृत्य प्रगणित हैं जिनमें अध्यापकों के रूप में नियुक्त किए जाने वाले अभ्यर्थियों का चयन करने के लिए भर्ती की पद्धति, परीक्षाओं के संचालन, जहां आवश्यक समझा जाए, साक्षात्कार आयोजित करने और विशेषज्ञों के चयन तथा ऐसी परीक्षा के लिए परीक्षकों की नियुक्ति से संबंधित विषयों के बारे में दिशानिर्देश तैयार करना भी शामिल है । अधिनियम की धारा 12 में अध्यापकों की नियुक्ति के लिए प्रक्रिया अनुबंधित है और उसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध किया गया है कि किसी महाविद्यालय के अध्यापक की नियुक्ति प्रबंधमंडल द्वारा अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ही की जाएगी और उनका उल्लंघन करके की गई कोई भी नियुक्ति शून्य होगी । धारा 12 की उपधारा (2) में महाविद्यालयों के प्रबंधमंडल से यह अपेक्षा की गई है कि वह शिक्षा निदेशक (उच्चतर शिक्षा) को विद्यमान रिक्तियों और आगामी शैक्षणिक वर्ष के दौरान होने वाली संभावित रिक्तियों की सूचना ऐसी रीति

में दे, जैसी कि विहित की जाए । उपधारा (3) में निदेशक से यह अपेक्षा की गई है कि वह सभी महाविद्यालयों द्वारा उसे सूचित की गई रिक्तियों की समेकित सूची विहित रीति में आयोग को अधिसूचित करे ।

27. किसी महाविद्यालय के अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए व्यक्तियों के चयन की रीति भी विनियमों द्वारा अवधारित की जानी है । इसके अलावा, यह उपबंध किया गया है कि अभ्यर्थी को विभिन्न महाविद्यालयों के लिए जिनमें रिक्तियां विज्ञापित की गई हैं, अपना अधिमान-क्रम उपदर्शित करना होगा । अधिनियम की धारा 13 में आयोग से यह अपेक्षा की गई है कि वह लिखित परीक्षा सहित या उसके बिना साक्षात्कार आयोजित करे और निदेशक को उतने अभ्यर्थियों के, जितने प्रत्येक विषय में अधिक उपयुक्त पाए जाएं, यथासाध्य उस विषय में की रिक्तियों की संख्या से पच्चीस प्रतिशत अधिक, नामों की सिफारिश करते हुए योग्यता-क्रम में व्यवस्थित एक सूची भेजे । ऐसी सूची तब तक विधिमान्य होगी जब तक आयोग से नई सूची प्राप्त नहीं हो जाती । उपधारा (3) निदेशक को रिक्तियों के अधीन नियुक्त किए जाने के लिए उपधारा (1) में निर्दिष्ट सूची में से एक अभ्यर्थी का नाम प्रबंधमंडल को सूचित करने के लिए सशक्त करती है । उपधारा (6) में ऐसी सूचना की एक प्रति संबंधित अभ्यर्थी को भेजने की अपेक्षा की गई है ।

28. अधिनियम की धारा 14 प्रबंधमंडल को उस व्यक्ति को नियुक्ति-पत्र जारी करने के लिए आदिष्ट करती है जिसका नाम उसे सूचित किया गया है । वह धारा निम्नलिखित रूप में है :–

> "14. प्रबंधमंडल का कर्तव्य – (1) प्रबंधमंडल धारा 13 की उपधारा (3) या उपधारा (4) या उपधारा (5) के अधीन सूचना की प्राप्ति की तारीख से एक मास की अवधि के भीतर उस व्यक्ति को नियुक्ति-पत्र जारी करेगा जिसका नाम सूचित किया गया है ।

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "14. Duty of Management. – (1) The management shall within a period of one month from the date of receipt of intimation under sub-section (3) or sub-section (4) or sub-section (5) of Section 13, issue appointment letter to the person whose name has been intimated.

(2) जहां उपधारा (1) में निर्दिष्ट व्यक्ति नियुक्ति-पत्र में अनुज्ञात समय के भीतर या ऐसी बढ़ाए गए समय के भीतर, जो कि प्रबंधमंडल इस निमित्त अनुज्ञात करे, उस पद को ग्रहण करने में असफल रहता है या जहां ऐसा व्यक्ति नियुक्ति के लिए अन्यथा उपलब्ध नहीं होता है वहां निदेशक प्रबंधमंडल के अनुरोध पर धारा 13 की उपधारा (1) के अधीन आयोग द्वारा भेजी गई सूची में से विहित रीति में नया नाम सूचित करेगा ।"

29. धारा 15, नियुक्ति के लिए सिफारिश किए गए किन्तु प्रबंधमंडल द्वारा इस प्रकार नियुक्त न किए गए व्यक्ति को उपधारा (2) के अधीन समुचित निदेश जारी करने के लिए निदेशक को समावेदन करने के लिए पात्र बनाती है । निदेशक उक्त उपबंध के अधीन जांच करने और ऐसा आदेश पारित करने के लिए सशक्त है जिसमें प्रबंधमंडल से आवेदक को अध्यापक के रूप में नियुक्त करने और आदेश में विनिर्दिष्ट तारीख से उसे वेतन का संदाय करने की अपेक्षा की गई है ।

30. सरकार ने उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 की धारा 32 और धारा 31 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए नियम विरचित किए हैं जो "उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग नियम, 1981" और "उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग (अध्यापकों के चयन के लिए प्रक्रिया) विनियम, 1983" के रूप में जाने जाते हैं । जबकि ऊपर उल्लिखित नियम आयोग के गठन, सदस्यों की निर्योग्यता, सदस्यों, कर्मचारिवृन्द इत्यादि के अवचार के संबंध में अन्वेषण करने के संबंध में है किन्तु ऊपर निर्दिष्ट विनियम अध्यापक के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हताओं और अनुभव, रिक्तियों के अवधारण और सूचना, चयन के लिए प्रक्रिया और इसी तरह के विषयों के संबंध में हैं ।

31. ऊपर निर्दिष्ट अधिनियम, नियमों और विनियमों के उपबंधों का सावधानीपूर्वक पठन श्री श्रीवास्तव और श्री द्विवेदी द्वारा प्रतिपादित इस

---

(2) Where the person referred to in sub-section (1) fails to join the post within the time allowed in the appointment letter or within such extended time as the management may allow in this behalf, or where such person is otherwise not available for appointment, the Director, shall on the request of the mangement intimate fresh name from the list sent by the Commission under sub-section (1) of Section 13 in the manner prescribed."

सिद्धांत का समर्थन नहीं करता है कि इससे विधि की कल्पना द्वारा या तो आरक्षण लागू करने के प्रयोजन के लिए या अन्यथा प्रधानाचार्यों का एक काडर सृजित होता है । जैसी की पहले अवेक्षा की गई है, विधान में अंतर्निहित उद्देश्य चयन की एक ऐसी सम्मिलित प्रक्रिया सुनिश्चित करने तक सीमित था जिससे ऐसे चयनों में अंतर्वलित होने वाले समय और व्यय की बचत होगी यदि वही चयन प्रत्येक महाविद्यालय के लिए अलग-अलग किया जाता है । इसका आशय मनमानेपन के तत्व और ऐसे अन्य अनाचारों को दूर करना भी था जिनके बारे में यह पाया गया था कि वे संस्थाओं द्वारा, यदि उन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है, ऐसे चयन और नियुक्तियां करते समय किए गए थे । कानूनी आयोग की स्थापना करना, उसके लिए अर्हित व्यक्तियों की नियुक्ति करना, नियुक्त किए गए व्यक्तियों की सेवा-शर्तों के निबंधन और शर्तें अनुबंधित करना और सदस्यों को अवचार के कारण हटाने की शक्ति और अध्यापकों की नियुक्ति के लिए प्रक्रिया अधिकथित करना ये सभी यह सुनिश्चित करने के लिए अभिप्रेत हैं कि चयन प्रक्रिया उन अवचारों से मुक्त हो जो साधारणतया ऐसी प्रक्रिया से तब जुड़े होते थे जब उन पर संस्थाओं द्वारा कार्यवाही की जाती थी । अधिनियम, नियमों और विनियमों में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे दूर-दूर तक यह संकेत मिलता हो कि विधानमंडल का आशय वहां भी प्रधानाचार्यों का कोई काडर सृजित करना था जहां आरक्षण के प्रयोजनों के लिए या अन्यथा इससे पूर्व कोई काडर अस्तित्व में नहीं था ।

32. इस तथ्य का प्रभाव कि प्रबंधमंडल से यह अपेक्षित था कि वह उपलब्ध रिक्तियां उच्चतर शिक्षा निदेशक को संसूचित करे या यह कि जैसे ही चयन प्रक्रिया पूरी हो जाती है और किसी अभ्यर्थी की नियुक्ति के लिए सिफारिश कर दी जाती है, नियुक्ति आदेश जारी किया जाना चाहिए, हमारी राय में प्रधानाचार्यों के काडर का सृजन करना नहीं है । उक्त उपबंध का आशय केवल यह सुनिश्चित करना है कि कानूनी आयोग को चयन प्रक्रिया का संचालन करने में समर्थ बनाने के लिए उसे रिक्तियां निर्दिष्ट की जाएं और जैसे ही प्रक्रिया पूरी हो जाती है और सिफारिशें कर दी जाती हैं, प्रबंधमंडल पद के लिए उपयुक्त समझे गए अभ्यर्थी की नियुक्ति करने से इनकार नहीं करेगा ।

33. यदि प्रबंधमंडल नियुक्ति नहीं करता है तो जांच करने और वेतन का संदाय करने के लिए निदेश जारी करने के संबंध में निदेशक में निहित शक्ति का आशय ऐसी नियुक्ति के लिए अभ्यर्थी की योग्यता और

उपयुक्तता के संबंध में आयोग की राय को प्रमुखता प्रदान करते हुए चयन और नियुक्ति की प्रक्रिया में सहायता देने और यदि उसे नियुक्ति से अन्यायोचित रूप से वंचित किया जाता है तो अभ्यर्थी को वेतन का दावा करने के लिए हकदार बनाने की ओर एक कदम भी है । यह कहना पर्याप्त होगा कि अधिनियम और विनियमों के उपबंधों का प्रधानाचार्यों का काडर सृजित करने से कोई संबंध नहीं है और न ही चयन प्रक्रिया की सर्वसाधारणता को प्रधानाचार्यों के पद के काडरीकरण से भ्रमित किया जा सकता है ।

34. अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या सहायताप्राप्त/ सहबद्ध महाविद्यालयों में सेवा करने वाले कर्मचारियों के निबंधन और शर्तों की समरूपता और ऐसे अध्यापकों को देय वेतन का भुगतान राज्य सरकार द्वारा किए जाने का प्रभाव प्रधानाचार्यों के एक काडर का सृजन करना होगा । हमारा उत्तर नकारात्मक है । हमारी राय में, इस तथ्य का कि राज्य सरकार सहबद्ध महाविद्यालयों को ऐसी संस्थाओं में सेवा करने वाले अध्यापकों को वेतन का संदाय करने के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करती है, इस प्रश्न से कोई संबंध नहीं है कि क्या भिन्न-भिन्न प्रबंधमंडलों के अधीन विभिन्न महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों के पद एक काडर गठित करते हैं । मात्र इस कारण कि सरकार उन संस्थाओं को सहायता प्रदान करती हैं जो अन्य सब बातों में अपना कामकाज करने के लिए स्वतंत्र हैं और उनका प्रबंध उनके अपने-अपने प्रबंधमंडलों द्वारा किया जाता है, किसी भी तर्काधार पर ऐसे महाविद्यालयों में के पदों का एक ही काडर गठित करने वाली परिस्थिति के रूप में नहीं माना जा सकता है । इसी प्रकार, इस तथ्य का भी कि विभिन्न महाविद्यालयों में सेवारत ऐसे अध्यापकों की, जिनके अंतर्गत प्रधानाचार्य भी हैं, सेवा के निबंधन और शर्तें ऐसे महाविद्यालयों के एक ही विश्वविद्यालय से सहबद्ध होने और एक ही प्रकार के कानूनों, नियमों और विनियमों द्वारा शासित होने के कारण समरूप हैं, ऐसे पदों को समाविष्ट करने वाला एक ही काडर सृजित करने या विद्यमान होने से कोई संबंध नहीं है । इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि ऐसे सामान्य लक्षण ऐसी संस्थाओं के स्वतंत्र स्वरूप को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करते हैं और न ही वेतन का संदाय और कर्मचारियों की सेवा-शर्तों की समरूपता यह अभिनिर्धारित करने के लिए किसी कसौटी का उपबंध नहीं करती हैं कि यद्यपि ऐसी संस्थाओं में नियुक्त किए गए प्रधानाचार्य एक-दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र रूप में भिन्न-भिन्न संस्थाओं में सेवा

कर रहे हैं, तथापि, वे एक सामान्य काडर गठित करते हैं ।

35. प्रत्यर्थियों की ओर से यह दलील दी गई थी कि नियुक्ति की शक्ति प्रभावी रूप से केवल उच्चतर शिक्षा निदेशक के पास होती है और प्रबंधमंडलों के पास इस संबंध में निदेशों का पालन करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता है । प्रत्यर्थियों के अनुसार, इससे यह संकेत मिलता है कि शिक्षा निदेशक ही वास्तविक नियोजक है और इन संस्थाओं के प्रबंधमंडल, जिनमें ये नियुक्तियां की जाती हैं, केवल ऐसा अनुसचिवीय कर्तव्य पूरा करते हैं जो उन्हें वास्तविक नियोजकों का स्वरूप प्रदान नहीं करता है । हमें उस दलील में भी कोई सार दिखाई नहीं देता है । यह सही है कि अधिनियम की धारा 14 के निबंधनानुसार, प्रबंधमंडलों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे उस व्यक्ति को नियुक्ति-पत्र जारी करें जिसका नाम उन्हें सूचित किया जाता है किन्तु धारा 14 से उत्पन्न होने वाली ऐसी कोई बाध्यता राज्य सरकार को नियुक्त किए गए व्यक्ति का नियोक्ता नहीं बनाती । धारा 14 के पठन मात्र से ही यह प्रत्यक्ष है कि नियुक्ति-पत्र केवल प्रबंधमंडल द्वारा जारी किया जाना होता है । ऐसा करने के लिए निदेशक को सशक्त करने वाला कोई उपबंध नहीं है । इससे यह विवक्षित होता है कि चयनित अभ्यर्थी को संस्था के नियोजन में केवल तभी लिया जाता है जब उस संस्था का प्रबंधमंडल उसके पक्ष में नियुक्ति-पत्र जारी करता है । यह स्पष्ट है कि अधिनियम की स्कीम के अधीन भी नियुक्ति प्राधिकारी संस्थाओं के प्रबंधमंडल ही होते हैं । अधिनियम के उपबंध साधारण रूप से यह सुनिश्चित करते हैं कि प्रबंधमंडल उस पद के लिए चुने गए व्यक्ति की ही नियुक्ति करता है और किसी अन्य व्यक्ति की नहीं करता है । अधिनियम के अधीन प्राधिकारी स्वयं को नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति के नियोजक के रूप में प्रतिस्थापित नहीं करते हैं ।

36. अंतिम किन्तु महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि विभिन्न सहायताप्राप्त/सहबद्ध संस्थाओं में प्रधानाचार्यों के पद स्थानांतरणीय या अंतर-परिवर्तनीय नहीं हैं । पद की अंतर-परिवर्तनीयता और पदधारियों का उसी काडर में एक अन्य पद पर स्थानांतरण किसी काडर के आवश्यक लक्षण होते हैं जो कि वर्तमान मामले में नहीं हैं । इस संबंध में, राज्य सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 की धारा 32 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए विरचित किए गए उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सहायताप्राप्त महाविद्यालय अध्यापकों का स्थानांतरण नियम (उत्तर प्रदेश हायर एजूकेशन एडेड कालेजेज़ ट्रांसफर ऑफ टीचर्स रूल्स), 2005

के प्रति निर्देश किया जा सकता है । इस संबंध में, उक्त नियमों का नियम 4 सुसंगत है और उसे उद्धृत किया जा सकता है :–

*"4(1) नियमित आधार पर नियुक्त किए गए और स्थायी अध्यापकों के रूप में धारणाधिकार रखने वाले अध्यापक दस वर्ष की सेवा के पश्चात् संपूर्ण सेवा अवधि में केवल एक बार स्थानांतरण के लिए हकदार होंगे ।

(2) स्थानांतरित अध्यापक उस महाविद्यालय का कर्मचारी हो जाएगा जिसमें उसे स्थानांतरित किया गया है क्योंकि उसकी सेवा-शर्तें संबंधित विश्वविद्यालय के परिनियमों द्वारा शासित होंगी ।

(3) अध्यापक के वेतन का संरक्षण अनुज्ञेय होगा किन्तु ऐसे अध्यापक को नए नियोजकों के सेवा नियम लागू होंगे ।

(4) स्थानांतरित अध्यापक संबंधित महाविद्यालय में उसके पदग्रहण करने की तारीख को कार्यरत उसके काडर में कनिष्ठतम अध्यापक होगा ।

(5) अध्यापकों को ऐसे पदों पर स्थानांतरित किया जाएगा जिसके लिए वेतन का संदाय वेतन संदाय खाते में से किया जाता है ।

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"4(1) Teachers appointment on regular basis and holding lien as permanent teachers shall be entitled to transfer after 10 years of service only once in the whole service period.

(2) The transferred teacher shall become the employee of the college to which he has been transferred as his service conditions shall be governed by the statutes of the University concerned.

(3) The protection of salary of the teacher shall be admissible but the service rules of the new employers shall be applicable, to such teacher.

(4) The transferred teacher, shall be the junior most teacher of his cadre working on the date of his joining in the college concerned.

(5) The teachers shall be transferred against such posts for which salary is paid from the salary payment account.

महाविद्यालय का प्रबंधमंडल किसी अध्यापक के लिए अपनी सम्मति देने से पूर्व यह सुनिश्चित करेगा कि संबंधित अध्यापक के विरुद्ध कोई जांच या कार्यवाही लंबित नहीं है और वह पद जिसके लिए उसे स्थानांतरण पर नियुक्त किया गया समझा गया है, उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग द्वारा विज्ञापित नहीं किया जाएगा ।

(6) एक महाविद्यालय से दूसरे महाविद्यालय में एकल/पारस्परिक स्थानांतरणों के लिए स्थानांतरण आवेदन विश्वविद्यालय द्वारा वैध रूप से अभिप्रेत और अनुमोदित प्रबंधमंडल के माध्यम से उच्चतर शिक्षा निदेशक को दोनों प्रबंधमंडलों की लिखित सम्मति सहित प्रस्तुत किया जाएगा । उच्चतर शिक्षा निदेशक, आवेदन की प्राप्ति की तारीख से एक मास के भीतर अपनी सिफारिशें सरकार को भेजेगा । सरकार या तो निदेशक की सिफारिश के आधार पर या अपनी ओर से विनिश्चय करेगी ।

(7) ऐसे स्थानांतरणों के लिए अध्यापकों को कोई यात्रा भत्ता अनुज्ञेय नहीं होगा ।

The management of the college before giving its consent to any teacher, shall ensure that no enquiry or any proceeding is pending against the teacher concerned and the post to which he has been considered to be appointed by transfer shall not be advertised by the Uttar Pradesh Higher Education Services Commission.

(6) The transfer application for single/mutual transfers from one college to other shall be submitted to the Director, High Education through the management legally construed and approved by the University along with the written consent of both the two management. The Director, High Education shall submit his recommendations to the Government within one month from the date of receipt of the application. The Government shall take decision either on the basis of recommendation of the Director or on its own.

(7) No travel allowance shall be admissible to the teachers against such transfers.

(8) पूर्व संस्था का प्रबंधक उसकी सेवा-पुस्तिका, चरित्र-पुस्तिकाएं, छुट्टी खाता, साधारण भविष्य निधि, समूह बीमा खाता और अंतिम वेतन प्रमाणपत्र, जो कि यथास्थिति, उप विद्यालय निरीक्षक/प्रादेशिक उच्चतर शिक्षा अधिकारी द्वारा प्रति-हस्ताक्षरित होगा, संबंधित क्षेत्र के प्रादेशिक उच्चतर शिक्षा अधिकारी और उच्चतर शिक्षा निदेशक को भेजेगा ।"

37. उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि प्रधानाचार्य का एक संस्था से किसी दूसरी संस्था में स्थानांतरण करने के लिए उस मामले में राज्य सरकार में या किसी अन्य प्राधिकारी में कोई शक्ति निहित नहीं है, जैसा कि वह उदाहरणार्थ सरकार द्वारा चलाई जाने वाली संस्थाओं के मामले में कर सकती है जहां एक सरकारी महाविद्यालय के प्रधानाचार्य को उसी काडर में किसी अन्य सरकारी महाविद्यालय में स्थानांतरित किया जा सकता है । उपर्युक्त नियम 4 के उपनियम (1) में किसी प्राधिकारी में स्थानांतरण की शक्ति निहित होने के बारे में उल्लेख नहीं है । इसमें दस वर्ष की सेवा के पश्चात् संपूर्ण सेवा अवधि में केवल एक बार स्थानांतरित किसी स्थायी अध्यापक की हकदारी के बारे में उल्लेख किया गया है । उपनियम (2) में यह उपबंध है कि स्थानांतरित अध्यापक उस महाविद्यालय का कर्मचारी हो जाएगा जिसमें उसे स्थानांतरित किया गया है । इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उपनियम (4) में यह उपबंध है कि स्थानांतरित अध्यापक उस काडर में, जिसमें उसे स्थानांतरित किया जा सकता है, सबसे नीचे होगा । उस उपबंध का तब अधिक महत्व नहीं हो सकेगा जब किसी प्रधानाचार्य को एक महाविद्यालय से किसी दूसरे महाविद्यालय में स्थानांतरित करने का प्रश्न उठता है किन्तु इससे निश्चित रूप से यह दर्शित होता है कि जहां प्रधानाचार्य से नीचे वाले काडर में पदों की बहुलता होती है वहां किसी अन्य संस्था से स्थानांतरित व्यक्ति उक्त काडर में सबसे नीचे आएगा । यह भी एक ऐसी परिस्थिति है जो कि इस सिद्धांत को नकारती है कि प्रधानाचार्य एक ही काडर के भाग हैं ।

---

(8) The Manager of the former institution shall send its service book, Character Rolls, Leave Account, G.P.F., Group Insurance account and last pay certificate counter signed by the District Inspector of Schools/Regional Higher Education Officer, as the case may be, to the Regional Higher Education Officer of the Region concerned and to the Director, Higher Education".

38. इसी प्रकार, उपनियम (5) के निबंधनानुसार, महाविद्यालय के प्रबंधमंडल को अध्यापक के स्थानांतरण के लिए अपनी सम्मति देने से पूर्व यह सुनिश्चित करना होता है कि संबंधित अध्यापक के विरुद्ध कोई जांच या कार्यवाही लंबित नहीं है । इससे यह अभिप्रेत है कि संस्थाएं किसी अध्यापक को भले ही वह स्थानांतरित होना चाहता हो तब भी भारमुक्त करने से इनकार कर सकेंगी यदि उसके विरुद्ध कोई जांच लंबित है । उपनियम (6) में यह परिकल्पित है कि स्थानांतरण केवल परस्पर सम्मति द्वारा ही किया जा सकता है ।

39. उपर्युक्त से यह प्रचुर रूप से स्पष्ट होता है कि प्रधानाचार्यों के मामले में अंतर-परिवर्तनीयता और स्थानांतरणीयता के लक्षण उसी अनुपात में मौजूद नहीं हैं जिस अनुपात में वे निचले काडर में अध्यापकों के मामले में मौजूद हैं । अतः हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि भिन्न-भिन्न सहायताप्राप्त और सहबद्ध संस्थाओं में सेवारत प्रधानाचार्यों का कोई काडर नहीं है और प्रधानाचार्य का पद किसी संस्था में एकल पद है । ऐसे किसी पद का आरक्षण न केवल इस कारण स्पष्ट रूप से अननुज्ञेय है क्योंकि उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम [उत्तर प्रदेश पब्लिक सर्विसेज़ (रिज़र्वेशन फॉर शेड्यूल्ड कास्ट्स, शेड्यूल्ड ट्राइब्स एंड अदर बैकवर्ड कलासिज़) ऐक्ट],1994 में सहायताप्राप्त संस्थाओं में "काडर सदस्य-संख्या" पर आधारित आरक्षण के लिए उपबंध है बल्कि इस कारण भी कि ऐसी सदस्य-संख्या काडर में केवल एक पद तक सीमित होने के कारण इस न्यायालय के उन निर्णयों के प्रकाश में, जिनके प्रति हम अब निर्देश करेंगे, वैध रूप से आरक्षण के अध्यधीन नहीं है ।

40. हम इस प्रश्न पर इस न्यायालय के विनिश्चयों के प्रति निर्देश करने से पूर्व कि क्या कोई एकल पद आरक्षित किया जा सकता है, **बलबीर कौर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय की अवेक्षा करेंगे जिसका श्री पटवालिया द्वारा अवलंब लिया गया है । वह मामला भी उत्तर प्रदेश राज्य से था । उसका संबंध उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग और चयन बोर्ड अधिनियम (यू. पी. सेकेंडरी एजूकेशन सर्विसिज़ कमीशन एंड सलेक्शन बोर्ड्स ऐक्ट), 1982 के अधीन प्रधानाचार्य की नियुक्ति से था । उस मामले में जो प्रश्न विचारार्थ उद्‌भूत हुए थे, उनमें से एक प्रश्न यह था कि क्या माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं में प्रधानाचार्य का पद ऊपर निर्दिष्ट 1994 के आरक्षण अधिनियम

को ध्यान में रखते हुए आरक्षण के अध्यधीन था । इस न्यायालय ने उस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दिया और उस निष्कर्ष के समर्थन में दो कारण दिए । प्रथमतः, न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग और चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 की धारा 10 द्वारा प्रधानाचार्य के पद को अभिव्यक्त रूप से वर्ष 1994 के आरक्षण अधिनियम के कार्यक्षेत्र से अपवर्जित किया गया था । द्वितीयतः और महत्वपूर्ण रूप से किसी शैक्षिक संस्था में प्रधानाचार्य का पद उस काडर में एकल पद होने के कारण ऐसा आरक्षण शत-प्रतिशत आरक्षण करने की कोटि में आएगा जो कि संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 के अधीन अननुज्ञेय है । इस न्यायालय ने **डा. चक्रधर पासवान** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] और **स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा और अनुसंधान संस्थान, चंडीगढ़** बनाम **संकाय संघ और अन्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि किसी एकल पद काडर में प्रत्यक्षतः या रोस्टर के चक्रानुक्रम के माध्यम से किया गया आरक्षण विधिमान्य नहीं है । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि चूंकि आरक्षण अधिनियम, 1994 में आरक्षण के प्रयोजन के लिए उत्तर प्रदेश राज्य में की सभी शैक्षिक संस्थाओं को एक-साथ मिलाने का उपबंध नहीं है इसलिए 1994 के अधिनियम के अधीन आरक्षण के सिद्धांतों को लागू करने के प्रयोजनार्थ सभी शैक्षिक संस्थाओं में प्रधानाचार्यों के पद को एक-साथ मिलाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है । इस संबंध में निम्नलिखित पद्यांश उपयुक्त है :–

> "यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी एकल पद वाले काडर में कोई आरक्षण नहीं हो सकता है और इसके प्रतिकूल ऐसे विनिश्चयों का अनुमोदन नहीं किया गया था जिनमें एकल पद वाले काडर में प्रत्यक्षतः या रोस्टर के चक्रानुक्रम के माध्यम से आरक्षण को कायम रखा गया था । इसके अलावा, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, न तो मूल अधिनियम और न ही उसके अधीन या 1994 के अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों में आरक्षण के प्रयोजन के लिए उत्तर प्रदेश राज्य में की सभी शैक्षिक संस्थाओं को एक-साथ मिलाने के लिए उपबंध था और इसलिए 1994 के अधिनियम के अधीन आरक्षण के सिद्धांत को लागू करने के प्रयोजनार्थ सभी शैक्षिक

---

[1] (1988) 2 एस. सी. सी. 214.

[2] (1998) 4 एस. सी. सी. 1.

संस्थाओं में प्रधानाचार्यों के पद को एक-साथ मिलाने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है ।"

41. प्रत्यर्थियों की ओर से यह दलील दी गई थी कि जबकि उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग और चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 की धारा 10 में संस्था के प्रधान के पद को अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों की संख्या का अवधारण करने की प्रक्रिया से विनिर्दिष्ट रूप से अपवर्जित किया गया है किन्तु 1980 के अधिनियम के मामले में, जो डिग्री और स्नातकोत्तर डिग्री महाविद्यालयों में नियुक्ति के लिए चयन को विनियमित करता है, ऐसा कोई अपवर्जन नहीं किया गया था । अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल के अनुसार इससे यह विवक्षित होता है कि जहां कहीं भी विधानमंडल का आशय यह था कि प्रधानाचार्य का पद आरक्षण से अपवर्जित किया जाना चाहिए वहां उसने विनिर्दिष्ट रूप से ऐसा उपबंध किया था और यदि ऐसा अपवर्जन आशयित नहीं था तो ऐसा कोई उपबंध नहीं किया गया था । अपीलार्थियों के विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि **बलबीर कौर** (उपर्युक्त) वाला मामला उस आधार पर प्रभेद्य था ।

42. हम ऐसा नहीं समझते हैं । यह सही है कि 1982 के अधिनियम की धारा 10 में, जो कि सीधी भर्ती के लिए अभ्यर्थियों के चयन के लिए प्रक्रिया नियत करती है, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों का अवधारण करना और ऐसी रिक्तियों को उक्त अधिनियम के अधीन स्थापित आयोग को निर्दिष्ट करना अपेक्षित है किन्तु संस्था के प्रधानाचार्य/प्रमुख को उक्त अवधारण से अपवर्जित किया गया है किन्तु यह भी समान रूप से सही है कि 1982 के अधिनियम की धारा 12 के अधीन, जिससे हमारा संबंध है, आरक्षित प्रवर्गों के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित रखी जाने वाली रिक्तियों की संख्या का अवधारण करने के लिए संस्थाओं द्वारा कोई कार्यवाही किया जाना अपेक्षित नहीं है । परिणामस्वरूप, ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसके द्वारा संस्था के प्रधानाचार्य/प्रमुख के पद को ऐसी किसी प्रक्रिया से अपवर्जित किया जाता है । दोनों उपबंधों की उस अर्थ में बराबरी नहीं की जा सकती है । एक मामले में आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों की संख्या का अवधारण करना आवश्यक होता है जबकि दूसरे मामले में ऐसी कोई अपेक्षा अनुबंधित नहीं की गई है । अतः, 1982 के अधिनियम के अधीन प्रधानाचार्य के पद को ऐसे अवधारण से अपवर्जित करने पर

1980 के अधिनियम की धारा 12 के अधीन आरक्षित रिक्तियों के अवधारण की अपेक्षा करने वाले किसी उपबंध के अभाव में अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है ।

43. इसके अलावा, हमने अपीलार्थी-राज्य के विद्वान् काउन्सेल और प्रबंधमंडलों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री द्विवेदी से बार-बार यह पूछा कि क्या इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि माध्यमिक शैक्षिक संस्थाओं में प्रधानाचार्य ऐसे किसी आरक्षण के अध्यधीन नहीं थे, डिग्री और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों के साथ आरक्षण के विषय में भिन्न-भिन्न व्यवहार करने का कोई तर्काधार है । हमें विद्वान् काउन्सेलों से न तो किसी स्पष्टीकरण की कोई प्रत्याशा थी और न ही कोई स्पष्टीकरण प्राप्त हुआ । इसका कारण स्पष्ट था । यदि माध्यमिक विद्यालय में प्रधानाचार्यों के पद, जिनकी संख्या डिग्री और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों के पदों की संख्या से काफी बड़ी है, आरक्षण के अध्यधीन नहीं हैं और उन्हें विनिर्दिष्ट रूप से उस प्रक्रिया से अपवर्जित किया गया है तो इस संबंध में कोई संभव कारण नहीं है कि डिग्री और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों के पद, जिनकी संख्या उच्चतर शिक्षा देने वाले महाविद्यालयों में उपलब्ध पदों की संख्या से अनुपाततः कम हैं, ऐसे आरक्षण के अध्यधीन क्यों होने चाहिएं । इसलिए, माध्यमिक विद्यालयों के मामले में जो कुछ सही है वह डिग्री और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में भी सही होगा । अतः ऐसे किसी निर्वचन से बचना चाहिए जो विधिक स्थिति को असंगत या बेतुका बनाता है ।

44. वह अन्य कारण जिसके लिए हमें अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलील को नामंजूर करने में कोई कठिनाई नहीं है, यह तथ्य है कि इस न्यायालय ने **बलबीर कौर** (उपर्युक्त) वाले मामले में विनिर्दिष्ट रूप से इस प्रश्न की परीक्षा की थी कि क्या माध्यमिक संस्थाओं में प्रधानाचार्यों के पद ऐसे किसी उपबंध के बिना आरक्षित रखे जा सकते हैं जिसके द्वारा ऐसे पदों को आरक्षण से अपवर्जित किया जाता है । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि चूंकि प्रधानाचार्यों के पद एकल पद हैं इसलिए उनके संबंध में ऐसा आरक्षण अनुज्ञेय नहीं है । राज्य या प्रबंधमंडलों द्वारा उस दृष्टिकोण को किसी भी प्रकार से अनदेखा करने या नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है । अन्यथा भी यह बात इस न्यायालय के विनिश्चयों द्वारा उचित रूप से सुस्थापित हो चुकी है कि क्या कोई एकल पद आरक्षित किया जा सकता है अथवा नहीं, जिनके प्रति हमें केवल संक्षेप में निर्देश करने की आवश्यकता है ।

45. **इंदिरा साहनी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय आरक्षण के विषय में एक नजीर बना हुआ है । इस न्यायालय ने उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 14, 15 और 16 के अधीन आरक्षण ऐसी रीति में लागू किया जाना चाहिए जिससे कि एक ओर आरक्षित वर्गों के लिए और दूसरी ओर समुदाय के अन्य सदस्यों के लिए उपलब्ध अवसरों के बीच संतुलन बनाए रखा जा सके । ऐसा आरक्षण सांविधानिक रूप से विधिमान्य होने की दृष्टि से 50 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता है ।

46. **चक्रधर पासवान** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने **आरती राय चौधरी** बनाम **भारत संघ**[2], **एम. आर. बालाजी** बनाम **मैसूर राज्य**[3] और **टी. देवदासन** बनाम **भारत संघ**[4] वाले मामलों में के विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि भिन्न-भिन्न संस्थाओं में के पृथक् पदों को आरक्षण के प्रयोजन के लिए एक-साथ मिलाया नहीं जा सकता है और आरक्षण केवल वहां किया जा सकता है जहां एक से अधिक पद हों । किसी काडर में केवल एकल पद पर आरक्षण शत-प्रतिशत आरक्षण की कोटि में आएगा और इससे संविधान के अनुच्छेद 14(1) और 16(4) का अतिक्रमण होगा । **भिडे गर्ल्स एजूकेशन सोसायटी** बनाम **शिक्षा अधिकारी, जिला परिषद्, नागपुर और अन्य**[5] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी संस्था में प्रधानाध्यापिका का एकल पद आरक्षित नहीं किया जा सकेगा क्योंकि ऐसा करना शत-प्रतिशत आरक्षण करने की कोटि में आएगा ।

47. इस संविवाद को **स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा और अनुसंधान संस्थान, चंडीगढ़** बनाम **संकाय संघ और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के विनिश्चय द्वारा प्राधिकारपूर्वक समाप्त कर दिया जिसमें इस न्यायालय ने **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **माधव पुत्र गजानन चौबल और एक अन्य**[6], **भारत संघ** बनाम **ब्रज लाल ठाकुर**[7]

---

[1] (1992) सप्ली. (3) एस. सी. सी. 217.
[2] (1974) 1 एस. सी. सी. 87.
[3] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 649.
[4] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 179.
[5] (1993) सप्ली. (3) एस. सी. सी. 527.
[6] (1997) 2 एस. सी. सी. 332.
[7] (1997) 4 एस. सी. सी. 278.

और **बिहार राज्य** बनाम **बागेश्वरी प्रसाद**[1] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों को उलट दिया था और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया था :–

> "34. एकल पद वाले किसी काडर में किसी भी समय रोस्टर के चक्रानुक्रम के कारण आरक्षण से ऐसी स्थिति उत्पन्न होना आवश्यक है जहां उस काडर में का ऐसा एकल पद अनन्य रूप से पिछड़े वर्गों के सदस्यों के लिए आरक्षित किया जाएगा और सामान्य सदस्यों को पूर्णतः अपवर्जित किया जाएगा । सामान्य सदस्यों का ऐसा पूर्णतः अपवर्जन और पिछड़े वर्गों के लिए शत-प्रतिशत आरक्षण सांविधानिक ढांचे में अनुज्ञेय नहीं है । इस निमित्त इस न्यायालय के विनिश्चय दशाब्दियों से संगत रहे हैं ।
>
> 35. अतः, जब तक किसी काडर में पदों की बहुलता न हो तो तब तक आरक्षण का प्रश्न उद्‌भूत नहीं होगा क्योंकि एकल पद वाले किसी काडर में किसी भी माध्यम से और रोस्टर के चक्रानुक्रम के तरीके से भी आरक्षण के किसी भी प्रयास से ऐसे पद का शत-प्रतिशत आरक्षण सृजित होना अवश्यंभावी है जब कभी ऐसे आरक्षण को लागू किया जाता है । किसी एकल पद वाले काडर के संबंध में रोस्टर के चक्रानुक्रम के तरीके का केवल यह अर्थ होगा कि किन्हीं अवसरों पर पूर्ण आरक्षण हो जाएगा और ऐसे पद पर नियुक्ति समुदाय के उस बड़े भाग के सदस्यों के लिए, जो आरक्षित वर्ग में नहीं आते हैं, निषिद्ध हो जाएगी किन्तु किन्हीं अन्य अवसरों पर वह पद खुली प्रतियोगिता के लिए उपलब्ध होगा जबकि वास्तव में ऐसे सभी अवसरों पर, एकल पद वाले काडर का पद समाज के सभी वर्गों में से खुली प्रतियोगिता द्वारा ही भरा जाना चाहिए ।"

48. उपर्युक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि प्रत्येक सहायताप्राप्त/सहबद्ध संस्था में प्रधानाचार्य का पद उस काडर का एकल पद होने के कारण किसी आरक्षण के अध्यधीन नहीं आता है । तदनुसार, प्रश्न सं. (ii) का उत्तर सकारात्मक दिया जाता है ।

49. इसके बाद, चयनित अभ्यर्थियों के विद्वान काउन्सेल श्री पटवालिया ने यह दलील दी कि यदि उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित

---

[1] (1995) सप्ली. (1) एस. सी. सी. 432.

करना सही था कि रिक्ति के आरक्षण को विनियमित करने वाले 1994 के अधिनियम के उपबंध भिन्न-भिन्न सहबद्ध/सहायताप्राप्त डिग्री और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में प्रधानाचार्यों के पद को लागू नहीं होते थे तो ऐसा कोई कारण नहीं था कि चयनित अभ्यर्थियों द्वारा इस न्यायालय को अपनी नियुक्तियों के समर्थन में उठाए गए कदम के रूप में दिए गए वचनबंधों का उन्मोचन और चयनित अभ्यर्थियों को ऐसे किसी निदेश के अधीन रहते हुए, जो कि सक्षम न्यायालय चयन प्रक्रिया की विधिमान्यता और पारिणामिक नियुक्तियों के संबंध में जारी करे, अधिष्ठायी आधार पर पदग्रहण करने के लिए अनुज्ञात क्यों नहीं किया जाना चाहिए । उसने इस बात पर जोर दिया कि राज्य सरकार नियुक्त किए गए अभ्यर्थियों के पक्ष में वेतनवृद्धियों और भत्तों इत्यादि के रूप में ऐसी नियुक्तियों के पूरे फायदे केवल इसलिए नहीं दे रही थी क्योंकि की गई नियुक्तियां इन कार्यवाहियों के परिणाम और अभ्यर्थियों द्वारा दिए गए वचनबंध के अध्यधीन थीं । अनुकल्पतः, उसने इस बात पर जोर दिया कि भले ही राज्य द्वारा इस न्यायालय के निदेशों के अनुसरण में की गई नियुक्तियां अपूर्ण और उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाओं के परिणाम के अध्यधीन रहनी थीं तो भी इस संबंध में कोई कारण नहीं है कि चयनित अभ्यर्थियों को विधिसम्मत रूप से संदेय देयों को, ऐसी शर्तों पर, जैसी कि न्यायालय उपयुक्त और उचित समझे, उन्मोचित करने का निदेश क्यों नहीं दिया जाना चाहिए ।

50. इसके विपरीत, राज्य और प्रबंधमंडल की ओर से यह दलील दी गई थी कि चयनित अभ्यर्थियों को कोई और फायदे उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित रिट याचिकाओं का निपटारा होने के बाद दिए जा सकते थे, जिनका निपटारा सभी संबद्ध व्यक्तियों के हित में शीघ्र किया जा सकता है ।

51. जहां तक सहबद्ध और सहायताप्राप्त संस्थाओं में प्रधानाचार्य के एकल पदों पर आरक्षण लागू करने का संबंध है, हमने ऊपर प्रश्न सं. (ii) का उत्तर देते समय उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत की पुष्टि कर दी है । उस सीमा तक इस संविवाद को समाप्त किया जा रहा है । फिर भी, यह प्रश्न कि क्या कोई अनाचार किया गया था और यदि ऐसा किया गया था तो क्या राज्य सरकार द्वारा 1980 के अधिनियम की धारा 6 या संविधान के अनुच्छेद 154 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए चयन प्रक्रिया अकृत की जा सकती है, इस तथ्य को देखते हुए हमारे द्वारा अनिर्णीत छोड़ा गया है कि चयन प्रक्रिया की वैधता से संबंधित प्रश्न उच्च

न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए लंबित है जहां सभी संबंधित पक्षकारों के पास अपना-अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने का अवसर होगा । उन प्रश्नों के संबंध में सरकारी स्तर पर किसी समानांतर जांच को हमारे द्वारा अनावश्यक अभिनिर्धारित किया गया है । अतः, जहां तक चयन प्रक्रिया की वैधता का संबंध है, पक्षकारों के बीच विवाद का अंतिम न्यायनिर्णयन नहीं किया गया है । ऐसी स्थिति होने के कारण हम नियुक्त किए गए अभ्यर्थियों को उनके द्वारा दिए गए उस वचनबंध से उत्पन्न होने वाली बाध्यताओं से उन्मोचित करना आवश्यक नहीं समझते हैं जिनके अध्यधीन ही नियुक्तियां करना अनुज्ञात किया गया था । तथापि, इससे यह अभिप्रेत नहीं हो सकता है कि नियुक्त किए गए अभ्यर्थी उस पद के पूर्ण फायदों का दावा करने के हकदार नहीं होंगे जो कि ऐसे पदधारी को उस अवधि के दौरान अनुज्ञेय है जिसमें ऐसी नियुक्तियां प्रवृत्त बनी रहती हैं जिस पर उन्हें नियुक्त किया गया है । वे निदेश भी, जिनके अधीन नियुक्तियां की जानी अनुज्ञात की गई थीं, राज्य को उन फायदों को रोकने की अनुज्ञा नहीं देते जो विधिसम्मत रूप से ऐसी नियुक्तियों से उत्पन्न होते हैं । यदि नियुक्त किए गए अभ्यर्थियों को भत्तों के रूप में कोई अतिरिक्त वित्तीय फायदे संदेय हो जाते हैं तो उन्हें वे फायदे लेने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए । इन सभी फायदों का उपभोग भी उन वचनबंधों के अधीन होंगे जो नियुक्त किए गए अभ्यर्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष फाइल किए हैं ।

52. हमारे समक्ष यह आशंका व्यक्त की गई थी कि यह मामला लम्बे समय तक उच्च न्यायालय में लटकता रह सकता है विशेषकर इस कारण कि रिट याची उच्च न्यायालय के समक्ष चयनित अभ्यर्थियों को पक्षकारों के रूप में शामिल करने में असफल रहे हैं । यह दलील दी गई थी कि इस न्यायालय द्वारा ऐसी किसी आशंका को समाप्त करने के लिए चयनित अभ्यर्थियों का नाम जोड़ने के लिए आदेश पारित किए जा सकते हैं । हमें इस संबंध में समुचित आदेश पारित करने में कोई अड़चन प्रतीत नहीं होती है विशेषकर तब जब कि हमारे समक्ष कोई भी पक्षकार उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित रिट याचिकाओं में चयनित अभ्यर्थियों को पक्षकार प्रत्यर्थियों के रूप में आलिप्त करने के विरुद्ध नहीं है ।

53. परिणामस्वरूप, हम निम्नलिखित निदेशों के साथ इन अपीलों का निपटारा करते हैं :—

(1) उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश, जिस सीमा तक वे यह अभिनिर्धारित करते हैं कि सहबद्ध/सहायताप्राप्त महाविद्यालयों में प्रधानाचार्य के पद आरक्षण के अध्यधीन नहीं हैं, पुष्ट किए जाते हैं ।

(2) सरकार द्वारा जारी किया गया तारीख 12 जून, 2007 का वह आदेश, जिसके द्वारा इलाहाबाद के मंडल आयुक्त को चयन प्रक्रिया की वैधता की जांच करने के लिए जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था और उक्त जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट अभिखंडित की जाती है और उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में पारित आदेश की पुष्टि की जाती है ।

(3) यह प्रश्न कि क्या सरकार उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 की धारा 6 के अधीन या संविधान के अनुच्छेद 154 के अधीन चयन प्रक्रिया की वैधता की जांच करने का निदेश देने के लिए सक्षम थी अथवा नहीं, उच्च न्यायालय के समक्ष चयन प्रक्रिया की वैधता को चुनौती देने वाली रिट याचिकाओं के लंबित रहने के कारण अनिर्णीत छोड़ा जाता है ।

(4) उच्च न्यायालय अपने समक्ष लंबित रिट याचिकाओं में प्रश्नगत चयन प्रक्रिया से संबंधित सभी मुद्दों की परीक्षा करने के लिए स्वतंत्र होगा जिसमें उसमें अनुसरण की गई प्रक्रिया की वैधता भी है । सरकार, इस बात पर निर्भर करते हुए कि उच्च न्यायालय चयन प्रक्रिया को विधिमान्य पाता है अथवा नहीं, राज्य सेवा चयन आयोग के सदस्यों के विरुद्ध जांच संस्थित करने के लिए स्वतंत्र होगी, यदि ऐसी जांच विधि के अधीन अन्यथा अनुज्ञात हो । तथापि, यदि उच्च न्यायालय चयन प्रक्रिया को कायम रखता है और रिट याचिकाएं खारिज कर देता है तो राज्य सरकार के लिए प्रशासनिक दृष्टि से मामले के संबंध में और जांच प्रारंभ करने की कोई गुंजाइश नहीं होगी । व्यथित पक्षकार उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत को विधि के अनुसार समुचित कार्यवाहियों में चुनौती देने के लिए स्वतंत्र होगा ।

(5) वे चयनित अभ्यर्थी, जिन्होंने इस न्यायालय में वचनबंध फाइल किए हैं और जिन्हें इस न्यायालय के आदेशों के अनुसरण में प्रधानाचार्य के पदों पर नियुक्त किया गया है, उच्च न्यायालय में लंबित ऐसी प्रत्येक रिट याचिका में पक्षकार के रूप में आलिप्त हो जाएंगे, जिनमें चयन प्रक्रिया को

चुनौती दी गई है । चयनित अभ्यर्थी इस निदेश के आधार पर प्रत्येक याचिका में कोई और नोटिस दिए बिना तारीख 2 मई, 2011 को उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे और अपने-अपने प्रति-शपथपत्र फाइल करेंगे । अभ्यर्थियों की ओर से आवश्यक कार्रवाई करने में हुई असफलता पर उच्च न्यायालय द्वारा उपयुक्त रूप से कार्यवाही की जाएगी, जिसे उन अभ्यर्थियों के विरुद्ध जो इस निदेश का अनुपालन करने में असफल रहते हैं, एकपक्षीय रूप से कार्यवाही करने की स्वतंत्रता होगी ।

(6) मामले की सुनवाई शीघ्र करने की दृष्टि से इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से अनुरोध किया जाता है रिट याचिकाओं की शीघ्र सुनवाई और निपटारे के लिए उन्हें यथासंभव तारीख 31 दिसम्बर, 2011 से पूर्व उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष रखा जाए ।

(7) उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिकाओं का निपटारा होने तक चयनित अभ्यर्थी प्रधानाचार्य के पद पर अन्यथा अनुज्ञेय अपने वेतन और भत्ते, जिनमें वेतनवृद्धियां इत्यादि भी हैं इस प्रकार प्राप्त करने के हकदार होंगे मानो उनकी नियुक्तियां किसी विधिमान्य और सारभूत आधार पर की गई थीं । तथापि, इससे उत्पन्न होने वाले ऐसे फायदे उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाओं के परिणाम और नियुक्त किए गए अभ्यर्थियों द्वारा इस न्यायालय को दिए गए वचनबंधों के अध्यधीन होंगे और उन वचनबंधों के बारे में यह समझा जाएगा कि वे उस समय तक बने हुए हैं जब तक रिट याचिकाओं का अंतिम रूप से निपटारा नहीं कर दिया जाता है ।

54. पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

तदनुसार आदेश किया गया ।

ग्रो.

[2012] 1 उम. नि. प. 43

हरजीत सिंह

बनाम

पंजाब राज्य

30 मार्च, 2011

न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् और न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान

स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 – धारा 18 [सपठित धारा 2(xv)] – अपीलार्थी-अभियुक्त के पास अफीम पाया जाना – पाई गई अफीम की मात्रा, विहित न्यूनतम मात्रा से अधिक होना तथा वाणिज्यिक मात्रा पाया जाना किंतु अपीलार्थी व्यौहारी नहीं था – अपीलार्थी-अभियुक्त की निचले न्यायालयों द्वारा की गई दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

प्रस्तुत मामले में, यह दांडिक अपील 2005 की दांडिक अपील सं. 1711 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ की एकल न्यायपीठ द्वारा पारित किए गए तारीख 19 मई, 2010 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने सेशन मामला सं. 72 टी/5.9.03/7.10.04 में विद्वान् एकल न्यायाधीश, फतेहगढ़ साहिब द्वारा पारित किए गए तारीख 2 सितंबर, 2005 के उस निर्णय और आदेश की पुष्टि की है जिसके द्वारा अपीलार्थी को स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "स्वापक ओषधि अधिनियम" कहा गया है) की धारा 18 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था और 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और एक लाख रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर छह मास का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया था । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अफीम, अफीम के पौधे से ही निकाली जाती है । अफीम के पौधे से जो रस निकलता है, वह अफीम है । जिस रस का इस पौधे से स्राव होता है उसमें मार्फीन, कोडीन, थीबेन आदि जैसे अनेक मध्यसारिक पदार्थ होते हैं । अफीम में मार्फीन मूल मध्यसारिक पदार्थ है । अफीम ऐसा पदार्थ है जो एक बार देखे और सूंघ लिए जाने पर उसकी गंध कभी भुलाई नहीं जा सकती है क्योंकि अफीम का एक विशिष्ट रंग-रूप है और उसमें

अत्यंत तीक्ष्ण और विशेष गंध आती है । इस प्रकार इसे बिना किसी भी रासायनिक विश्लेषण के भी पहचाना जा सकता है । रासायनिक विश्लेषण किया जाना केवल तभी आवश्यक है जब मिश्रण में अफीम की अत्यंत तनु मात्रा मिलाई गई हो जो कि आसानी से न तो देखी जा सके और न ही सूंघने पर पहचानी जा सके । यदि अन्य किसी सामग्री के साथ अफीम को नहीं मिलाया जाता है तब उसका रासायनिक विश्लेषण किया जाना तनिक भी आवश्यक नहीं है । निःसंदेह, विश्लेषण सदैव तभी आवश्यक होगा जब अफीम मिश्रण में पाई गई हो और मिश्रण में अंतर्विष्ट मार्फीन की मात्रा का पता, अफीम अधिनियम के अधीन अफीम की परिभाषा के प्रयोजन हेतु, लगाया जाना हो । (पैरा 14 और 15)

वर्तमान मामले में, अपीलार्थी से बरामद की गई सामग्री अफीम है । इस सामग्री की मात्रा वाणिज्यिक है और यह अपीलार्थी के निजी सेवन के लिए नहीं हो सकती है । इस प्रकार अपीलार्थी के पास विनिषिद्ध पदार्थ पाया गया है जिससे स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 8 के उपबंधों का अतिक्रमण होता है और उसे स्वापक पदार्थ अधिनियम की धारा 18(ख) के अधीन ठीक ही दोषसिद्ध किया गया है । वर्तमान मामला स्वापक पदार्थ अधिनियम की धारा 2(XV) के खंड (क) के अंतर्गत पूरी तरह आता है और खंड (ख) इस मामले को लागू नहीं होगा जिसका स्पष्ट कारण यह है कि बरामद किया गया पदार्थ अफीम है जो अफीम पोस्त का स्कंदित रस है । यह केवल अन्य किसी उदासीन पदार्थ के साथ मिलकर बना अफीम का मिश्रण नहीं है । उक्त स्कंदित रस से कोई भी नया पदार्थ निर्मित करने के लिए कोई भी तरीका नहीं है । दंड अधिरोपित करने के प्रयोजन के लिए यदि अफीम में मार्फीन की मात्रा को निश्चायक संघटक के रूप में लिया गया है जिसका उल्लेख प्रविष्टि सं. 92 में किया गया है, अनावश्यक हो जाती है । इस प्रकार चूंकि मामला अधिनियम की धारा 2 (XV) के खंड (क) के अंतर्गत आता है, इसलिए इस मुद्दे पर अतिरिक्त विचार अपेक्षित नहीं है । इसके अतिरिक्त, अफीम के वियुत्पाद पर प्रविष्टि सं. 93 के अंतर्गत विचार किया जाना चाहिए, इसी प्रकार अधिनियम की धारा 2 (XV) के खंड (क) के अंतर्गत शुद्ध अफीम में मार्फीन की मात्रा का सुनिश्चित किया जाना अपेक्षित नहीं है । प्रविष्टि सं. 92 केवल यह सुनिश्चित करने के लिए है कि क्या अफीम की मात्रा, 'कम मात्रा' की श्रेणी में आती है या 'वाणिज्यिक मात्रा' की । इस मामले को लागू अधिसूचना में प्रत्येक स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों की विनिषिद्ध सामग्रियों की कम और वाणिज्यिक मात्राओं को स्पष्ट किया गया है । प्रविष्टि सं. 56 हिरोइन पदार्थ, प्रविष्टि सं. 77

मार्फीन, प्रविष्टि सं. 92 अफीम, प्रविष्टि सं. 93 अफीम व्युत्पाद आदि-आदि के बारे में हैं । अतः, अधिसूचना के अंतर्गत अफीम और मार्फीन के अंतर को ही स्पष्ट नहीं किया गया है अपितु अफीम और अफीम व्युत्पाद के बीच अंतर को भी स्पष्ट किया गया है । निःसंदेह, मार्फीन अफीम के व्युत्पादों में से एक है । इस प्रकार, विधि के अधीन प्रथम अपेक्षा यह की गई है कि बरामद किए गए पदार्थ की शनाख्त की जाए और उसे वर्गीकृत किया जाए और इसके पश्चात् यह पता लगाया जाए कि यह पदार्थ किस प्रविष्टि के अंतर्गत आएगा । यदि यह धारा 2(XV) के खंड (क) में यथा परिभाषित अफीम है, तब मार्फीन अवयव की प्रतिशतता पूर्णतया असंगत होगी । ऐसा तभी होगा यदि अपराध संबंधी पदार्थ स्वापक पदार्थ अधिनियम की धारा 2(XV) के खंड (ख) में यथा परिभाषित मिश्रण के रूप में पाया जाता है, तब ऐसी स्थिति में मार्फीन अवयव की मात्रा सुसंगत हो जाती है । (पैरा 21 और 24)

अपीलार्थी से इस प्रकार बरामद की गई सामग्री स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 2(XV) के निबंधनों के अधीन अफीम है । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, अफीम में मार्फीन जैसे अवयव का निश्चित किया जाना इस प्रयोजन के लिए पूर्णतया असंगत होगा कि क्या बरामद किया गया पदार्थ कम या वाणिज्यिक मात्रा में है । संपूर्ण पदार्थ को अफीम माना जाना चाहिए क्योंकि बरामद की गई सामग्री, मिश्रण नहीं है और यह मामला पूर्ण रूप से प्रविष्टि सं. 92 के अंतर्गत आता है । निःसंदेह, अफीम की सांद्रता (शक्ति) के संबंध में न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट है जिसमें मार्फीन अवयव की विशिष्टियों का उल्लेख किया गया है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अफीम में कुछ मार्फीन अंतर्विष्ट होती है जो विहित मात्रा से कम नहीं होनी चाहिए, तथापि, दंड की मात्रा निश्चित किए जाने के लिए मार्फीन की प्रतिशतता विनिश्चायक संघटक नहीं हैं क्योंकि मार्फीन से संबंधित प्रविष्टि से हटकर एक विशिष्ट और अलग प्रविष्टि के अंतर्गत ही अफीम पर विचार किया जाना चाहिए । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अपील में कोई सार नहीं है । (पैरा 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2008] (2008) 5 एस. सी. सी. 161 :
ई. माइकल राज बनाम **सतर्कता अधिकारी, स्वापक नियंत्रण ब्यूरो** ; 9,10,22

[2005] (2005) 7 एस. सी. सी. 550 :
अमरसिंह राजीभाई बरोत बनाम **गुजरात राज्य** ; 23

[1968] (1968) 34 सी. एल. टी. 1 (एस. सी.) :
बैद्यनाथ मिश्रा और एक अन्य बनाम **उड़ीसा राज्य** ; 15

[1967] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1550 :
आंध्र प्रदेश राज्य बनाम **मडिगा बूसेन्ना और अन्य** । 15

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 816.

2005 की दांडिक अपील सं. 1711 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ की एकल न्यायपीठ के तारीख 19 मई, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री आर. एस. सूरी (वरिष्ठ अधिवक्ता), वी. मुखर्जी, सुश्री सुरुचि सूरी, चंचल कुमार गांगुली

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री जयंत के. सूद (अपर महाधिवक्ता), अमन राज जी. और कुलदीप सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान ने दिया ।

न्या. (डा.) चौहान – इजाजत दी जाती है ।

2. यह दांडिक अपील 2005 की दांडिक अपील सं. 1711 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ की एकल न्यायपीठ द्वारा पारित किए गए तारीख 19 मई, 2010 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने सेशन मामला सं. 72 टी/5.9.03/7.10.04 में विद्वान् एकल न्यायाधीश, फतेहगढ़ साहिब द्वारा पारित किए गए तारीख 2 सितंबर, 2005 के उस निर्णय और आदेश की पुष्टि की है जिसके द्वारा अपीलार्थी को स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "स्वापक ओषधि अधिनियम" कहा गया है) की धारा 18 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था और 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और एक लाख रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर छह मास का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया

गया था ।

3. जिन तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर यह अपील प्रस्तुत की गई है, इस प्रकार हैं कि तारीख 4 जुलाई, 2003 को पुलिस दल मंडी गोबिन्दगढ़ से जी. टी. रोड की ओर गश्त करते हुए सरकारी गाड़ी में जा रहा था । जब पुलिस दल ग्राम अम्बे माजरा के क्षेत्र में छोटी सी पुलिया के निकट पहुंचा, तब उसने अपीलार्थी को देखा जो अपने दाहिने हाथ में प्लास्टिक का एक थैला लिए हुए अम्बे माजरा की ओर से पैदल आ रहा था । पुलिस को देखकर, अपीलार्थी सड़क के बाईं ओर मुड़ गया । संदेह होने पर, पुलिस दल ने अपीलार्थी को गिरफ्तार कर लिया । इसी दौरान, स्वतंत्र साक्षी अशोक कुमार घटनास्थल पर आया और वह पुलिस दल में सम्मिलित हो गया । अपीलार्थी से कहा गया कि उसे राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में अपनी तलाशी देने का अधिकार है और इस संबंध में उसका कथन अभिलिखित किया गया । अन्वेषण अधिकारी ने सहायक पुलिस अधीक्षक श्री दिनेश प्रताप सिंह को बुलाया और उनकी मौजूदगी में निरीक्षक अमरजीत सिंह (अभि. सा. 3) ने अपीलार्थी के प्लास्टिक के थैले की तलाशी ली और उसमें रखा हुआ पदार्थ अफीम पाया गया । अफीम के 10-10 ग्राम के दो नमूने लिए गए । शेष अफीम 7.100 किलो ग्राम पाई गई । नमूनों और शेष अफीम को पुलिस दल द्वारा मुहरबंद किया गया और कब्जे में लिया गया ।

4. अपीलार्थी के विरुद्ध औपचारिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई ; अपीलार्थी की जामा तलाशी लिए जाने पर उसके पास 510/- रुपए पाए गए ; अभियुक्त का गिरफ्तारी ज्ञापन तैयार किया गया और उसे औपचारिक रूप से गिरफ्तार किया गया । अन्वेषण पूरा किए जाने के और न्यायालयिक प्रयोगशाला से अफीम के नमूनों की अंतर्वस्तु की पुष्टि किए जाने से संबंधित रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात्, अपीलार्थी के विरुद्ध स्वापक ओषधि अधिनियम की धारा 18 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप-पत्र फाइल किया गया । उसने आरोपों का दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण की मांग की ।

5. अभियोजन पक्ष ने कांस्टेबल मनजिन्दर सिंह (अभि. सा. 1), हैड कांस्टेबल जगदीश सिंह (अभि. सा. 2), निरीक्षक अमरजीत सिंह (अभि. सा. 3), सहायक पुलिस अधीक्षक दिनेश प्रताप सिंह (अभि. सा. 4) और उप निरीक्षक दलीप सिंह की परीक्षा की । क्योंकि अपीलार्थी ने स्वतंत्र साक्षी को अपने पक्ष में कर लिया था इसलिए अभियोजन पक्ष द्वारा उसकी

परीक्षा नहीं कराई गई ।

6. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन किए गए अपने कथन में, अपीलार्थी ने यह उल्लेख किया है कि अभियोजन पक्षकथन मिथ्या है ; पुलिस उसे उसके मकान से ले गई थी और पुलिस ने उससे 6,000/- रुपए छीन लिए थे ; चूंकि वर्ष 1999 में वह दुर्घटनाग्रस्त हो गया था इसलिए वह शारीरिक रूप से इतना अस्वस्थ हो गया था कि बात भी नहीं कर सकता । अपीलार्थी ने अपनी प्रतिरक्षा में छह साक्षियों की परीक्षा भी की है ।

7. साक्ष्य की संवीक्षा करने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी आरोपित अपराधों का दोषी है और उसे इसमें इसके ऊपर उल्लिखित रूप में दंडादेश अधिनिर्णीत किया गया है । इस आदेश से व्यथित होकर, उसने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की है जो तारीख 19 मई, 2010 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा खारिज की गई है । इसलिए, यह अपील फाइल की गई है ।

8. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री आर. एस. सूरी ने आरंभ के प्रक्रम पर बहुत से तथ्यात्मक और विधिक मुद्दे उठाए हैं । तथापि, परिणामतः इस पर विचार करते हुए कि दो न्यायालयों द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष निकाले गए हैं, उन्होंने प्राथमिक रूप से यह दलील दी है कि अपीलार्थी से बरामद अफीम की मात्रा 7.100 किलोग्राम है जिसमें मार्फीन की मात्रा 56.960 ग्राम अर्थात् 0.8 प्रतिशत है जो कि वाणिज्यिक मात्रा से कम है, तथापि, इस संबंध में जारी अधिसूचना के अधीन विहित न्यूनतम मात्रा से अधिक है, फिर भी न्यायालय द्वारा अधिकतम दंडादेश अधिनिर्णीत किया जाना अविवक्षित है ।

9. श्री सूरी ने **ई. माइकल राज** बनाम **सतर्कता अधिकारी, स्वापक नियंत्रण ब्यूरो**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है जिसमें न्यायालय ने गाड़ी से बरामद की गई हिरोइन के मामले पर विचार किया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि जब कोई एक या एक से अधिक उदासीन पदार्थों के साथ मिश्रित स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ बरामद किया जाता है तब दंड अधिरोपित किए जाने के प्रयोजनार्थ स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ की अंतर्वस्तु ही महत्वपूर्ण है जिस पर ही विचार किया जाएगा । अतः, दंड मार्फीन की मात्रा पर

---

[1] (2008) 5 एस. सी. सी. 161.

निर्भर है और यदि यह मात्रा वाणिज्यिक मात्रा से कम है तब अधिकतम दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता है ।

10. इसके प्रतिकूल, हरियाणा राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री जयंत के. सूद ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी से प्राप्त संपूर्ण पदार्थ अफीम है जिसमें किसी प्रकार का कोई भी मिश्रण नहीं है, इसलिए इस पदार्थ में मार्फीन की मात्रा या प्रतिशतता सुनिश्चित किए जाने का प्रश्न नहीं उठता है । स्वापक ओषधि अधिनियम के अधीन अफीम स्वयं में एक आपराधिक सामग्री है । अतः, न्यायालय को इस संबंध में जारी अधिसूचना में की प्रविष्टि संख्या 92 के अनुसार कार्यवाही करनी चाहिए, जो अफीम और ऐसी सामग्री बनाने के बारे में है जिसमें अफीम पाई जाती है और इसके अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि कम मात्रा का अर्थ केवल 25 ग्राम से है और वाणिज्यिक मात्रा का अर्थ 2.5 किलो ग्राम से है । वर्तमान मामले में अफीम की मात्रा 7.100 किलो ग्राम पाई गई है अर्थात् अपीलार्थी वाणिज्यिक मात्रा के लिए आवश्यक न्यूनतम मात्रा से लगभग तीन गुणा अफीम लेकर जा रहा था । **ई. माइकल राज** (उपरोक्त) वाले मामले में किया गया इस न्यायालय का निर्णय इस मामले को लागू नहीं होगा क्योंकि यह मामला अफीम के संबंध में नहीं अपितु हिरोइन पदार्थ के संबंध में है । इतना ही नहीं अभियुक्त अफीम मात्र ले जा रहा था और वह कोई व्यापारी नहीं है ।

11. श्री सूद द्वारा यह भी दलील दी गई है कि इस मामले में लागू होने वाली अधिसूचना के अधीन मार्फीन के लिए अलग से प्रविष्टि सं. 77 का उपबंध किया गया है जिसमें न्यूनतम मात्रा 0.5 ग्राम दी गई है और वाणिज्यिक मात्रा 250 ग्राम है । प्रविष्टि सं. 92 पृथक् रूप से अफीम के बारे में है । प्रविष्टि सं. 93 अफीम से व्युत्पादित पदार्थों के संबंध में है जिसके अधीन यह उपबंध किया गया है कि न्यूनतम मात्रा 5 ग्राम और वाणिज्यिक मात्रा 250 ग्राम होगी । वर्तमान मामले पर प्रविष्टि सं. 77 या अन्य किसी प्रविष्टि के अधीन नहीं अपितु प्रविष्टि सं. 92 के अधीन विचार किया जाना चाहिए । इतना ही नहीं स्वापक ओषधि अधिनियम की धारा 2 के उपबंधों के अधीन तारीख 18 नवंबर, 2009 की अधिसूचना को दृष्टिगत करते हुए, अपीलार्थी से बरामद सामग्री के संबंध में कोई भी विचार किया जाना अपेक्षित नहीं है । इस प्रकार, आक्षेपित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप किए जाने का प्रश्न नहीं उठता है । अपील खारिज किए जाने योग्य है ।

12. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई परस्पर विरोधी

दलीलों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है ।

13. तारीख 18 नवंबर, 2009 की अधिसूचना से तारीख 19 अक्तूबर, 2001 की अधिसूचना के भाग को प्रतिस्थापित किया है जो निम्न प्रकार है :–

> "टिप्पण 3 के पश्चात् तालिका के अंत में, निम्न टिप्पण निगमित किया जाएगा, जो इस प्रकार है –
>
> (4) तालिक के कालम 2 में दर्शाई गई परस्पर ओषधियों के संबंध में कालम 5 और कालम 6 में दर्शाई गई मात्राएं, संपूर्ण मिश्रण या किसी भी विलियन या किसी एक या अधिक स्वापक ओषधि या उस ओषधि से संबंधित मनःप्रभावी पदार्थ, जो खुराक के रूप में या समावयव, ईस्टर, ईथर और इन ओषधियों के लवण हों जिनमें ईस्टर, ईथर और समावयव के लवण भी सम्मिलित हैं और जहां कहीं भी ऐसे पदार्थों की विद्यमानता, न कि उस ओषधि की विशुद्ध अंतर्वस्तु, का होना संभव है, को लागू होंगी ।"

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त अधिसूचना के अधीन मिश्रण के रूप में बरामद की गई सामग्री की संपूर्ण मात्रा पर दंड अधिरोपित किए जाने के प्रयोजनार्थ विचार किया जाना चाहिए ।

तथापि, यह दलील स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यह सुस्थापित विधिक प्रतिपादना है कि दंडादेश में अभिवृद्धि के लिए जो उपबंध किया गया है उसका भूतलक्षी प्रभाव नहीं होगा । वास्तव में इस संशोधन के अधीन उस प्रक्रिया का उपबंध किया गया है, जिसके अंतर्गत दंडादेश में अभिवृद्धि की जा सकती है । इस प्रकार, इसका प्रयोग किए जाने से भारत के संविधान से अनुच्छेद 20 द्वारा अधिरोपित निर्बंधनों का अतिक्रमण होगा । हमारा यह मत है कि तारीख 18 नवंबर, 2009 की उक्त अधिसूचना का प्रयोग भूतलक्षी रूप से नहीं किया जा सकता है अतः जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, यह अधिसूचना लागू नहीं होगी ।

14. अफीम, अफीम के पौधे से ही निकाली जाती है । अफीम के पौधे से जो रस निकलता है, वह अफीम है । जिस रस का इस पौधे से स्राव होता है उसमें मार्फीन, कोडीन, थीबेन आदि जैसे अनेक मध्यसारिक पदार्थ होते हैं । अफीम में मार्फीन मूल मध्यसारिक पदार्थ है ।

15. अफीम ऐसा पदार्थ है जो एक बार देखे और सूंघ लिए जाने पर उसकी गंध कभी भुलाई नहीं जा सकती है क्योंकि अफीम का एक विशिष्ट रंग-रूप है और उसमें अत्यंत तीक्ष्ण और विशेष गंध आती है । इस प्रकार इसे बिना किसी भी रासायनिक विश्लेषण के भी पहचाना जा सकता है । रासायनिक विश्लेषण किया जाना केवल तभी आवश्यक है जब मिश्रण में अफीम की अत्यंत तनु मात्रा मिलाई गई हो जो कि आसानी से न तो देखी जा सके और न ही सूंघने पर पहचानी जा सके । यदि अन्य किसी सामग्री के साथ अफीम को नहीं मिलाया जाता है तब उसका रासायनिक विश्लेषण किया जाना तनिक भी आवश्यक नहीं है । निःसंदेह, विश्लेषण सदैव तभी आवश्यक होगा जब अफीम मिश्रण में पाई गई हो और मिश्रण में अंतर्विष्ट मार्फीन की मात्रा का पता, अफीम अधिनियम के अधीन अफीम की परिभाषा के प्रयोजन हेतु, लगाया जाना हो । (देखिए **बैद्यनाथ मिश्रा और एक अन्य** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1], **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **मडिगा बूसेन्ना और अन्य**[2] वाले मामले)

16. तथापि, उपर्युक्त मामले अफीम अधिनियम के अधीन विनिश्चित किए गए हैं और यह मामले स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन मामलों को विनिश्चित करने के लिए नजीर नहीं हो सकते । इस प्रकार, विनिषिद्ध सामग्री का रासायनिक विश्लेषण स्वापक ओषधि अधिनियम के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध मामला साबित करने के लिए आवश्यक है ।

17. स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 2(XV) के अधीन 'अफीम' निम्न प्रकार परिभाषित की गई है :–

(क) अफीम पोस्त का स्कंदित रस ; और

(ख) अफीम पोस्त के स्कंदित रस का कोई मिश्रण चाहे वह निष्प्रभावी पदार्थ सहित या उसके बिना हो,

किंतु इसके अंतर्गत ऐसी कोई निर्मिति नहीं है जिसमें 0.2 प्रतिशत से अधिक मार्फीन हो ।

18. स्कंदित का अर्थ ठोस बनाया हुआ, थक्का बना हुआ, जमा किया हुआ अर्थात् ऐसी सामग्री जिसे ठोस बनाया/गाढ़ा किया गया है ।

---

[1] (1968) 34 सी. एल. टी. 1 (एस. सी.).

[2] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1550.

यदि अपराध से संबंधित सामग्री खंड (क) के अधीन आती है तब इस अधिनियम की धारा 2(xv) का परंतुक लागू नहीं होगा । यह परंतुक केवल मिश्रण के रूप में बरामद की गई विनिषिद्ध सामग्री को लागू होता है, जो इस धारा के खंड (ख) के अंतर्गत आती है ।

19. वर्तमान मामले में, न्यायालय प्रयोगशाला, पंजाब, चंडीगढ़ द्वारा किया गया रासायनिक विश्लेषण का सुसंगत भाग निम्न प्रकार है :–

"* * * * * *

निर्दिष्ट किए गए पुलंदे में रखे गए पदार्थ के रासायनिक विश्लेषण के आधार पर यह सिद्ध हो गया है कि **पदार्थ अफीम है** और उसमें **मार्फीन** की प्रतिशतता 0.8 है ।"

(बल देने के लिए शब्दों को मोटा किया गया है)

20. 2001 में दंड संरचना को युक्तियुक्त बनाने के लिए संशोधन किया गया था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ओषधि का अधिक मात्रा में अवैध व्यापार करने वाले व्यापारियों को भयपरतिकारी दंड से दंडादिष्ट किया जाता है ; इसके प्रतिकूल स्वापक पदार्थ के आदी व्यक्तियों को, जो इससे कम गंभीर अपराध करते हैं, कम दंड से दंडादिष्ट किया जाता है ।

21. वर्तमान मामले में, अपीलार्थी से बरामद की गई सामग्री अफीम है । इस सामग्री की मात्रा वाणिज्यिक है और यह अपीलार्थी के निजी सेवन के लिए नहीं हो सकती है । इस प्रकार अपीलार्थी के पास विनिषिद्ध पदार्थ पाया गया है जिससे स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 8 के उपबंधों का अतिक्रमण होता है और उसे स्वापक पदार्थ अधिनियम की धारा 18(ख) के अधीन ठीक ही दोषसिद्ध किया गया है । वर्तमान मामला स्वापक पदार्थ अधिनियम की धारा 2(XV) के खंड (क) के अंतर्गत पूरी तरह आता है और खंड (ख) इस मामले को लागू नहीं होगा जिसका स्पष्ट कारण यह है कि बरामद किया गया पदार्थ अफीम है जो अफीम पोस्त का स्कंदित रस है । यह केवल अन्य किसी उदासीन पदार्थ के साथ मिलकर बना अफीम का मिश्रण नहीं है । उक्त स्कंदित रस से कोई भी नया पदार्थ निर्मित करने के लिए कोई भी तरीका नहीं है । दंड अधिरोपित करने के प्रयोजन के लिए यदि अफीम में मार्फीन की मात्रा को निश्चायक संघटक के रूप में लिया गया है जिसका उल्लेख प्रविष्टि सं. 92 में किया गया है, अनावश्यक हो जाती है । इस प्रकार चूंकि मामला

अधिनियम की धारा 2 (XV) के खंड (क) के अंतर्गत आता है, इसलिए इस मुद्दे पर अतिरिक्त विचार अपेक्षित नहीं है । इसके अतिरिक्त, अफीम के वियुत्पाद पर प्रविष्टि सं. 93 के अंतर्गत विचार किया जाना चाहिए, इसी प्रकार अधिनियम की धारा 2 (XV) के खंड (क) के अंतर्गत शुद्ध अफीम में मार्फीन की मात्रा का सुनिश्चित किया जाना अपेक्षित नहीं है । प्रविष्टि सं. 92 केवल यह सुनिश्चित करने के लिए है कि क्या अफीम की मात्रा, 'कम मात्रा' की श्रेणी में आती है या 'वाणिज्यिक मात्रा' की ।

22. **ई. माइकल राज** (उपरोक्त) वाले मामले में का निर्णय हिरोइन पदार्थ अर्थात् डाइएसीटाइलमार्फीन के संबंध में है जोकि स्वापक पदार्थ अधिनियम की धारा 2(xvi) में यथा परिभाषित शब्द के अर्थान्तर्गत अफीम का एक व्युत्पाद है, इसलिए स्वापक ओषधि अधिनियम की धारा 2 (xi)(क) के अर्थान्तर्गत विनिर्मित ओषधि है । इस प्रकार उक्त निर्णय का विनिश्चयाधार वर्तमान मामले के न्याय निर्णयन के साथ सुसंगत नहीं है ।

23. **अमरसिंह राजीभाई बरोत** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसे मामले पर विचार किया है जिसमें अफीम के व्युत्पाद के रूप में काले रंग का तरल पदार्थ ले जाया जा रहा था । न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट के अनुसार इस पदार्थ में पोस्त पुष्पों के टुकड़ों के अतिरिक्त एनहाइड्राइड मार्फीन की मात्रा 2.8 प्रतिशत पाई गई । इस पर ऐसा विचार इसलिए किया गया था ताकि मामला अफीम व्युत्पाद के रूप में धारा 2(XVI)(ङ) के अंतर्गत आ सके जिसके लिए मार्फीन की न्यूनतम मात्रा 0.2 प्रतिशत है ।

24. इस मामले को लागू अधिसूचना में प्रत्येक स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों की विनिषिद्ध सामग्रियों की कम और वाणिज्यिक मात्राओं को स्पष्ट किया गया है । प्रविष्टि सं. 56 हिरोइन पदार्थ, प्रविष्टि सं. 77 मार्फीन, प्रविष्टि सं. 92 अफीम, प्रविष्टि सं. 93 अफीम व्युत्पाद आदि-आदि के बारे में हैं । अतः, अधिसूचना के अंतर्गत अफीम और मार्फीन के अंतर को ही स्पष्ट नहीं किया गया है अपितु अफीम और अफीम व्युत्पाद के बीच अंतर को भी स्पष्ट किया गया है । निःसंदेह, मार्फीन अफीम के व्युत्पादों में से एक है । इस प्रकार, विधि के अधीन प्रथम अपेक्षा यह की गई है कि बरामद किए गए पदार्थ की शनाख्त की जाए और उसे वर्गीकृत किया जाए और इसके पश्चात् यह पता लगाया जाए कि यह

---

[1] (2005) 7 एस. सी. सी. 550.

पदार्थ किस प्रविष्टि के अंतर्गत आएगा । यदि यह धारा 2(XV) के खंड (क) में यथा परिभाषित अफीम है, तब मार्फीन अवयव की प्रतिशतता पूर्णतया असंगत होगी । ऐसा तभी होगा यदि अपराध संबंधी पदार्थ स्वापक पदार्थ अधिनियम की धारा 2(XV) के खंड (ख) में यथा परिभाषित मिश्रण के रूप में पाया जाता है, तब ऐसी स्थिति में मार्फीन अवयव की मात्रा सुसंगत हो जाती है ।

25. इस प्रकार **ई. माइकल राज** (उपरोक्त) वाले मामले में किया गया निर्णय इस मामले को लागू नहीं होगा क्योंकि यह एक या अधिक पदार्थों के साथ स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ के मिश्रण से संबंधित नहीं है । अपीलार्थी से इस प्रकार बरामद की गई सामग्री स्वापक ओषधि और मनःप्रभाव पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 2(XV) के निबंधनों के अधीन अफीम है । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, अफीम में मार्फीन जैसे अवयव का निश्चित किया जाना इस प्रयोजन के लिए पूर्णतया असंगत होगा कि क्या बरामद किया गया पदार्थ कम या वाणिज्यिक मात्रा में है । संपूर्ण पदार्थ को अफीम माना जाना चाहिए क्योंकि बरामद की गई सामग्री, मिश्रण नहीं है और यह मामला पूर्ण रूप से प्रविष्टि सं. 92 के अंतर्गत आता है । निःसंदेह, अफीम की सांद्रता (शक्ति) के संबंध में न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट है जिसमें मार्फीन अवयव की विशिष्टियों का उल्लेख किया गया है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अफीम में कुछ मार्फीन अंतर्विष्ट होती है जो विहित मात्रा से कम नहीं होनी चाहिए, तथापि, दंड की मात्रा निश्चित किए जाने के लिए मार्फीन की प्रतिशतता विनिश्चायक संघटक नहीं हैं क्योंकि मार्फीन से संबंधित प्रविष्टि से हटकर एक विशिष्ट और अलग प्रविष्टि के अंतर्गत ही अफीम पर विचार किया जाना चाहिए ।

26. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपील में कोई सार नहीं है । इसमें कोई गुणता नहीं है, तदनुसार यह खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

शेहला बर्नी (डा.) और अन्य

बनाम

सैयद अली मूसा राजा (मृतक)[विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से] और अन्य

21 अप्रैल, 2011

न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी और न्यायमूर्ति ए. के. गांगुली

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 7, नियम 5 और 7 – कब्जा प्राप्त करने के लिए वाद – आलिप्त किए गए पक्षकार जिसके विरुद्ध राहत का दावा नहीं किया, के विरुद्ध राहत प्रदान किए जाने का दावा अननुज्ञेय है – कब्जे के लिए वाद मूल रूप से केवल मूल प्रतिवादी सं. 1 के हितपूर्वाधिकारी के विरुद्ध ही संस्थित किया गया – बाद में वादपत्र संशोधित करते हुए प्रतिवादी सं. 2 अपीलार्थियों के हित पूर्वाधिकारी को मूल या संशोधित वादपत्र में आलिप्त किया गया – विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया गया किन्तु उच्च न्यायालय ने वादियों को कब्जे की डिक्री का हकदार अभिनिर्धारित किया – पोषणीयता – न्यायालय को ऐसे प्रतिवादी के विरुद्ध राहत प्रदान किए जाने की कोई अधिकारिता नहीं है जिसके विरुद्ध किसी राहत का दावा नहीं किया गया है – चूंकि प्रतिवादी सं. 2 के विरुद्ध किसी राहत का दावा नहीं किया गया था इसलिए वर्तमान अपीलार्थियों के हित पूर्वाधिकारी के विरुद्ध किसी राहत का दावा नहीं किया जा सकता – उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त करते हुए विचारण न्यायालय का निर्णय बहाल किया गया ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 136 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 6 नियम 2 और आदेश 7, नियम 5 और 7] – उच्चतम न्यायालय में अपील – नया अभिवाक् उठाया जाना – मुद्दा मामले की जड़ तक जाना जिस पर विचार करने के लिए तथ्यों के आगे के अन्वेषण की कोई आवश्यकता नहीं – मुद्दा उच्चतम न्यायालय में प्रथम बार उठाया जा सकता है ।

प्रस्तुत मामले में, यह अपील, प्रथम अपील में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित की गई तारीख 3 अप्रैल, 2002 के निर्णय से उद्भूत

है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उठाया गया पहला मुद्दा यह है कि मूल प्रतिवादी सं. 2 लतीफ हसन बर्नी(अपीलर्थियों का हक-पूर्वाधिकारी) के विरुद्ध कोई भी अभिवाक् या प्रार्थना कब्जे की डिक्री के लिए नहीं की गई थी । इस न्यायालय का ध्यान वाद में की गई मूल प्रार्थना की ओर दिलाया गया है । अतः, यह दलील दी गई है कि प्रतिवादी सं. 2 (अपीलार्थियों का हक-पूर्वाधिकारी) के विरुद्ध किसी भी अभिवाक् और अनुतोष की प्रार्थना के अभाव में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए प्रतिवादी सं. 2 के विरुद्ध वाद खारिज किए जाने योग्य है । दूसरा मुद्दा यह है कि प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 (प्रतिवादी प्रत्यर्थी) जो मूल वादियों के विधिक प्रतिनिधि हैं, ने यह साबित नहीं किया है कि विवादित भूमि सर्वेक्षण सं. 129/55(पुरानी सं.) के अधीन आती है । तीसरा मुद्दा जिसके आधार पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया गया है, यह है कि प्रतिवादी प्रत्यर्थी (मूल वादी) ने सर्वेक्षण सं. 129/55 के संबंध में अपना हक साबित नहीं किया है । यह भी दलील दी गई है कि यह वाद परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 65 के अधीन परिसीमा से वर्जित है और उच्च न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करना चाहिए था कि अपीलार्थियों ने अपना हक प्रतिकूल कब्जे द्वारा प्राप्त किया है और समता के आधार पर भी प्रतिवादी प्रत्यर्थियों के पक्ष में, जो मूल वादी के हक-पूर्वाधिकारी हैं, कोई भी डिक्री पारित नहीं की जा सकती है । (पैरा 11, 12, 13 और 14)

इन परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार करने पर इस न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थियों के विद्वान काउंसेल द्वारा दी गई कुछ दलीलें स्वीकार किए जाने योग्य हैं । अपीलार्थियों के विद्वान काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील साबित हो गई है कि कब्जे की डिक्री के लिए मूल प्रतिवादी सं. 2 के विरुद्ध कोई प्रार्थना नहीं की गई है, न तो मूल वाद में और न ही संशोधित वाद में । मूल वाद और संशोधित वाद में की गई प्रार्थनाएं हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई हैं । (पैरा 16 और 17)

यह स्पष्ट है कि संशोधित वाद में की गई प्रार्थना प्रतिवादी के विरुद्ध है, अतः प्रार्थना केवल प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध है न कि प्रतिवादी सं. 2 के विरुद्ध । ऐसे मामले में जिसमें प्रार्थना किसी विशिष्ट प्रतिवादी के विरुद्ध नहीं की गई है, संभवतः उसे कोई भी अनुतोष उस प्रतिवादी के विरुद्ध प्रदत्त नहीं किया जा सकता है । प्रत्यर्थी के इस आक्षेप का समर्थन नहीं किया जा सकता है कि यह मुद्दा केवल इस न्यायालय के समक्ष उठाया

गया है न कि कार्यवाही के पूर्ववर्ती प्रक्रम पर, क्योंकि यह मुद्दा इस मामले का महत्वपूर्ण अंग है और इस मुद्दे पर विचार करने के लिए मामले के तथ्यों के आधार पर आगे किसी भी अन्वेषण की आवश्यकता नहीं है । वास्तव में यह मुद्दा मामले के स्वीकृत अभिलेख से उद्भूत हुआ है और यह सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों पर आधारित है । (पैरा 18 और 22)

न्यायालय की राय में यह मुद्दा यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त है कि माननीय उच्च न्यायालय का निर्णय विधि की दृष्टि से कायम रखे जाने योग्य नहीं है । इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थियों के पास जुलाई, 1963 से विवादित भूमि का शांतिपूर्ण कब्जा था और उनके हित-पूर्वाधिकारी के पास इसी भूमि का कब्जा 1950 से लेकर लतीफ हसन बर्नी को उसके (अपीलार्थी) द्वारा अंतरण किए जाने तक अपीलार्थी के पास था । इस अंतरण के पश्चात् संपत्ति पर निर्माण कार्य आरंभ किया गया और वर्ष 1964 से अपीलार्थी वहां रहने लगे और वाद वर्ष 1975 में ही फाइल किया गया । उस वाद में भी मूल प्रतिवादी सं. 2 को पक्षकार बनाने के पश्चात् उसके विरुद्ध कोई भी अनुतोष का दावा नहीं किया गया है । उपर्युक्त स्वीकृत तथ्यात्मक स्थिति और ऊपर चर्चा किए गए विधि संबंधी प्रश्नों को दृष्टिगत करते हुए, यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मतों की पुष्टि नहीं कर सकता है । उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की जाती है । (पैरा 26, 27 और 28)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	(2008) 4 एस. सी. सी. 256 : **स्कोट्स इंजीनियरिंग बैंगलोर** बनाम **राजेश पी. सुराना और अन्य** ;	21
[1979]	ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1165 : **तरीनीकमल पंडित और अन्य** बनाम **प्रफुल्ल कुमार चटर्जी (मृतक)द्वारा विधिक प्रतिनिधि** ;	25
[1963]	ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 309 : **शेख अब्दुल कय्यूम और अन्य** बनाम **मुल्ला अलीभाई और अन्य** ;	20

[1959] ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 559 :
बद्री प्रसाद और अन्य बनाम **नागरमल और अन्य** ; 24,25

52 इंडियन अपील्स 126 :
सूरजमल नागौरेमल बनाम **ट्राइटन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** । 3

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2002 की सिविल अपील सं. 2002.

1986 की सीसीसी अपील सं. 14 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद के तारीख 3 अप्रैल, 2002 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियो की ओर से सर्वश्री हुजैफा अहमदी, एजाज मकबूल, वाजिद अली कामिल और (सुश्री) साक्षी बांगा

प्रत्यर्थियो की ओर से सर्वश्री (डा.) ए. एम. सिंघवी, वी. गिरि वरिष्ठ अधिवक्ता [राय अब्राहम, किशोर राय, जयवीर शेरगिल और हिमिन्दर लाल अधिवक्तागण]

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक कुमार गांगुली ने दिया ।

न्या. गांगुली – यह अपील, प्रथम अपील में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित की गई तारीख 3 अप्रैल, 2002 के निर्णय से उद्भूत है । अभिलेख के अनुसार मामले के महत्वपूर्ण तथ्य निम्न प्रकार है :–

2. जैसा कि अपीलार्थियों द्वारा प्रकथन किया गया है, वाद भूमि (मूल वाद सं. 164/76) सर्वेक्षण सं. 129/64 के अंतर्गत आती है । प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 3 मूल वादी हैं और उनके अनुसार वाद भूमि सर्वेक्षण सं. 129/55 के अंतर्गत आती है । इस मामले के अपीलार्थी मूल प्रतिवादी सं. 2 के विधिक प्रतिनिधि हैं । प्रत्यर्थी सं. 4/1 और 4/2 मूल प्रतिवादी सं. 1 के विधिक प्रतिनिधि हैं । प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 3, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मूल वादी हैं । अपीलार्थियों का यह पक्ष कथन है कि वाद भूमि डा. जफर हुसैन की है जिसने वह भूमि तारीख 20 जनवरी, 1950 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा साजिद हसन नाम के व्यक्ति को स्थानांतरित की है । इस आधार पर साजिद हसन ने उक्त भूमि को मूल प्रतिवादी सं. 1 की हक-पूर्वाधिकारी रजिया बेगम को लगभग तारीख 22

जुलाई, 1963 को 6,000/- रुपये कुल प्रतिफल के लिए रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा बेच दिया था । उस भूमि का अविरत और शांत कब्जा रजिया बेगम द्वारा खरीदे जाने की तारीख से उसी के पास बना रहा । लगभग 11 अगस्त, 1963 को, रजिया बेगम ने हाउसिंग को-आपरेटिव सोसाइटी, मेलापल्ली लिमिटेड से गृह निर्माण के लिए ऋण लिया था और उसके पश्चात् लगभग 18 फरवरी, 1964 को निर्माण के लिए हैदराबाद नगर निगम द्वारा अनुज्ञा प्रदान की गई । मूल प्रतिवादी सं. 1 के पास यह संपत्ति थी और वह इसका उपभोग हाउसिंग सोसाइटी के नियमों के निबंधनों में नामनिर्देशिती सं. 1 के रूप में तारीख 20 जून, 1973 को अपीलार्थियों (मूल प्रतिवादी सं. 2) के हक-पूर्वाधिकारी लतीफ हसन बर्नी के नाम में स्थानांतरित किए जाने तक करता रहा । इसके पश्चात्, तारीख 4 दिसंबर, 1975 को, मूल वाद (1976 का मूल वाद सं. 164) जिससे ये कार्यवाही उद्भूत है, चतुर्थ अपर न्यायाधीश, नगर सिविल न्यायालय, हैदराबाद में रजिया बेगम के विरुद्ध वादियों द्वारा संस्थित किया गया जिसमें यह अभिकथन किया गया कि वादियों के पिता सैयद शाह अब्दुल कादर भूमि सर्वेक्षण सं. 129/55 (पुरानी सं.) का पट्टेदार और भू-स्वामी है और इस भूमि की नई सर्वेक्षण सं. 165 है जिसका क्षेत्रफल 3 एकड़ और 26 गुंटा है जो कच्चा टट्टीखाना सिवार ग्राम शेखपत में स्थित है जो उस समय पश्चिम तालुक के अंतर्गत आता था और अब हैदराबाद नगर तालुक के अंतर्गत आता है । यह भी अभिकथन किया गया है कि पट्टा वादियों के पिता के नाम में सराफ-ए-खास मुबारक द्वारा तारीख 25 अजूर, 1340 फसली में स्थानांतरित किया गया था और वादियों के पिता ने रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज तमलीगनामा (समझौता विलेख) के माध्यम से तारीख 10 आबान, 1347 फसली जो ईसवीं वर्ष 1930 के समवर्ती है, में अपनी पत्नी फातिमा सुगरा को स्थानांतरित किया जो वादियों की माता थी । यह भी अभिकथन किया गया है कि उपर्युक्त स्थानांतरण के पश्चात् उक्त फातिमा सुगरा अर्थात् वादियों की माता के पास उसकी मृत्यु के समय अर्थात् 24 जुलाई, 1973 तक उक्त भूमि का निरंतर और एकमात्र कब्जा रहा था । उसकी मृत्यु के समय पर प्रत्यर्थी सं. 4/1 और 4/2 ने अवैध रूप से वाद भूमि का अधिभोग किया । उक्त वाद में रजिया बेगम ने, जो प्रत्यर्थी सं. 4/1 और 4/2 की हक-पूर्वाधिकारी थी, यह अभिवाक् करते हुए लिखित कथन फाइल किया कि वह वाद भूमि की वास्तविक खरीदार है जो उसने तारीख 19 जून, 1963 को "सियासत" दैनिक समाचर पत्र में सार्वजनिक नोटिस प्रकाशित किए जाने के पश्चात् 6,000/- रुपये में खरीदी है । किसी भी

व्यक्ति की ओर से कोई भी आक्षेप प्राप्त नहीं किया गया और विक्रय-विलेख तारीख 22 जुलाई, 1963 को नक्शे के अनुसार अंतिम रूप से रजिस्ट्रीकृत किया गया । लिखित कथन में यह भी अभिवाक् किया गया है कि रजिया बेगम ने निर्माण के लिए आवश्यक अनुज्ञा प्राप्त की थी और हाउसिंग को-आपरेटिव सोसाइटी से ऋण भी प्राप्त किया था और उसने बेसमेंट के तल तक निर्माण पूरा कर लिया था । इस निर्माण पर वादियों द्वारा कोई भी आक्षेप नहीं किया गया और वादियों के प्रति उस भूमि पर रजिया बेगम का कब्जा प्रतिकूल कब्जे के आधार पर बन गया था । उसके लिखित कथन में उसने यह भी अभिवाक् किया है कि उसने तारीख 20 जून, 1973 को वह संपत्ति अपीलार्थियों के हक-पूर्वाधिकारी लतीफ हसन बर्नी को स्थानांतरित कर दी थी । लिखित कथन फाइल किए जाने पर लतीफ हसन बर्नी को तारीख 4 नवंबर, 1982 के न्यायालय के आदेश द्वारा प्रतिवादी सं. 2 के रूप में पक्षकार बनाया गया था ।

3. इसके पश्चात्, तारीख 18 दिसंबर, 1982 को मूल वादी ने एक संशोधित वाद लतीफ हसन बर्नी को पक्षकार बनाते हुए फाइल किया । इसके पश्चात्, तारीख 15 जनवरी, 1983 को एक अन्य वाद भी प्रह्लाद सिंह जिसने सर्वेक्षण सं. 129/55 (पुरानी सं.) के अधीन आने वाली उनकी संपत्ति के एक भाग का अविधिमान्य रूप से अधिभोग कर लिया था, के विरुद्ध वादियों द्वारा संस्थित किया गया है । यह उल्लेखनीय है कि पश्चात्वर्ती वाद में प्रह्लाद सिंह ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया कि वाद संपत्ति सर्वेक्षण सं. 129/55 (पुरानी सं.) का भाग है । इसके पश्चात्, 1976 के मूल वाद सं. 164 में प्रतिवादी सं. 2 अर्थात् अपीलार्थी के हक-पूर्वाधिकारी ने अपना अलग से लिखित कथन फाइल किया जिसमें यह उल्लेख किया कि वह संपत्ति उसके नाम में स्थानांतरित किए जाने के पूर्व रजिया बेगम अर्थात् मूल प्रतिवादी सं. 1 की संपत्ति थी और वादियों के प्रति रजिया बेगम के पास उसका प्रतिकूल कब्जा था ।

4. इसके पश्चात्, विचारण न्यायालय द्वारा साक्षियों की परीक्षा की गई । इसके पश्चात् तारीख 19 दिसंबर, 1983 के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय ने न्यायालय आयुक्त नियुक्त किया । न्यायालय आयुक्त ने तारीख 25 अप्रैल, 1984 को सर्वेक्षक की सहायता से रिपोर्ट प्रस्तुत की ।

5. परिणामतः तारीख 19 सितंबर, 1985 के निर्णय द्वारा वाद खारिज कर दिया गया और इस वाद से व्यथित होकर वर्ष 1986 में उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय ने तारीख 5

फरवरी, 2002 के आदेश द्वारा उस संपत्ति की स्थिति सुनिश्चित करने के लिए अधिवक्ता-आयुक्त पुनः नियुक्त किया जो मूल वादी-प्रत्यर्थी के अनुसार सर्वेक्षण सं. 129/55 (पुरानी सं.) के अंतर्गत आती है । तथापि, अपीलार्थियों का यह प्रतिवाद है कि यह संपत्ति सर्वेक्षण सं. 129/64 के अंतर्गत आती है ।

6. उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किए गए अधिवक्ता-आयुक्त ने नक्शा सहित रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें यह दर्शाया गया है कि वाद संपत्ति सर्वेक्षण सं. 129/55(पुरानी सं.) के अधीन आती है किंतु यह निष्कर्ष मूल वाद सं. 331/1980 में किए गए निर्णय और आदेश के आधार पर निकाला गया है और यह वाद मूल वादियों और सरदार प्रह्लाद सिंह के बीच चल रहा था । उस वाद में (वाद सं. 331/1980) ऐसा कोई भी मुद्दा नहीं उठाया गया था कि प्रह्लाद सिंह की संपत्ति सर्वेक्षण सं. 129/55(पुरानी सं.) के अतिरिक्त किसी अन्य सर्वेक्षण सं. के अधीन आता है ।

7. उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने विचार के लिए तीन निम्न मुद्दे विरचित किए हैं :–

(क) क्या वाद भूमि, जैसा कि वादियों द्वारा दावा किया गया है सर्वेक्षण सं. 129/55 के अधीन आती है या जैसा कि प्रतिवादियों द्वारा दावा किया गया है, सर्वेक्षण सं. 129/64 के अधीन आती है ?

(ख) क्या प्रतिवादियों को वाद भूमि का कब्जा प्रतिकूल कब्जे के रूप में प्राप्त हुआ है ?

(ग) वादी किस अनुतोष को पाने के हकदार हैं ?

8. उपर्युक्त तीनों मुद्दों के आधार पर, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में तीनों विवाद्यकों से संबंधित निष्कर्ष निकाले हैं । विवाद्यक (क) के संबंध में उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वाद संपत्ति सर्वेक्षण सं. 129/55 (पुरानी सं.) अर्थात् नई सं. 165 के अधीन आती है जो कच्चा टट्टीखाना सिवार ग्राम, शेखपत, हैदराबाद में स्थित है और यह सर्वेक्षण सं. 129/64 के अधीन नहीं आती है । विवाद्यक (ख) के संबंध में उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे के संबंध में अपना अभिवाक् सिद्ध करने में असफल रहे हैं । विवाद्यक (ग) के संबंध में उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी वाद में कब्जे की डिक्री किए जाने के लिए हकदार हैं ।

9. उक्त निर्णय के विरुद्ध वर्तमान अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष लेटर्स पेटेंट्स अपील फाइल की है । किंतु **एस. शिवराज रेड्डी और अन्य** बनाम **रघुराज रेड्डी और अन्य** वाले मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय को दृष्टिगत करते हुए उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 में संशोधन के पश्चात् तारीख 1 जुलाई, 2002 के पश्चात् फाइल की गई लेटर्स पेटेंट अपील चलने योग्य नहीं है । अपीलार्थी की लेटर्स पेटेंट अपील उच्च न्यायालय द्वारा वापिस कर दी गई और अपीलार्थियों ने तारीख 7 सितंबर, 2002 को इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिका फाइल की जिसमें तारीख 27 सितंबर, 2002 को इजाजत मंजूर की गई और विशेष इजाजत इस अपील में परिवर्तित कर दी गई ।

10. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर हुए विद्वान् काउंसेल श्री हुजैफा अहमदी ने आक्षेपित निर्णय का विरोध करते हुए अनेक मुद्दे उठाए ।

11. उठाया गया पहला मुद्दा यह है कि मूल प्रतिवादी सं. 2 लतीफ हसन बर्नी (अपीलर्थियों का हक-पूर्वाधिकारी) के विरुद्ध कोई भी अभिवाक् या प्रार्थना कब्जे की डिक्री के लिए नहीं की गई थी । इस न्यायालय का ध्यान वाद में की गई मूल प्रार्थना की ओर दिलाया गया है । अतः, यह दलील दी गई है कि प्रतिवादी सं. 2 (अपीलार्थियों का हक-पूर्वाधिकारी) के विरुद्ध किसी भी अभिवाक् और अनुतोष की प्रार्थना के अभाव में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश vii के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए प्रतिवादी सं. 2 के विरुद्ध वाद खारिज किए जाने योग्य है ।

12. दूसरा मुद्दा यह है कि प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 (प्रतिवादी प्रत्यर्थी) जो मूल वादियों के विधिक प्रतिनिधि हैं, ने यह साबित नहीं किया है कि विवादित भूमि सर्वेक्षण सं. 129/55 (पुरानी सं.) के अधीन आती है ।

13. तीसरा मुद्दा जिसके आधार पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया गया है, यह है कि प्रतिवादी प्रत्यर्थी (मूल वादी) ने सर्वेक्षण स. 129/55 के संबंध में अपना हक साबित नहीं किया है ।

14. यह भी दलील दी गई है कि यह वाद परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 65 के अधीन परिसीमा से वर्जित है और उच्च न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करना चाहिए था कि अपीलार्थियों ने अपना हक प्रतिकूल कब्जे द्वारा प्राप्त किया है और समता के आधार पर भी

प्रतिवादी प्रत्यर्थियों के पक्ष में, जो मूल वादी के हक-पूर्वाधिकारी हैं, कोई भी डिक्री पारित नहीं की जा सकती है ।

15. प्रत्यर्थियों के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री गिरी ने यह दलील दी है कि वाद कब्जे की प्राप्ति के लिए किया गया है जो हक की शक्ति पर आधारित है न कि यह कब्जा प्राप्त करने के लिए किया गया कोई ऐसा वाद है जो कब्जे की शक्ति के आधार पर किया गया हो । विद्वान् काउंसेल के अनुसार उच्च न्यायालय का निर्णय स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय के लिए समुचित साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है ताकि सर्वेक्षण सं. 129/55 से संबंधित हक साबित किया जा सके और न ही यह साबित करना समुचित है कि वाद अनुसूचित संपत्ति सर्वेक्षण सं. 129/55 के अधीन आती है । विद्वान् काउंसेल ने इस अपील को चलाने के लिए द्वितीय प्रतिवादी के सुने जाने का अधिकारी पर भी प्रश्न उठाया है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं हैं जिससे सर्वेक्षण सं. 129/64 के अंतर्गत आने वाली संपत्ति के अंतरण को दर्शाया जा सके । परिणामतः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि यह मामला अभिलेख पर अपर्याप्त साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए पुनः सुनवाई के लिए उच्च न्यायालय को भेजा जाना चाहिए ।

16. इन परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार करने पर इस न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई कुछ दलीलें स्वीकार किए जाने योग्य हैं ।

17. अपीलार्थियों के विद्वान काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील साबित हो गई है कि कब्जे की डिक्री के लिए मूल प्रतिवादी सं. 2 के विरुद्ध कोई प्रार्थना नहीं की गई है, न तो मूल वाद में और न ही संशोधित वाद में । मूल वाद और संशोधित वाद में की गई प्रार्थनाएं हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई हैं । संशोधित वाद में की गई प्रार्थना इसमें इसके नीचे इस प्रकार वर्णित है :–

> "2180 क्षेत्रफल वाली भूमि, जो ग्राम शेखपत बंजारा हिल्स, जुबली हिल्स, हैदराबाद में स्थित है और जिसके पूर्व में सड़क, पश्चिम में वादी की भूमि, उत्तर में सड़क सं. 3, दक्षिण में सड़क सं. 14 है और इसके संबंध में वाद के साथ नक्शा संलग्न है, जो सर्वेक्षण सं. 129/55 (पुरानी सं.) जिसकी समवर्ती नई सं. 165 है और ग्राम शेखपत, हैदराबाद में स्थित है

के बाबत प्रतिवादी के विरुद्ध याचियों के पक्ष में डिक्री पारित की जानी चाहिए और इस भूमि पर किया गया अवैध निर्माण ध्वस्त किया जाना चाहिए;"

18. यह स्पष्ट है कि संशोधित वाद में की गई प्रार्थना प्रतिवादी के विरुद्ध है, अतः प्रार्थना केवल प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध है न कि प्रतिवादी सं. 2 के विरुद्ध । ऐसे मामले में जिसमें प्रार्थना किसी विशिष्ट प्रतिवादी के विरुद्ध नहीं की गई है, संभवतः उसे कोई भी अनुतोष उस प्रतिवादी के विरुद्ध प्रदत्त नहीं किया जा सकता है इस संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VII के उपबंधों को निर्दिष्ट किया जा सकता है । इस संबंध में आदेश VII नियम 5 इस प्रकार है :–

"**5. प्रतिवादी के हित और दायित्व का दर्शित किया जाना** - वाद पत्र में यह दर्शित किया जाएगा कि प्रतिवादी विषय-वस्तु में हित रखता है या रखने का दावा करता है और वह वादी की मांग का उत्तर देने के लिए अपेक्षित किए जाने का दायी है ।"

19. आदेश VII का नियम 7 भी सुसंगत है और वह भी निम्न प्रकार वर्णित है :–

"**7.अनुतोष का विनिर्दिष्ट रूप से कथन** – हर वाद पत्र में उस अनुतोष का विनिर्दिष्ट रूप से कथन होगा जिसके लिए वादी सामान्यतः या अनुकल्पतः दावा करता है और यह आवश्यक नहीं होगा कि ऐसा कोई साधारण या अन्य अनुतोष मांगा जाए, जो न्यायालय न्यायसंगत समझे जो सर्वदा ही उसी विस्तार तक ऐसे दिया जा सकेगा मानो वह मांगा गया हो, और यही नियम प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित कथन में दावा किए गए किसी अनुतोष को भी लागू होगा ।"

20. **शेख अब्दुल कय्यूम और अन्य** बनाम **मुल्ला अलीभाई और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ऐसे प्रतिवादी के विरुद्ध अनुतोष मंजूर करना न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत नहीं आता है जिसको कोई भी अनुतोष दिए जाने का दावा नहीं किया गया है । (रिपोर्ट का पैरा 13, पृष्ठ 313 देखें)

21. **स्कोट्स इंजीनियरिंग बैंगलोर** बनाम **राजेश पी. सुराना और**

---

[1] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 309.

अन्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा हाल ही में इसी प्रतिपादना को दोहराया गया है। रिपोर्ट के पृष्ठ 258 के पैरा 10 में इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी को प्रतिवादी सं. 6 के रूप में पक्षकार बनाने के बाद भी, वादी ने वाद में संशोधन करने की परवाह नहीं की सिवाय इसके कि अपीलार्थी को प्रतिवादी सं. 6 बनाया गया है । प्रतिवादी सं. 6 के विरुद्ध कोई भी अनुतोष का दावा नहीं किया गया है । यदि मामले के तथ्यों के आधार पर हम उक्त सिद्धांत का अनुसरण करें तब हमें यह अभिनिर्धारित करना होगा कि प्रतिवादी सं. 2 जो वर्तमान अपीलार्थी का हक-पूर्वाधिकारी है के विरुद्ध किसी भी अनुतोष का दावा नहीं किया गया है, इसलिए कोई भी अनुतोष वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध मंजूर नहीं किया जा सकता है ।

22. प्रत्यर्थी के इस आक्षेप का समर्थन नहीं किया जा सकता है कि यह मुद्दा केवल इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया है न कि कार्यवाही के पूर्ववर्ती प्रक्रम पर, क्योंकि यह मुद्दा इस मामले का महत्वपूर्ण अंग है और इस मुद्दे पर विचार करने के लिए मामले के तथ्यों के आधार पर आगे किसी भी अन्वेषण की आवश्यकता नहीं है । वास्तव में यह मुद्दा मामले के स्वीकृत अभिलेख से उद्भूत हुआ है और यह सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों पर आधारित है ।

23. इस संबंध में **सूरजमल नागौरेमल** बनाम **ट्राइटन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[2] वाले मामले में लॉर्ड सुमनेर द्वारा अधिकथित सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है । विद्वान् लॉर्ड ने इस प्रतिपादना को इतने स्पष्ट रूप से संक्षिप्त किया है कि हमें इसे उद्धृत करना ही होगा :–

> कोई भी न्यायालय किसी कार्य को विधिमान्य प्रवृत्त नहीं कर सकता है जिसे सक्षम अधिनियमिति द्वारा विधिमान्य घोषित नहीं किया गया है न ही ऐसी अधिनियमिति का अनुपालन ऐसा कार्य होगा जिसे न्यायालय पक्षकारों की सहमति से तय करे या अभिवाक् या तर्क की असफलता के आधार पर तय करे;”

24. उपर्युक्त प्रतिपादना **बद्री प्रसाद और अन्य** बनाम **नागरमल और अन्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय के अनुमोदन द्वारा उद्धृत की गई है ।

---

[1] (2008) 4 एस. सी. सी. 256.

[2] 52 इंडियन अपील्स 126.

[3] ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 559.

25. इस न्यायालय द्वारा ऐसा ही मत **तरीनीकमल पंडित और अन्य** बनाम **प्रफुल्ल कुमार चटर्जी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि**[1] वाले मामले में भी व्यक्त किया गया है । **बद्री प्रसाद** (उपरोक्त) वाले मामले में किए गए विनिश्चय सहित अनेक विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "चूंकि उठाया गया मुद्दा केवल विधि का प्रश्न है जिसमें तथ्यों का अन्वेषण किया जाना सम्मिलित नहीं है, इसीलिए हमने विद्वान् काउंसेल को प्रश्न करने के लिए अनुज्ञात किया है............" (पृष्ठ 1172, पैरा 15)

26. हमारी राय में यह मुद्दा यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त है कि माननीय उच्च न्यायालय का निर्णय विधि की दृष्टि से कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

27. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थियों के पास जुलाई, 1963 से विवादित भूमि का शांतिपूर्ण कब्जा था और उनके हित-पूर्वाधिकारी के पास इसी भूमि का कब्जा 1950 से लेकर लतीफ हसन बर्नी को उसके (अपीलार्थी) द्वारा अंतरण किए जाने तक अपीलार्थी के पास था । इस अंतरण के पश्चात् संपत्ति पर निर्माण कार्य आरंभ किया गया और वर्ष 1964 से अपीलार्थी वहां रहने लगे और वाद वर्ष 1975 में ही फाइल किया गया । उस वाद में भी मूल प्रतिवादी सं. 2 को पक्षकार बनाने के पश्चात् उसके विरुद्ध कोई भी अनुतोष का दावा नहीं किया गया है ।

28. उपर्युक्त स्वीकृत तथ्यात्मक स्थिति और ऊपर चर्चा किए गए विधि संबंधी प्रश्नों को दृष्टिगत करते हुए, यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मतों की पुष्टि नहीं कर सकता है । उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की जाती है । अपील मंजूर की जाती है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

---

[1] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1165.

गोपाल

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

तथा

मध्य प्रदेश राज्य

बनाम

शंकर लाल और अन्य

19 मई, 2011

न्यायमूर्ति अशोक कुमार गांगुली और न्यायमूर्ति दीपक वर्मा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302/149, 304 भाग (I), 147, 148, 323/149 – हत्या – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता पक्ष द्वारा हमला किए जाने पर अपनी प्रतिरक्षा में हमला करना जिसमें मृतक की उसे पहुंची क्षतियों के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई – उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की दोषसिद्धि को धारा 302 से धारा 304 भाग (I) में सही तौर पर परिवर्तित किया गया – अपीलार्थी द्वारा पहले ही भोगी जा चुकी अवधि तक दंडादेश सीमित किया गया ।

प्रस्तुत मामले में, पांच अभियुक्तों को 1992 के विचारण मामला सं. 227 में तृतीय अपर सेशन न्यायाधीश रतलाम, मध्य प्रदेश द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 147, 148, 302/149, 323/149 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के लिए आरोपित किया गया था और उनका अभियोजन किया गया था । विचारण न्यायालय ने तारीख 31 मार्च, 1995 को निर्णय सुनाया जिसमें अभियुक्त गोपाल को दंड संहिता की धारा 148, 302, 323/149 के अधीन अपराध कारित करने के लिए अभियुक्त शंकर लाल और नंद लाल को दंड संहिता की धारा 148, 302/149, 323 के अधीन, अभियुक्त छोटे लाल और दिनेश को दंड संहिता की धारा 148, 302/149, 323/149 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित करते हुए जुर्माने के साथ दंड अधिनिर्णीत किया जैसा कि उसके निर्णय में वर्णित है । राज्य ने निर्णय और आदेश के केवल उक्त भाग के विरुद्ध अपील प्रस्तुत की है

जिसके अधीन अभियुक्त शंकर लाल, नंद लाल और छोटे लाल को दंड संहिता, 1860 की धारा 324 के अधीन दोषी पाया गया है और अभियुक्त दिनेश को दोषमुक्त किया गया है । अभियुक्त गोपाल ने इस आधार पर अपील प्रस्तुत की है कि अभियुक्त और शिकायतकर्ता पक्ष के बीच खुली लड़ाई को देखते हुए और कुछ अभियुक्त व्यक्तियों को पहुंची क्षतियों को दृष्टिगत करते हुए, उसे दोषमुक्त किया जाना चाहिए । अपीलों का तदनुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – चूंकि निर्णय के उस भाग के विरुद्ध जिसके द्वारा अभियुक्त गोपाल को दंड संहिता, 1860 की धारा 304 भाग I के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषी पाया गया है और दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषमुक्त किया गया है, राज्य द्वारा कोई भी अपील प्रस्तुत नहीं की गई है, इसलिए हमें खेद है कि अभियुक्त गोपाल की दोषसिद्धि धारा 304 भाग I से धारा 302 में परिवर्तित किए जाने के संबंध में विचार करने की कोई गुंजाइश नहीं है । जहां तक अन्य अभियुक्तों का संबंध है उच्च न्यायालय ने इस संबंध में तर्कसम्मत और विधिमान्य कारण दिए हैं कि उन्हें दंड संहिता, 1860 की धारा 324 के अधीन अपराध कारित किए जाने के लिए दोषी क्यों पाया गया है । उच्च न्यायालय ने यह भी विचार किया है कि अभियुक्त व्यक्तियों को पहुंची क्षतियों के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा तनिक भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । उपरोक्त के अतिरिक्त डा. बी. ई. बोरीवाल (अभि. सा. 5) के साक्ष्य से अभिलेख पर यह भी सामने आया है कि आहत व्यक्तियों को पहुंची क्षतियां साधारण प्रकृति की थीं । मामले के इस पहलू पर उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय के पैरा 8 और 9 पर विचार किया गया है । (पैरा 17 और 18)

उपर्युक्त दलीलों के आधार पर, न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि अभियुक्त गोपाल की अपील ही भागतः इस सीमा तक मंजूर की जा सकती है कि उसकी दोषसिद्धि दंड संहिता की धारा 304 भाग I के अधीन कायम रहे, किन्तु दंड की अवधि को घटाकर पहले से भोगे गए कारावास जितनी की जा सकती है, जो कि छह वर्ष से अधिक है । न्यायालय के अनुसार ऐसा करने से न्याय होगा । तथापि, 2007 की दांडिक अपील सं. 1711 में हमें तनिक भी कोई सार दिखाई नहीं देता है और यह खारिज किए जाने योग्य है । परिणामतः, अभियुक्त गोपाल द्वारा फाइल की गई 2007 की दांडिक अपील सं. 1710 भागतः मंजूर की जाती है क्योंकि दंड

संहिता, 1860 की धारा 304 भाग I के अधीन उसकी दोषसिद्धि कायम रखी जाती है किन्तु दंड की अवधि घटाकर उसके द्वारा पहले से भागे गए कारावास जितनी की जाती है । (पैरा 19 और 20)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 1710. (इसके साथ 2007 की दांडिक अपील सं. 1711 की भी सुनवाई की गई)

1995 की दांडिक अपील सं. 328 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, इन्दौर न्यायपीठ, इन्दौर के तारीख 19 अक्तूबर, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री एस. के दुबे (वरिष्ठ अधिवक्ता), सुभाष कौशिक, (सुश्री) मालिनी पौडुवाल, (सुश्री) प्रवीणा गौतम, सी. डी. सिंह, विकास बंसल, (सुश्री) विवाह दत्त मखिजा और (सुश्री) वर्तिका सहाय

आदेश

इस आदेश द्वारा 2007 की दांडिक अपील सं. 1711 का भी निपटारा किया जाएगा क्योंकि दोनों ही अपीलें मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ, इन्दौर द्वारा 1995 की दांडिक अपील सं. 328 जो अभियुक्त गोपाल द्वारा फाइल की गई थी और 1998 की दांडिक अपील सं. 429 जो अभियुक्त शंकर लाल, नंद लाल, दिनेश और छोटे **उर्फ** छोटे लाल द्वारा फाइल की गई थी और जिनका निपटारा तारीख 19 अक्तूबर, 2005 को किया गया था, में पारित किए गए एक ही निर्णय और आदेश से उद्भूत हैं ।

2. पांच अभियुक्तों को 1992 के विचारण मामला सं. 227 में तृतीय अपर सेशन न्यायाधीश रतलाम, मध्य प्रदेश द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 147, 148, 302/149, 323/149 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के लिए आरोपित किया गया था और उनका अभियोजन किया गया था । विचारण न्यायालय ने तारीख 31 मार्च, 1995 को निर्णय सुनाया जिसमें अभियुक्त गोपाल को दंड संहिता की धारा 148, 302,

323/149 के अधीन अपराध कारित करने के लिए अभियुक्त शंकर लाल और नंद लाल को दंड संहिता की धारा 148, 302/149, 323 के अधीन, अभियुक्त छोटे लाल और दिनेश को दंड संहिता की धारा 148, 302/149, 323/149 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित करते हुए जुर्माने के साथ दंड अधिनिर्णीत किया जैसा कि उसके निर्णय में वर्णित है ।

3. उक्त निर्णय और आदेश के विरुद्ध, जैसा कि इसमें इसके ऊपर उल्लिखित है दो दांडिक अपीलें उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत की गई थीं जिनका निपटारा आक्षेपित एक ही निर्णय द्वारा किया गया था ।

4. गोपाल द्वारा प्रस्तुत की गई अपील में उच्च न्यायालय ने उसे दंड संहिता की धारा 304 भाग I के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषी पाया है और 10 वर्ष का कठोर कारावास अधिनिर्णीत किया है, जबकि अन्य दांडिक अपील में अभियुक्त शंकर लाल, नंद लाल और छोटे लाल को दंड संहिता की धारा 324 के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषी पाया है और प्रत्येक को 200/- रुपए के जुर्माने के साथ पहले से भोगे गए कारावास की अवधि के लिए दंडादेश अधिनिर्णीत किया है । अभियुक्त दिनेश को किसी भी अपराध के लिए दोषी नहीं पाया गया है और उसे तदनुसार दोषमुक्त किया गया है ।

5. राज्य ने निर्णय और आदेश के केवल उक्त भाग के विरुद्ध अपील प्रस्तुत की है जिसके अधीन अभियुक्त शंकर लाल, नंद लाल और छोटे लाल को दंड संहिता, 1860 की धारा 324 के अधीन दोषी पाया गया है और अभियुक्त दिनेश को दोषमुक्त किया गया है । अभियुक्त गोपाल ने इस आधार पर अपील प्रस्तुत की है कि अभियुक्त और शिकायतकर्ता पक्ष के बीच खुली लड़ाई को देखते हुए और कुछ अभियुक्त व्यक्तियों को पहुंची क्षतियों को दृष्टिगत करते हुए, उसे दोषमुक्त किया जाना चाहिए ।

6. यह उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय के उस निर्णय के विरुद्ध राज्य ने कोई भी अपील प्रस्तुत नहीं की है जिसमें और जिसके अधीन दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अभियुक्त गोपाल की दोषसिद्धि और अधिनिर्णीत दंडादेश को दंड संहिता की धारा 304 भाग I में परिवर्तित किया गया था । मामले पर इस दृष्टि से विचार करते हुए, राज्य यह चुनौती नहीं दे सकता कि अभियुक्त गोपाल को दंड संहिता की धारा 302

के अधीन दोषसिद्ध किया जाना चाहिए था ।

7. संक्षेप में, अभियोजन वृत्तांत निम्न प्रकार हैं :–

तारीख 30 जून, 1992 को, पटिदार समुदाय की एक सभा बुलाई गई थी जिसमें रामचन्द्र मौजूद नहीं था । तारीख 1 जुलाई, 1992 को भी एक पंचायत रामचन्द्र द्वारा बुलाई गई, जिसमें शंकर लाल मौजूद था किन्तु कुछ कारणों से वह बैठक नहीं हो सकी । इसके पश्चात्, उसी दिन, जब तुलसीराम, रामचन्द्र, मिट्ठूलाल और शांतिलाल शंकर लाल के मकान से गुजर रहे थे तब अभियुक्त गोपाल ने उन्हें गाली थी और मिट्ठूलाल की छाती में चाकू से वार किया, अभियुक्त शंकर लाल ने तलवार से रामचन्द्र पर वार किया और नंदराम ने तलवार से कालू पर वार किया । अभियुक्त छोटेलाल ने तुलसीराम पर साइकिल की चेन से वार किया । मिट्ठूलाल को उसकी छाती पर अभियुक्त गोपाल द्वारा चाकू से कारित क्षतियों के कारण वह जमीन पर गिर गया और उसकी तत्काल मृत्यु हो गई । अभियुक्त दिनेश आहत व्यक्तियों पर पथराव कर रह था ।

8. तुलसीराम द्वारा इस घटना के संबंध में एक रिपोर्ट (प्रदर्श पी-12) दर्ज कराई गई । तुलसीराम द्वारा दर्ज कराई गई रिपोर्ट के आधार पर अन्वेषण आरंभ किया गया । पुलिस ने स्थलनक्शा तैयार किया और अभियुक्त व्यक्तियों को गिरफ्तार किया और उनके बताने पर अपराध में प्रयुक्त आयुध बरामद किए गए । मिट्ठूलाल का शव शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया और आहतों को चिकित्सा परीक्षा और उपचार के लिए अस्पताल भेज दिया गया ।

9. डा. दीप व्यास (अभि. सा. 4) ने मृतक के शव का शवपरीक्षण किया । उन्होंने शव के उदर में 2" x 0.5" माप का वेधित घाव पाया । अंतड़ियां बाहर निकल रही थीं जिनसे अत्यधिक रक्तस्राव हो रहा था । आंतरिक परीक्षा किए जाने पर, उन्होंने यकृत का आकार 2 इंच x 1 इंच पाया । डायफ्राम फूला हुआ था । डा. दीप व्यास की राय में मिट्ठूलाल की मृत्यु वेधित क्षति से कारित आघात और रक्तस्राव से हुई थी । प्रदर्श पी-8 शवपरीक्षण रिपोर्ट है ।

10. उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर हमारे समक्ष इस पर कोई विवाद नहीं है कि मिट्ठूलाल की मानववधात्मक मृत्यु हुई थी ।

11. अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, सभी अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप

पत्र फाइल किया गया था । उन्होंने आरोपों का दोषी न होने का अभिवाक् किया और यह अभिवाक् किया कि उन्हें इस मामले में मिथ्या फंसाया गया है । उन्होंने इस बाबत विशिष्ट प्रतिरक्षा ली कि रामचन्द्र, तुलसीराम, मिट्ठूलाल, कालूराम और शांतिलाल उनके घर पर आए थे और उन्होंने उन्हें गालियां दीं और वे अभियुक्त शंकरलाल की पिटाई करने लगे और अभियुक्त गोपाल द्वारा हस्तक्षेप किए जाने पर उस पर भी चाकू से हमला किया गया । अभियुक्तों के अनुसार शिकायतकर्ता पक्ष ने ही हमला किया था ।

12. अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों पर लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए 13 साक्षियों की परीक्षा की । अभियुक्तों ने भी प्रतिरक्षा में दो साक्षियों की परीक्षा की है । तथापि, अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर, विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों को इसमें इसके ऊपर उल्लिखित रूप में अपराधों का दोषी पाया ।

13. उच्च न्यायालय के समक्ष की गई अपील में, अभियुक्त गोपाल को दंड संहिता, 1860 की धारा 304 भाग I के अधीन दोषी पाया गया और उसे 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया जबकि अन्य अभियुक्तों अर्थात् शंकरलाल, नंदलाल और छोटलाल को दंड संहिता की धारा 324 के अधीन ही दोषी पाया गया । उन्हें जुर्माने के साथ पहले से भोगे गए कारावास की अवधि, जो कि 77 से 79 दिन है, के लिए ही दंडादिष्ट किया गया और अभियुक्त दिनेश को सभी आरोपों से पूर्णतया दोषमुक्त किया गया । इस प्रकार, अभियुक्त गोपाल और मध्य प्रदेश राज्य द्वारा अपीलें फाइल की गई हैं ।

14. तदनुसार, हमने पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुना और विस्तार से अभिलेख का परिशीलन किया ।

15. अपीलार्थी गोपाल की ओर से हाजिर हुए विद्वान् काउंसेल श्री सुभाष मलिक ने यह दलील दी है कि अभिलेख से यह साबित होता है कि शिकायतकर्ता पक्ष ग्राम हरथली का निवासी नहीं है । उन्हें अन्य व्यक्तियों के साथ पूनमचंद नाम के व्यक्ति द्वारा अपनी जाति की पंचायत में सम्मिलित होने के लिए बुलाया गया था किन्तु घटना के दिन पंचायत नहीं हो सकी और जब वह रतलाम वापस लौट रहा था तब शिकायतकर्ता पक्ष ने अभियुक्त शंकर लाल पर उसके मकान के सामने हमला किया जिससे

उसको तथा अभियुक्त गोपाल को क्षतियां पहुंचीं । जो कि क्षतियां शंकरलाल और गोपाल को पहुंची थीं, इसलिए उन्होंने अपनी आत्मरक्षा में हमला किया था । अभियुक्त गोपाल के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई है कि अभियोजन पक्ष शंकरलाल और गोपाल को पहुंची क्षतियों को स्पष्ट करने में असफल रहा है और शिकायतकर्ता पक्ष ने हमला किया था ।

16. इसके प्रतिकूल, राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री एस. के. दुबे ने दृढ़तापूर्वक हमारे समक्ष यह दलील दी है कि साक्ष्य का समुचित रूप से परिशीलन नहीं किया गया है क्योंकि अभियुक्त गोपाल को दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया जाना चाहिए भले ही उसने मिट्ठूलाल की छाती में मात्र एक ही क्षति क्यों न कारित की हो । यह भी दलील दी गई है कि मिट्ठूलाल की मृत्यु तत्काल हुई थी जिससे अभियुक्त गोपाल द्वारा मिट्ठूलाल की छाती पर कारित की गई क्षति की प्रकृति और उसकी प्रबलता दर्शित होती है । यह भी दलील दी गई है कि अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को केवल दंड संहिता की धारा 324 के अधीन ही दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता था जबकि शिकायतकर्ता पक्ष को कारित क्षतियां गंभीर प्रकृति की थीं । यह भी दलील दी गई है कि अभियुक्तों द्वारा पहले से भोगे गए कारावास की अवधि और प्रत्येक पर 200/- रुपए का जुर्माना भी अत्यधिक उदारपूर्ण हैं जो बढ़ाया जाना चाहिए ।

17. जैसा कि इसमें इसके ऊपर उल्लेख किया गया है, चूंकि निर्णय के उस भाग के विरुद्ध जिसके द्वारा अभियुक्त गोपाल को दंड संहिता, 1860 की धारा 304 भाग I के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषी पाया गया है और दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषमुक्त किया गया है, राज्य द्वारा कोई भी अपील प्रस्तुत नहीं की गई है, इसलिए हमें खेद है कि अभियुक्त गोपाल की दोषसिद्धि धारा 304 भाग I से धारा 302 में परिवर्तित किए जाने के संबंध में विचार करने की कोई गुंजाइश नहीं है ।

18. जहां तक अन्य अभियुक्तों का संबंध है उच्च न्यायालय ने इस संबंध में तर्कसम्मत और विधिमान्य कारण दिए हैं कि उन्हें दंड संहिता, 1860 की धारा 324 के अधीन अपराध कारित किए जाने के लिए दोषी क्यों पाया गया है । उच्च न्यायालय ने यह भी विचार किया है कि अभियुक्त व्यक्तियों को पहुंची क्षतियों के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा

तनिक भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । उपरोक्त के अतिरिक्त डा. बी. ई. बोरीवाल (अभि. सा. 5) के साक्ष्य से अभिलेख पर यह भी सामने आया है कि आहत व्यक्तियों को पहुंची क्षतियां साधारण प्रकृति की थीं । मामले के इस पहलू पर उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय के पैरा 8 और 9 पर विचार किया गया है ।

19. उपर्युक्त दलीलों के आधार पर, हमारा यह सुविचारित मत है कि अभियुक्त गोपाल की अपील ही भागतः इस सीमा तक मंजूर की जा सकती है कि उसकी दोषसिद्धि दंड संहिता की धारा 304 भाग I के अधीन कायम रहे, किन्तु दंड की अवधि को घटाकर पहले से भोगे गए कारावास जितनी की जा सकती है, जो कि छह वर्ष से अधिक है । हमारे अनुसार ऐसा करने से न्याय होगा । तथापि, 2007 की दांडिक अपील सं. 1711 में हमें तनिक भी कोई सार दिखाई नहीं देता है और यह खारिज किए जाने योग्य है ।

20. परिणामतः, अभियुक्त गोपाल द्वारा फाइल की गई 2007 की दांडिक अपील सं. 1710 भागतः मंजूर की जाती है क्योंकि दंड संहिता, 1860 की धारा 304 भाग I के अधीन उसकी दोषसिद्धि कायम रखी जाती है किन्तु दंड की अवधि घटाकर उसके द्वारा पहले से भागे गए कारावास जितनी की जाती है । यदि वह अन्य किसी मामले में वांछित नहीं है तो उसे जेल से तत्काल उन्मुक्त किया जाए । राज्य द्वारा फाइल की गई 2007 की दांडिक अपील सं. 1711 खारिज की जाती है ।

अपीलों का तदनुसार निपटारा किया गया ।

अस./अनू.

[2012] 1 उम. नि. प. 75

रंगकू दत्ता उर्फ रंजन कुमार दत्ता

बनाम

असम राज्य

20 मई, 2011

न्यायमूर्ति ए. के. गांगुली और न्यायमूर्ति दीपक वर्मा

आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 – धारा 20-क(1) और 19 [सपठित दंड संहिता, 1860 – धारा 120-ख] – प्रथम इत्तिला सूचना अभिलिखित किए जाने के पूर्व पुलिस उपाधीक्षक से पूर्व अनुमोदन प्राप्त करना आज्ञापक है – पूर्व अनुमोदन मौखिक रूप से प्राप्त किया जा सकता है – प्रथम इत्तिला सूचना अभिलिखित किए जाने के समय पुलिस उपधीक्षक से पूर्व अनुमोदन न होने पर यद्यपि तत्पश्चात् अन्वेषण पुलिस उपाधीक्षक द्वारा ही किया गया हो यह नामंजूर किए जाने को दायी है और त्रुटि सुधार किए जाने का अभिवाक् अस्वीकार्य है तथा कार्यवाहियां दूषित होने के आधार पर अपीलार्थी की दोषमुक्ति की गई ।

प्रस्तुत मामले में, यह कानूनी अपील, आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 (जिसे इसे इसमें इसके पश्चात् "उक्त अधिनियम" कहा गया है) के अधीन फाइल की गई है जिसके द्वारा नामनिर्दिष्ट न्यायालय (टाडा) द्वारा पारित तारीख 10 सितंबर, 2009 के आदेश पर आक्षेप किया गया है । इस एकमात्र अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने अनेक आधारों पर नामनिर्दिष्ट न्यायालय (टाडा) के निर्णय पर आक्षेप किया है किंतु दलीलों के दौरान, उन्होंने एक विशेष आधार पर बल दिया है अर्थात् उन्होंने दलील दी है कि वर्तमान मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित किए जाने पर उक्त अधिनियम की धारा 20(क)(1) के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों का स्पष्ट अतिक्रमण हुआ है जिसके परिणामस्वरूप इसके पश्चात् होने वाली संपूर्ण कार्यवाही दूषित हो जाती है और इससे नामनिर्दिष्ट न्यायालय के निर्णय और आदेश भी दूषित हो जाते हैं । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा का अवलंब लेते हुए, अपीलार्थी की ओर से

विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अजीत कुमार शर्मा (अभि. सा. 15) के, जिन्होंने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की है, साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित करने के पूर्व पुलिस अधीक्षक से अनुमोदन नहीं लिया था । उन्होंने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है, "मैंने मामला रजिस्ट्रीकृत करने के लिए संबद्ध पुलिस अधीक्षक से अनुमोदन प्राप्त नहीं किया था ।" विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभि. सा. 11 के साक्ष्य से, जो संजीत शेखर नाम का व्यक्ति है, यह स्पष्ट होता है कि यह साक्षी तारीख 22 जून, 2000 को पुलिस उपाधीक्षक मुख्यालय, उत्तरी लखीमपुर के पद पर तैनात था । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि घटना तारीख 6 नवंबर, 1993 को घटित हुई थी और इजाहर के फाइल करने के पूर्व, जो कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है, संबद्ध पुलिस अधीक्षक का लिखित अनुमोदन नहीं लिया गया था और इजाहर में भी पुलिस अधीक्षक उत्तरी लखीमपुर की ओर से किसी भी अनुमोदन का उल्लेख नहीं है । इस मामले में यह स्वीकृत स्थिति है कि उपर्युक्त पृष्ठांकन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किया गया है, फिर भी पुलिस अधीक्षक (अन्वेषण) उत्तरी लखीमपुर जिनका अनुमोदन अजीत कुमार शर्मा (अभि. सा. 15) द्वारा अभिकथित रूप से लिया गया है, की परीक्षा अभियोजन पक्ष द्वारा नहीं कराई गई है । इसके अतिरिक्त, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सारभूत साक्ष्य में अजीत कुमार शर्मा (अभि. सा. 15) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उसने मामला रजिस्ट्रीकृत करने के पूर्व पुलिस अधीक्षक से अनुमोदन प्राप्त नहीं किया था । बल्कि उसने यह कहा है कि उसने मामला रजिस्ट्रीकृत किया और स्वयं उसका अन्वेषण संभाल लिया, अभिग्रहण सूची तैयार की और साक्षियों के कथन अभिलिखित किए और उस समय अजीत कुमार शर्मा का रैंक पुलिस उपनिरीक्षक था । न्यायालय ने पहले ही अभि. सा. 11 के साक्ष्य को निर्दिष्ट किया है और उसने भी यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पुलिस अधीक्षक का लिखित अनुमोदन प्राप्त नहीं किया गया था । (पैरा 10, 12 और 13)

अतः, यह स्पष्ट है कि अनुमोदन लिया जाना चाहिए, चाहे वह मौखिक ही लिया जाए । इस न्यायालय का ध्यान आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 20(क)(1) के उपबंध की अपेक्षा के संबंध में, हितेन्द्र विष्णु ठाकुर और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य वाले मामले में किए गए विनिश्चय की ओर भी

दिलाया गया है । इस न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने उक्त अधिनियम के अनेक उपबंधों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 20(क)(1) की अपेक्षा को संशोधन द्वारा इसलिए सम्मिलित किया गया है ताकि आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के उपबंधों के दुरुपयोग को रोका जा सके । यह स्पष्ट है कि आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 20(क)(1) विधि की आज्ञापक अपेक्षा है । प्रथमतः, इसका आरंभ अध्यारोही खंड से होता है, अतः इसकी आज्ञापक प्रकृति पर बल देने के लिए इसमें अध्यारोही खंड के पश्चात् "नहीं" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है । जब कभी किसी कानून का आशय आज्ञापक होता है, तब वह नकारात्मक आदेश से आच्छादित होता है । इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि इस धारा की अपेक्षा की प्रकृति आज्ञापक है । इसके अतिरिक्त, चूंकि उक्त धारा में टाडा के उपबंधों के दुरुपयोग को रोकने के लिए संशोधन किया गया है, इसलिए न्यायालय को उक्त उपबंध का अनुपालन किए जाने के प्रश्न पर सतर्कतापूर्वक विचार करना चाहिए । उपर्युक्त सिद्धांतों का परिशीलन करने पर, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उक्त अधिनियम के अधीन किसी अपराध के कारित किए जाने के संबंध में पुलिस जिला अधीक्षक के पूर्व अनुमोदन के बिना पुलिस द्वारा कोई भी सूचना अभिलिखित नहीं की जा सकती है । अतः, पूर्व अनुमोदन की अपेक्षा का समाधान सूचना अभिलिखित किए जाने के समय पर किया जाना चाहिए । यदि पश्चात्वर्ती अन्वेषण, धारा 20(क) (1) के निबंधनों में पुलिस उपाधीक्षक द्वारा सूचना समुचित रूप से अभिलिखित किए बिना, किया जाता है तब ऐसे अन्वेषण से जिला पुलिस अधीक्षक के अनुमोदन के बिना, सूचना अभिलिखित किए जाने की अंतर्निहित कमी पूरी नहीं होगी । पुलिस उपाधीक्षक, जिला पुलिस अधीक्षक होता है या नहीं, यह एक अलग प्रश्न है जिसे हम इस मामले में विनिश्चित नहीं करेंगे । लेकिन एक बात स्पष्ट है कि अनुमोदन की अपेक्षा सूचना अभिलिखित किए जाने के आरंभ में ही पूरी की जानी चाहिए । यदि सूचना अभिलिखित किए जाने के प्रक्रम पर अनुमोदन नहीं लिया गया है, तब पुलिस उपाधीक्षक द्वारा किए गए पश्चात्वर्ती अन्वेषण से यह कमी दूर नहीं होगी । (पैरा 16, 20, 22 और 23)

तथापि, हम आश्चर्यचकित हैं कि नामनिर्देशित न्यायालय ने आक्षेपित

निर्णय में यह निष्कर्ष निकाला है कि पुलिस अधीक्षक से मौखिक अनुमोदन लिया गया था जबकि यह भी उल्लेख किया गया है कि इस मामले के अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 15) ने यह स्वीकार किया है कि उसने अनुमोदन प्राप्त नहीं किया था । किसी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि अभि.सा. 15 को उसके साक्ष्य का खंडन करने के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उस समय दिखाई गई थी जब वह (न्यायालय में) अपना साक्ष्य दे रहा था । अतः, इस मामले में अभियोजन पक्ष अभिलेख पर यह प्रस्तुत करने में असफल रहा है कि मौखिक अनुमोदन प्राप्त किया गया था । यह उल्लेखनीय है कि अभि. सा. 15 को पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया है । अतः, अभि. सा. 15 के स्पष्ट साक्ष्य का परिशीलन करने पर, यह न्यायालय अभिनिर्धारित करता है कि इस मामले में सूचना अभिलिखित किए जाने के पूर्व संबद्ध प्राधिकारी से मौखिक अनुमोदन भी प्राप्त नहीं किया गया था । अतः, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किए जाने से लेकर, आरोप पत्र फाइल किए जाने और पश्चात्वर्ती विचारण किए जाने तक की कार्यवाही विधिक कमी होने के कारण दूषित हो जाती है और विधि की अत्यावश्यक अपेक्षा को अनदेखा करते हुए विचारण किए जाने में पूर्णतया घोर अन्याय हुआ है । अतः हमें नामनिर्देशित न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करने में कोई संकोच नहीं है । (पैरा 25, 26 और 27)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2001]	(2001) 10 एस. सी. सी. 597 : **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **ए. सत्यनारायण और अन्य** ;	14
[1994]	(1994) 4 एस. सी. सी. 602 : **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ।	16

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 2307.

2000 के सेशन विचारण मामला सं. 116 में विद्वान् नामनिर्दिष्ट (टाडा) न्यायालय असम गुवाहाटी के तारीख 10 सितंबर, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री मनीष गोस्वामी और मैसर्स मैप

एंड कंपनी

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री वर्तिका सहाय (मैसर्स कारपोरेट लॉ ग्रुप की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक कुमार गांगुली ने दिया ।

न्या. गांगुली – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना गया है ।

2. यह कानूनी अपील, आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 (जिसे इसे इसमें इसके पश्चात् 'उक्त अधिनियम' निर्दिष्ट किया गया है) के अधीन फाइल की गई है जिसके द्वारा नामनिर्दिष्ट न्यायालय (टाडा) द्वारा पारित तारीख 10 सितंबर, 2009 के आदेश पर आक्षेप किया गया है । इस एकमात्र अपीलार्थी की ओर हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने अनेक आधारों पर नामनिर्दिष्ट न्यायालय (टाडा) के निर्णय पर आक्षेप किया है किंतु दलीलों के दौरान, उन्होंने एक विशेष आधार पर बल दिया है अर्थात् उन्होंने दलील दी है कि वर्तमान मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित किए जाने पर उक्त अधिनियम की धारा 20 (क)(1) के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों का स्पष्ट अतिक्रमण हुआ है जिसके परिणामस्वरूप इसके पश्चात् होने वाली संपूर्ण कार्यवाही दूषित हो जाती है और इससे नामनिर्दिष्ट न्यायालय के निर्णय और आदेश भी दूषित हो जाते हैं ।

3. मामले के मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं :–

तारीख 6 नवंबर, 1993 को बीहपुरिया पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी अजीत कुमार शर्मा द्वारा अपीलार्थी सहित अनेक व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई । चार अभियुक्त व्यक्तियों में से मोनी पाठक के विरुद्ध कोई भी आरोप विरचित नहीं किया गया । जहां तक भाबेन गोगोई **उर्फ** बिक्रम का संबंध है उसे नामनिर्दिष्ट न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया और नामनिर्दिष्ट न्यायालय के समक्ष चल रही कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान इंद्रेश्वर हजारिका **उर्फ** बाबुल हंदीक की मृत्यु हो गई थी । केवल रंगू दत्त **उर्फ** रंजन कुमार दत्त को दोषसिद्ध किया गया है और वह हमारे समक्ष अपीलार्थी है ।

4. तारीख 6 नवंबर, 1993 को की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट निम्न प्रकार है :–

"मैं सादर यह रिपोर्ट करता हूं कि तारीख 5 नवंबर, 1993 को 9.50 बजे अपराह्न में जब निजी सुरक्षा अधिकारी हवलदार लोकनाथ कंवर और अन्य पुलिस कार्मिकों के साथ पुलिस चौकी धौलपुर के भारसाधक उपनिरीक्षक ए.क्यू.एम. जहांगीर को पहाड़ी से लगे खुले मैदान में धौलपुर सर्किल में चल रहे देबराज थियेटर की विधि व्यवस्था खराब होने के संबंध में सूचना दी गई कि कुछ उल्फा उग्रवादियों ने उपनिरीक्षक ए.क्यू.एम. जहांगीर और निजी सुरक्षा अधिकारी हवलदार लोकनाथ पर एक साथ निकट से गोलियां चलाई हैं और इसके परिणामस्वरूप क्षतियों के कारण दोनों की मृत्यु हो गई है ।

इस घटना के पूर्व तारीख 5 अक्तूबर, 1993 को उल्फा की धौलपुर पुलिस चौकी के साथ मुठभेड़ हुई थी और धौलपुर पुलिस चौकी के भारसाधक उपनिरीक्षक ए.क्यू.एम. जहांगीर के नेतृत्व में जिला लखीमपुर के उल्फा कमांडर जोगन गोगोई को मार गिराया और तभी से जोगन गोगोई के प्रतिबंधित उल्फा उग्रवादी साथियों ने उपनिरीक्षक ए.क्यू.एम. जहांगीर की हत्या करने की योजना बनाई ।

तारीख 5 नवंबर, 1993 की शाम को उक्त उल्फा उग्रवादियों ने श्री रंगू दत्त की सहायता से उपनिरीक्षक ए.क्यू.एम. जहांगीर को पहचान लिया और इसके पश्चात् उल्फा उग्रवादी अर्थात् (1) श्री इंद्रेश्वर हजारिका **उर्फ** बाबुल हंदीक (2) श्री नोबल गोगोई **उर्फ** बिक्रम ने श्री मोनी पाठक **उर्फ** देबो पाठक के नेतृत्व में अंधेरे का लाभ उठाते हुए एक साथ मिलकर अग्न्यायुध से हमला किया और उपनिरीक्षक ए.क्यू.एम. जहांगीर और निजी सुरक्षा अधिकारी हवलदार लोकनाथ कंवर की हत्या की ।

अतः, मैं उल्फा उग्रवादियों और उनके चार साथियों के विरुद्ध आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 3/4/5 के साथ पठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 120ख/302 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत किए जाने का निवेदन करता हूं, मैंने इस मामले का अन्वेषण पहले ही संभाल लिया है ।"

5. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस थाना बीहपुरिया में 1993 का मामला सं. 497 आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप

(निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 3/4 और 5 के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख/302 के अधीन संस्थित किया गया और नामनिर्दिष्ट न्यायालय ने तारीख 31 अक्तूबर, 2002 के अपने आदेश द्वारा अन्य बातों के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख/302 और उक्त अधिनियम की धारा 3(2)(1) के अधीन अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप विरचित किए । इसके पश्चात्, नामनिर्दिष्ट न्यायालय ने 2000 के सेशन मामला (टाडा) सं. 116 में तारीख 10 सितंबर, 2009 के आक्षेपित निर्णय द्वारा अपीलार्थी को उक्त अधिनियम की धारा 3(2)(1) के साथ पठित दंड संहिता की धारा 120ख/302 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी पाया और उसे आजीवन कारावास भोगने और 2000 रुपये के जुर्माने का संदाय करने, जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त दो मास का कारावास भोगने का दंडादेश दिया ।

6. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 20(क)(1) के अधीन अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसरण में, उक्त अधिनियम के अधीन किसी भी अपराध के किए जाने के बारे में कोई सूचना जिला पुलिस अधीक्षक के पूर्व अनुमोदन के बिना पुलिस द्वारा अभिलिखित नहीं की जाएगी ।

7. विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि धारा 20(क)(1) के अधीन उक्त उपबंध 1993 के अधिनियम सं. 43 की धारा 9 के अंतर्गत संशोधन के अनुसार सम्मिलित किया गया है । उक्त संशोधन तारीख 23 मई, 1993 को प्रभावी हुआ था और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 6 नवंबर, 1993 को अभिलिखित की गई है ।

8. अतः, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित किए जाने के समय पर, धारा 20(क)(1) के उपबंध स्पष्ट रूप से लागू होंगे ।

9. यह पूर्णतया उचित होगा कि अपीलार्थी द्वारा उठाए गए मुद्दों का मूल्यांकन करने के लिए धारा 20(क) का उल्लेख किया जाए जो निम्न प्रकार है :–

> धारा 20क – अपराध का संज्ञान – (1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के किए जाने के बारे में कोई सूचना जिला पुलिस अधीक्षक के पूर्व अनुमोदन के बिना पुलिस द्वारा अभिलिखित नहीं की जाएगी ।

(2) कोई भी न्यायालय यथास्थिति पुलिस महानिरीक्षक या पुलिस आयुक्त की पूर्व मंजूरी के बिना इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का संज्ञान नहीं करेगा ।

10. आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा का अवलंब लेते हुए, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अजीत कुमार शर्मा (अभि. सा. 15) के, जिन्होंने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की है, साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित करने के पूर्व पुलिस अधीक्षक से अनुमोदन नहीं लिया था । उन्होंने अपनी प्रति परीक्षा में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है, "मैंने मामला रजिस्ट्रीकृत करने के लिए संबद्ध पुलिस अधीक्षक से अनुमोदन प्राप्त नहीं किया था ।" विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभि. सा. 11 के साक्ष्य से, जो संजीत शेखर नाम का व्यक्ति है, यह स्पष्ट होता है कि यह साक्षी तारीख 22 जून, 2000 को पुलिस उपाधीक्षक मुख्यालय, उत्तरी लखीमपुर के पद पर तैनात था । इस साक्षी ने अपनी प्रति परीक्षा में यह कथन किया है कि घटना तारीख 6 नवंबर, 1993 को घटित हुई थी और इजाहर के फाइल करने के पूर्व, जो कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है, संबद्ध पुलिस अधीक्षक का लिखित अनुमोदन नहीं लिया गया था और इजाहर में भी पुलिस अधीक्षक उत्तरी लखीमपुर की ओर से किसी भी अनुमोदन का उल्लेख नहीं है ।

11. हमने मूल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 12)का परिशीलन किया है । मूल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अजीत कुमार शर्मा द्वारा पृष्ठांकन किया गया है जो निम्न प्रकार है :–

> "रिपोर्ट प्राप्त की गई है और पुलिस थाना बीहपुरिया में मामला सं. 0497/93 के रूप में आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 3/4/5 के साथ पठित दंड संहिता की धारा 120ख/302 के अधीन पुलिस अधीक्षक (अन्वेषण) एनएल के अनुमोदन के साथ रजिस्ट्रीकृत किया जाता है ।"

12. इस मामले में यह स्वीकृत स्थिति है कि उपर्युक्त पृष्ठांकन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किया गया है, फिर भी पुलिस अधीक्षक (अन्वेषण) उत्तरी लखीमपुर जिनका अनुमोदन अजीत कुमार शर्मा (अभि. सा. 15) द्वारा अभिकथित रूप से लिया गया है, की परीक्षा अभियोजन पक्ष द्वारा नहीं कराई गई है । इसके अतिरिक्त, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सारभूत साक्ष्य

में अजीत कुमार शर्मा (अभि. सा. 15) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उसने मामला रजिस्ट्रीकृत करने के पूर्व पुलिस अधीक्षक से अनुमोदन प्राप्त नहीं किया था । बल्कि उसने यह कहा है कि उसने मामला रजिस्ट्रीकृत किया और स्वयं उसका अन्वेषण संभाल लिया, अभिग्रहण सूची तैयार की और साक्षियों के कथन अभिलिखित किए और उस समय अजीत कुमार शर्मा का रैंक पुलिस उपनिरीक्षक था ।

13. हमने पहले ही अभि.सा. 11 के साक्ष्य को निर्दिष्ट किया है और उसने भी यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पुलिस अधीक्षक का लिखित अनुमोदन प्राप्त नहीं किया गया था ।

14. इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में, यह प्रश्न उठता है कि क्या इस मामले में धारा 20(क) (1) की आज्ञापक अपेक्षा का अनुपालन किया गया है या नहीं । इस न्यायालय का ध्यान इस न्यायालय के कतिपय विनिश्चयों की ओर दिलाया गया है जिनसे यह प्रतीत होता है कि इस प्रश्न को लेकर संविवाद किया गया है और भिन्न दृष्टिकोण अपनाए गए हैं कि लिखित अनुमोदन आवश्यक है या मौखिक । न्यायिक दृष्टिकोण के उक्त विचलन को **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **ए. सत्यनारायण और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णय द्वारा विनिश्चित किया गया है ।

15. परिणामतः, इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस मामले में संविवाद उपवर्णित करते हुए निर्णय के पैरा 8 में निम्न अभिनिर्धारित किया :—

> "इस न्यायालय के उपर्युक्त दो निर्णयों पर विचार करने पर, हम बाद वाले निर्णय से सहमत हैं और हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि पूर्वानुमोदन केवल लिखित में देना धारा 20(क)(1) के अधीन आवश्यक नहीं है । पूर्वानुमोदन, मामला रजिस्ट्रीकृत करने के लिए पुरोभाव्य शर्त नहीं है किंतु यह लिखित या मौखिक भी हो सकती है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा कल्पनाथ राय [(1997) 8 एस. सी. सी. 732] वाले मामले में व्यक्त किया गया है, अतः वर्तमान मामले में, विद्वान् नामनिर्देशित न्यायाधीश ने आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 4 और 5 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत किए जाने से इनकार करके पूर्णतया

[1] (2001) 10 एस. सी. सी. 597.

गलती की है । अतः, हम विद्वान् नामनिर्देशित न्यायाधीश के आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हैं और यह निदेश देते हैं कि इस मामले में विधि के अनुसरण में कार्यवाही की जानी चाहिए ।"

16. अतः, यह स्पष्ट है कि अनुमोदन लिया जाना चाहिए, चाहे वह मौखिक ही लिया जाए । इस न्यायालय का ध्यान आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 20(क)(1) के उपबंध की अपेक्षा के संबंध में, **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय की ओर भी दिलाया गया है । इस न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने उक्त अधिनियम के अनेक उपबंधों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 20(क)(1) की अपेक्षा को संशोधन द्वारा इसलिए सम्मिलित किया गया है ताकि आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के उपबंधों के दुरुपयोग को रोका जा सके । अतः हम न्यायमूर्ति डा. ए. एस. आनन्द (तत्कालीन न्यायाधीश) द्वारा किए गए निर्णय के पैरा 12 में अधिकथित सिद्धांतों को पुनः दोहराते हैं जो निम्न प्रकार हैं :–

"हाल ही में, हमने कुछ ऐसे मामलों पर विचार किया है जिनमें नाम निर्देशित न्यायालयों ने आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के अधीन अभियुक्त को तब भी आरोपित और/या दोषसिद्ध किया है जब ऐसा तनिक भी साक्ष्य नहीं होता है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि प्रथमदृष्ट्या आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के उपबंधों द्वारा अनुध्यात आशय से अपराध कारित किया गया है, इस संबंध में मात्र अन्वेषण अभिक्रम के इस कथन के आधार पर कि ऐसा आपराधिक कार्य किया गया है जिसका परिणाम समाज या उसके किसी भाग में संत्रास और आतंक फैलाना होगा, ऐसे आदेशों से संसद् और आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 का दुरुपयोग होगा, आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 20क के माध्यम से यह स्पष्ट किया

---

[1] (1994) 4 एस. सी. सी. 602.

> गया है कि आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के अधीन अपराधों पर कार्यवाही गंभीरतापूर्वक करनी चाहिए क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में अंतर्विष्ट किसी भी बात के होते हुए धारा 20(क)(1) के अधीन उस अपराध की कोई भी सूचना जिला पुलिस अधीक्षक के पूर्व अनुमोदन के बिना अभिलिखित नहीं की जाएगी जो अपराध आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के अधीन कारित किया गया है और धारा 20(क) (2) के अधीन कोई न्यायालय अधिनियम के अधीन विहित प्राधिकारियों की पूर्व मंजूरी के बिना आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के अधीन किसी भी अपराध का संज्ञान नहीं करेगा । इस प्रकार इस अधिनियम में धारा 20क इसलिए सम्मिलित की गई है ताकि आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के उपबंधों के दुरुपयोग को रोका जा सके ।"

17. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वर्तमान मामले में धारा 20(क)(1) की अपेक्षा का अनुपालन किया गया है और उन्होंने अपनी दलील के समर्थन में इस न्यायालय का ध्यान अभि. सा. 4 और अभि. सा. 6 के साक्ष्य की ओर दिलाया है । अपने साक्ष्य में, नितुल गोगोई (अभि. सा. 4) ने यह कहा है कि तारीख 21 अक्तूबर, 1994 को वह पुलिस उपाधीक्षक, मुख्यालय, लखीमपुर के पद पर कार्यरत था । उस दिन पुलिस अधीक्षक, लखीमपुर ने उसे "मामले के अन्वेषण का शेष भाग पूरा करने के लिए" इस मामले की सीडी सौंपी थी ।

18. डा. निर्मल दास (अभि. सा. 6) ने भी यह साक्ष्य दिया है कि तारीख 25 सितंबर, 1999 को वह पुलिस उपाधीक्षक मुख्यालय, उत्तरी लखीमपुर के पद पर कार्यरत था । उस दिन पुलिस अधीक्षक लखीमपुर ने मामले का अन्वेषण उसे सौंपा था और तदनुसार, उसने रिजर्व उपनिरीक्षक से सीडी प्राप्त की थी ।

19. अभि. सा. 4 और अभि. सा. 6 के उपर्युक्त अभिसाक्ष्य का अवलंब लेते हुए, विद्वान काउंसेल ने यह दलील दी है कि वर्तमान मामले में, पुलिस उपाधीक्षक द्वारा अन्वेषण किया गया था, अतः, धारा 20(क)(1) की अपेक्षा का अनुपालन किया गया है । हम उपर्युक्त दलील का मूल्यांकन

करने में असमर्थ हैं ।

20. यह स्पष्ट है कि आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 की धारा 20(क)(1) विधि की आज्ञापक अपेक्षा है । प्रथमतः, इसका आरंभ अध्यारोही खंड से होता है, अतः इसकी आज्ञापक प्रकृति पर बल देने के लिए इसमें अध्यारोही खंड के पश्चात् "नहीं" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है । जब कभी किसी कानून का आशय आज्ञापक होता है, तब वह नकारात्मक आदेश से आच्छादित होता है । इस संबंध में जी.पी. सिंह द्वारा लिखित पुस्तक प्रिंसिपिल्स ऑफ स्टेट्यूटरी इंटरप्रिटेशन, 12वां संस्करण को निर्दिष्ट किया जा सकता है । इस पुस्तक के पृष्ठ 404 पर विद्वान लेखक ने यह उल्लेख किया है :–

> "जैसा कि क्रॉफोर्ड द्वारा कथन किया गया है : प्रतिषेधात्मक या नकारात्मक शब्द विरलता से ही, यदि कभी उनका प्रयोग किया जाए, निदेशात्मक होते हैं । और ऐसा तब भी होता है जब कानून के अधीन अवज्ञा के लिए किसी भी शास्ति का उपबंध न किया गया हो । जैसा कि न्यायमूर्ति सुब्बाराव द्वारा मत व्यक्त किया गया है: 'निषेधात्मक शब्द स्पष्ट रूप से प्रतिषेधात्मक होते हैं और सामान्यतया उनका प्रयोग विधायी यंत्र के रूप में आदेश सूचक बनाने के लिए किया जाता है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 और धारा 87ख; भारतीय रेल अधिनियम, 1890 की धारा 77; बम्बई किराया अधिनियम, 1947 की धारा 15; भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 213; भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5क; भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 की धारा 7 ; कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 108; खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 20(1); वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की धारा 55; औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947(1956 में यथा संशोधित) की धारा 33(2)(ख) के परंतुक; भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम, 1956(1993 में यथा संशोधित) की धारा 10क और यह ऐसे ही अन्य उपबंध का अर्थ आज्ञापक लगाया गया है । इसी कारण से वह उपबंध भी आज्ञापक है जिसमें कम से कम तीन मास का नोटिस दिए जाने की अपेक्षा की गई है ।"

21. विद्वान लेखक द्वारा किए गए विधि के उपर्युक्त कथन से हम आदरपूर्वक सहमत हैं ।

22. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि इस धारा की अपेक्षा की प्रकृति आज्ञापक है । इसके अतिरिक्त, चूंकि उक्त धारा में टाडा के उपबंधों के दुरुपयोग को रोकने के लिए संशोधन किया गया है, इसलिए न्यायालय को उक्त उपबंध का अनुपालन किए जाने के प्रश्न पर सतर्कतापूर्वक विचार करना चाहिए ।

23. उपर्युक्त सिद्धांतों का परिशीलन करने पर, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उक्त अधिनियम के अधीन किसी अपराध के कारित किए जाने के संबंध में पुलिस जिला अधीक्षक के पूर्व अनुमोदन के बिना पुलिस द्वारा कोई भी सूचना अभिलिखित नहीं की जा सकती है । अतः, पूर्व अनुमोदन की अपेक्षा का समाधान सूचना अभिलिखित किए जाने के समय पर किया जाना चाहिए । यदि पश्चात्वर्ती अन्वेषण, धारा 20(क) (1) के निबंधनों में पुलिस उपाधीक्षक द्वारा सूचना समुचित रूप से अभिलिखित किए बिना, किया जाता है तब ऐसे अन्वेषण से जिला पुलिस अधीक्षक के अनुमोदन के बिना, सूचना अभिलिखित किए जाने की अंतर्निहित कमी पूरी नहीं होगी । पुलिस उपाधीक्षक, जिला पुलिस अधीक्षक होता है या नहीं, यह एक अलग प्रश्न है जिसे हम इस मामले में विनिश्चित नहीं करेंगे । लेकिन एक बात स्पष्ट है कि अनुमोदन की अपेक्षा सूचना अभिलिखित किए जाने के आरंभ में ही पूरी की जानी चाहिए । यदि सूचना अभिलिखित किए जाने के प्रक्रम पर अनुमोदन नहीं लिया गया है, तब पुलिस उपाधीक्षक द्वारा किए गए पश्चात्वर्ती अन्वेषण से यह कमी दूर नहीं होगी । इस संबंध में माननीय डेनिंग द्वारा अधिकथित उन सिद्धांतों को निर्दिष्ट किया गया है जो बेंजामिन लियोनार्ड मेक्फाय **बनाम** यूनाइटेड अफ्रीका कंपनी लिमिटेड वाले मामले में प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति को स्पष्ट करते हैं । माननीय डेनिंग ने एकमत न्यायपीठ की ओर से ऐसे कार्य के प्रभाव को इंगित किया है जो अत्यंत स्पष्ट रूप से शून्य है और मैं उनके मत को और बेहतर व्यक्त करता हूं :–

> "यदि कोई कार्य शून्य है, तब यह विधि की दृष्टि से अकृतता कहा जाएगा । यह अनुचित ही नहीं अपितु असाध्य रूप से अनुचित है । इसे अपास्त करने के लिए न्यायालय के किसी आदेश की कोई आवश्यकता नहीं है । यह स्वतः ही बड़ी आसानी से अकृत और शून्य माना जा सकता है यद्यपि कभी-कभी न्यायालयों के लिए इसे ऐसा घोषित करना सुविधाजनक होता है । इस पर आधारित प्रत्येक कार्यवाही अनुचित और असाध्य रूप से गलत होगी । बिना किसी

आधार पर किसी तथ्य को विद्यमान नहीं रखा जा सकता है और न ही ऐसी प्रत्याशा की जा सकती है । बिना आधार के तथ्य ढह जाएगा ।"

हम उपर्युक्त मत से ससम्मान सहमत हैं ।

24. अतः, वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए, अभि. सा. 4 और अभि. सा. 6 के साक्ष्य से राज्य के काउंसेल को कोई सहायता नहीं मिलेगी ।

25. तथापि, हम आश्चर्यचकित हैं कि नामनिर्देशित न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में यह निष्कर्ष निकाला है कि पुलिस अधीक्षक से मौखिक अनुमोदन लिया गया था जबकि यह भी उल्लेख किया गया है कि इस मामले के अन्वेषक अधिकारी (अभि.सा. 15) ने यह स्वीकार किया है कि उसने अनुमोदन प्राप्त नहीं किया था । किसी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि अभि. सा. 15 को उसके साक्ष्य का खंडन करने के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उस समय दिखाई गई थी जब वह (न्यायालय में) अपना साक्ष्य दे रहा था । अतः, इस मामले में अभियोजन पक्ष अभिलेख पर यह प्रस्तुत करने में असफल रहा है कि मौखिक अनुमोदन प्राप्त किया गया था । यह उल्लेखनीय है कि अभि. सा. 15 को पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया है ।

26. अतः, अभि. सा. 15 के स्पष्ट साक्ष्य का परिशीलन करने पर, यह न्यायालय अभिनिर्धारित करता है कि इस मामले में सूचना अभिलिखित किए जाने के पूर्व संबद्ध प्राधिकारी से मौखिक अनुमोदन भी प्राप्त नहीं किया गया था ।

27. अतः, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत किए जाने से लेकर, आरोप पत्र फाइल किए जाने और पश्चात्वर्ती विचारण किए जाने तक की कार्यवाही विधिक कमी होने के कारण दूषित हो जाती है और विधि की अत्यावश्यक अपेक्षा को अनदेखा करते हुए विचारण किए जाने में पूर्णतया घोर अन्याय हुआ है । अतः हमें नामनिर्देशित न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करने में कोई संकोच नहीं है ।

28. अतः, अपील मंजूर की जाती है । यदि अपीलार्थी अन्य किसी मामले में वांछित नहीं है तो उसे जेल से तत्काल उन्मुक्त किया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

[2012] 1 उम. नि. प. 89

भारत संघ और अन्य

बनाम

विक्रमभाई मगनभाई चौधरी

1 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् और न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक

केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965 – नियम 29 – अनुशासनिक कार्यवाही – अपील प्राधिकारी द्वारा अनुशासनिक प्राधिकारी के आदेश का नियम 29(1)(vi) के अधीन पुनर्विलोकन – पुनर्विलोकन कार्यवाहियों को चुनौती – अधिकरण द्वारा पुनर्विलोकन संबंधी अधिसूचना को इस आधार पर अभिखंडित करना कि उसमें पुनर्विलोकन के लिए कोई समय-सीमा विनिर्दिष्ट नहीं की गई – यदि अधिसूचना में ऐसी कोई समय-सीमा विनिर्दिष्ट नहीं की जाती है जिसके भीतर विनिर्दिष्ट प्राधिकारी नियम 29(1)(vi) के अधीन पुनर्विलोकन शक्ति का प्रयोग कर सकता है तो वह अधिसूचना नियम 29 के निबंधनानुसार नहीं होगी और अधिकरण का उसे अभिखंडित करना पूर्णतः न्यायोचित होगा ।

इस मामले में प्रत्यर्थी ने मनी आर्डर डाक सहायक के रूप में कार्य करते समय निविदत्त मनी आर्डर प्ररूपों को धनराशियों सहित स्वीकार करने से इनकार कर दिया था । इसके पश्चात्, सहायक डाकपाल और उसके अव्यवहित पर्यवेक्षक ने उसे कार्यालय आदेश पुस्तिका के माध्यम से लिखित में उक्त मनी आर्डरों को स्वीकार करने के अनुदेश दिए किन्तु प्रत्यर्थी ने उन आदेशों का पालन नहीं किया था । तदनुसार, उसके विरुद्ध विभागीय कार्रवाई आरंभ की गई थी और उसे निलंबित कर दिया गया । तथापि, बाद में प्रत्यर्थी का निलंबन आदेश प्रतिसंहृत कर दिया गया था और प्रत्यर्थी के विरुद्ध केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1964 के नियम 16 के अधीन अनुशासनिक कार्रवाई आरंभ की गई थी । अनुशासनिक प्राधिकारी ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध परिनिंदा का दंडादेश अधिनिर्णीत किया । इसके पश्चात्, मुख्य महा डाकपाल, द्वारा नियमों के नियम 29 के अधीन इस मामले का पुनर्विलोकन किया गया था और उसने डाकघर के अधीक्षक को प्रत्यर्थी के विरुद्ध नियमों के नियम 14

के अधीन अनुशासनिक कार्यवाहियां संस्थित करने और कार्यवाहियां पूरा होने पर मामले को अग्रिम कार्रवाई के लिए उसके पास भेजने का निदेश दिया । तदनुसार, प्रत्यर्थी को एक सूचना जारी की गई थी । प्रत्यर्थी ने इन कार्यवाहियों को चुनौती देते हुए अधिकरण, अहमदाबाद न्यायपीठ, अहमदाबाद के समक्ष मूल आवेदन फाइल किया । अधिकरण ने प्रत्यर्थी की ओर से फाइल किया गया आवेदन मंजूर कर लिया । उक्त आदेश से व्यथित होकर, प्रस्तुत अपीलार्थियों ने अहमदाबाद स्थित गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष विशेष सिविल आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा प्रस्तुत अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज कर दिया । उक्त आदेश और निर्णय से व्यथित होकर प्रस्तुत अपीलार्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिका के रूप में यह अपील फाइल की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह उल्लेखनीय है कि ऐसे मामलों में जहां अपील प्राधिकारी अनुशासनिक प्राधिकारी के आदेश का पुनर्विलोकन करने की ईप्सा करता है, वहां इस प्रयोजनार्थ नियत अवधि उस आदेश की तारीख से छह मास है, जो कि पुनरीक्षित किया जाना प्रस्थापित है, । यह केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965 के नियम 29 के उपनियम 1 के उपखंड (v) से स्पष्ट होता है । दूसरी ओर, खंड (vi) द्वारा ऐसी शक्तियां ऐसे अन्य प्राधिकारियों को प्रदत्त की गई हैं जो कि राष्ट्रपति द्वारा इस निमित्त किसी साधारण या विशेष आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएं और उक्त प्राधिकारी को उसमें विहित समय के भीतर कार्यवाहियां आरंभ करनी होती हैं । हालांकि नियम 29(1)(vi) में यह उपबंध है कि ऐसे आदेश में वह समय भी विनिर्दिष्ट होगा जिसके भीतर उस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, किन्तु तथ्य यह बचता है कि अधिसूचना में कोई समय-सीमा विहित नहीं की गई है । अधिसूचना में कोई अवधि उल्लिखित नहीं की गई है । यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती है कि खंड (v) के अनुसार अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अवधि न होने पर भी अन्य प्राधिकारी ऐसी शक्ति का प्रयोग कर सकता है । स्पष्टतः, उपखंड (v) अपील प्राधिकारी को लागू होता है और खंड (vi) राष्ट्रपति द्वारा उपखंड (vi) के अधीन उक्त प्राधिकारी द्वारा शक्ति का प्रयोग करने के लिए किसी साधारण या विशेष आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट किसी अन्य प्राधिकारी को लागू होता है । कोई विनिर्दिष्ट अवधि अवश्य होनी चाहिए

और शक्ति का प्रयोग केवल इस प्रकार विहित अवधि के भीतर ही किया जा सकता है । चूंकि तारीख 29 मई, 2001 की अधिसूचना में ऐसी कोई समय सीमा विनिर्दिष्ट नहीं की गई है जिसके भीतर विनिर्दिष्ट प्राधिकारी द्वारा नियम 29(1)(vi) के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, इसलिए हमारा यह मत है कि ऐसी अधिसूचना नियम 29 के निबंधनों के अनुसार नहीं है और अधिकरण का उसे अभिखंडित करना पूर्णतः न्यायोचित था । (पैरा 7 और 8)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2006 की सिविल अपील सं. 2602.

2005 के विशेष सिविल आवेदन सं. 16575 में गुजरात उच्च न्यायालय की अहमदाबाद न्यायपीठ के तारीख 12 अगस्त, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री ए. एस. चंधियोक, अपर महा-सालिसिटर, एस. वासिम ए. कादरी, (सुश्री) नेहा रस्तोगी, सैमा बख्शी, ए. के. शर्मा और वी. के. वर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री विश्वजीत सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् ने दिया ।

न्या. सदाशिवम् – भारत संघ द्वारा यह अपील 2005 के विशेष सिविल आवेदन सं. 16575 में अहमदाबाद स्थित गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 12 अगस्त, 2005 के उस अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने इस मामले में के अपीलार्थियों का आवेदन खारिज कर दिया था और 2004 के मूल आवेदन सं. 333 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (जिसे संक्षेप में 'अधिकरण' कहा गया है) के उस आदेश को कायम रखा था जिसमें अधिकरण ने तारीख 20 अप्रैल, 2005 के अपने आदेश द्वारा तारीख 29 मई, 2001 की अधिसूचना सं. सी-11011/1/2001-वी. पी. को अभिखंडित और अपास्त कर दिया था ।

2. **संक्षिप्त तथ्य :**

(क) तारीख 8 जून, 2000 को विक्रमभाई मगनभाई चौधरी ने, जो कि इस मामले में प्रत्यर्थी है, बरदोली में मनी आर्डर डाक सहायक के रूप में कार्य करते समय श्री पी. एन. सिंह, श्री एच. के. तिवारी और श्री आर.

सी. पांडे द्वारा निविदत्त मनी आर्डर प्ररूपों को धनराशियों सहित स्वीकार करने से इनकार कर दिया था । इसके पश्चात्, श्री के. एच. गमित, सहायक डाकपाल, बरदोली और उसके अव्यवहित पर्यवेक्षक ने उसे कार्यालय आदेश पुस्तिका के माध्यम से लिखित में उक्त मनी आर्डरों को स्वीकार करने के अनुदेश दिए किन्तु प्रत्यर्थी ने उन आदेशों का पालन नहीं किया था । तदनुसार, उसके विरुद्ध विभागीय कार्रवाई आरंभ की गई थी और उसे बरदोली डाकघर के अधीक्षक के आदेश द्वारा ज्ञापन सं. बी-1/पी.एफ./ वी.एम.सी./2000 द्वारा निलंबित कर दिया गया था ।

(ख) तथापि, तारीख 23 जून, 2000 को प्रत्यर्थी का निलंबन आदेश प्रतिसंहृत कर दिया गया था और प्रत्यर्थी के विरुद्ध केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1964 (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् 'नियम' कहा गया है) के नियम 16 के अधीन अनुशासनिक कार्रवाई आरंभ की गई थी । अनुशासनिक प्राधिकारी ने तारीख 17 अक्तूबर, 2001 के ज्ञापन सं. पी1/4(2)/05/01-02 द्वारा प्रत्यर्थी के विरुद्ध परिनिंदा का दंडादेश अधिनिर्णीत किया ।

(ग) इसके पश्चात्, मुख्य महाडाकपाल, अहमदाबाद द्वारा नियमों के नियम 29 के अधीन इस मामले का पुनर्विलोकन किया गया था और उसने बरदोली डाकघर के अधीक्षक को प्रत्यर्थी के विरुद्ध नियमों के नियम 14 के अधीन अनुशासनिक कार्यवाहियां संस्थित करने और कार्यवाहियां पूरा होने पर मामले को अग्रिम कार्रवाई के लिए उसके पास भेजने का निदेश दिया । तदनुसार, प्रत्यर्थी को एक सूचना जारी की गई थी ।

(घ) प्रत्यर्थी ने इन कार्यवाहियों को चुनौती देते हुए अधिकरण, अहमदाबाद न्यायपीठ, अहमदाबाद के समक्ष 2004 का मूल आवेदन सं. 333 फाइल किया । अधिकरण ने तारीख 20 अप्रैल, 2005 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी की ओर से फाइल किया गया आवेदन मंजूर कर लिया । उक्त आदेश से व्यथित होकर, प्रस्तुत अपीलार्थियों ने अहमदाबाद स्थित गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष 2005 का विशेष सिविल आवेदन सं. 16575 फाइल किया । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा प्रस्तुत अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज कर दिया । उक्त आदेश और निर्णय से व्यथित होकर, प्रस्तुत अपीलार्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिका के रूप में यह अपील फाइल की है ।

3. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान अपर महासालिसिटर श्री ए. एस. चंधियोक को सुना गया । विद्वान काउन्सेल श्री विश्वजीत सिंह ने प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थिति फाइल की किन्तु सुनवाई के समय कोई भी उपस्थित नहीं हुआ ।

4. विद्वान अपर महासालिसिटर श्री चंधियोक ने हमारा ध्यान नियमों के नियम 29 के प्रति दिलाने के पश्चात् यह दलील दी कि अधिकरण का तारीख 29 मई, 2001 की अधिसूचना को अभिखंडित करना न्यायोचित नहीं था और उच्च न्यायालय ने भी उसकी पुष्टि करके गलती की है । उसने आगे यह दलील दी कि उच्च न्यायालय और अधिकरण को इस बात का अधिमूल्यन करना चाहिए था कि प्रश्नगत अधिसूचना मात्र इस कारण दूषित नहीं हो जाती है कि उसमें समय-सीमा के बारे में उपबंध नहीं है और उसके अनुसार, यद्यपि नियम 29(1)(vi) में यह उपबंध है कि ऐसे आदेश में वह समय विनिर्दिष्ट किया जाएगा जिसके भीतर खंड (v) को ध्यान में रखते हुए इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए जिसमें आदेश के पुनर्विलोकन के लिए छह मास की अधिकतम सीमा का उपबंध किया गया है, तथापि, अधिकरण और उच्च न्यायालय का अंतिम निष्कर्ष कायम नहीं रखा जा सकता है ।

5. चूंकि अधिकरण और उच्च न्यायालय ने नियम 29(1)(vi) और तारीख 29 मई, 2001 की अधिसूचना के निर्वचन के आधार पर प्रत्यर्थी के पक्ष में अनुतोष प्रदान किया है इसलिए उनके प्रति निर्देश करना वांछनीय है । वह अधिसूचना निम्नलिखित रूप में :–

"संचार मंत्रालय
(डाक विभाग)

नई दिल्ली, 29 मई, 2001

अधिसूचना

सं. का. आ. राष्ट्रपति, केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1965 के नियम 29 के उपनियम (1) के खंड (VI) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, यह विनिर्दिष्ट करते हैं कि डाक विभाग में सेवारत ऐसे किसी सरकारी सेवक की दशा में, जिसके लिए अपील प्राधिकारी प्रधान मुख्य महाडाकपाल या मुख्य महाडाकपाल (ज्येष्ठ प्रशासनिक ग्रेड के मुख्य महाडाकपाल से भिन्न)

के रूप में पदाभिहित प्राधिकारी से अधीनस्थ है वहां यथास्थिति, उक्त प्रधान मुख्य महाडाकपाल या उक्त मुख्य महाडाकपाल उक्त नियम 29 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने के प्रयोजनार्थ पुनरीक्षणीय प्राधिकारी होगा ।

[सं. सी-11011/1/ 2001-वी.पी.]

हस्ता.
(बी. पी. शर्मा)
निदेशक(वी.पी.)"

नियम 29 के सुसंगत खंड निम्नलिखित रूप में हैं :–

*"(1) इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी,

(i) राष्ट्रपति ; या

(ii) भारतीय लेखापरीक्षा और लेखा विभाग में सेवारत किसी सरकारी सेवक की दशा में नियंत्रक महालेखा परीक्षक ; या

(iii) डाक सेवा बोर्ड में या उसके अधीन सेवारत किसी सरकारी सेवक की दशा में सदस्य (कार्मिक) डाक सेवा और दूरसंचार बोर्ड में या उसके अधीन सेवारत सरकारी सेवक की दशा में सलाहकार (मानव संसाधन विकास), दूरसंचार विभाग ; या

(iv) किसी ऐसे विभाग या कार्यालय में (जो कि सचिवालय

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"(1) Notwithstanding anything contained in these rules,

(i) the President; or

(ii) The Comptroller and Auditor-General, in the case of a Government servant serving in the India Audit and Accounts Department; or

(iii) the Member (Personnel) Postal Services Board in the case of a Government servant serving in or under the Postal Services Board and Adviser (Human Resources Development), Department of Telecommunication) in the case of Government servant serving in or under the Telecommunication Board); or

(iv) the Head of a Department directly under the Central

या डाक और तार बोर्ड नहीं है) जो कि ऐसे विभागाध्यक्ष के नियंत्रणाधीन है, सेवारत किसी सरकारी सेवक की दशा में केन्द्रीय सरकार के प्रत्यक्षतः अधीन विभागाध्यक्ष; या

(v) पुनरीक्षित किए जाने के लिए प्रस्थापित आदेश की तारीख से छह मास के भीतर अपील प्राधिकारी ; या

(vi) राष्ट्रपति द्वारा इस निमित्त किसी साधारण या विशेष आदेश द्वारा और उतने समय के भीतर जितना ऐसे साधारण या विशेष आदेश में विनिर्दिष्ट किया जाए विनिर्दिष्ट कोई अन्य प्राधिकारी;

किसी भी समय स्वप्रेरणा से या अन्यथा किसी भी जांच के अभिलेख मंगा सकेगा और इन नियमों के अधीन किए गए आदेश को पुनरीक्षित कर सकेगा .... ।

(2) पुनरीक्षण के लिए कोई कार्यवाही तब तक आरंभ नहीं की जाएगी जब तक –

(i) अपील के लिए परिसीमा अवधि का अवसान नहीं हो जाता, या

Government in the case of a Government servant serving in a department or office (not being the Secretariat or the Posts and Telegraphs Board) under the control of such head of a Department; or

(v) the appellant authority, within six months of the date of order proposed to be (revised); or

(vi) any other authority specified in this behalf by the President by a general or special order, and within such time as may be specified in such general or special order;

may at any time either on his or its own motion or otherwise call for the records of any inquiry and revise any order made under these rules......

(2) No proceeding for revision shall be commenced until after –

(i) the expiry of the period of limitation for an appeal, or

(ii) अपील का निपटारा नहीं हो जाता, जहां ऐसी कोई अपील फाइल की गई है ।"

6. जैसा कि अधिकरण द्वारा ठीक ही मत व्यक्त किया गया है, नियम 29 के उक्त उप-नियम (1) में पुनरीक्षण प्राधिकारियों के 6 प्रवर्ग उपदर्शित किए गए हैं । यदि हम आगे परिशीलन करें तो यह दर्शित होता है कि जबकि उपखंड (i) से उपखंड (iv) में किसी अवधि का उल्लेख नहीं है किन्तु उपखंड (v) पुनरीक्षित किए जाने के लिए प्रस्थापित आदेश की तारीख से छह मास की अवधि के प्रति निर्देश किया गया है । चूंकि यह आदेश उपखंड (vi) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था इसलिए हमें इस बात की परीक्षा करनी है कि क्या उस अधिसूचना में जिसमें किसी प्राधिकारी को विनिर्दिष्ट किया गया है, किसी समय-सीमा का उल्लेख किया गया है या इसके अभाव में भी क्या उपखंड (v) के अधीन शक्ति का प्रयोग करके अधिकतम सीमा का फायदा लिया जा सकता है । विद्वान् अपर महासालिसिटर के अनुसार, संबंधित प्राधिकारी को किसी जांच के अभिलेख मंगाने और नियमों के अधीन किए गए किसी आदेश को पुनरीक्षित करने के लिए प्राधिकृत करने वाली अधिसूचना में अवधि को विनिर्दिष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है । हम उक्त दावे को निम्नलिखित कारणों से स्वीकार करने में असमर्थ हैं ।

7. यह उल्लेखनीय है कि ऐसे मामलों में जहां अपील प्राधिकारी अनुशासनिक प्राधिकारी के आदेश का पुनर्विलोकन करने की ईप्सा करता है, वहां इस प्रयोजनार्थ नियत अवधि उस आदेश की तारीख से छह मास है, जो कि पुनरीक्षित किया जाना प्रस्थापित है, । यह नियम 29 के उपनियम 1 के उपखंड (v) से स्पष्ट होता है । दूसरी ओर, खंड (vi) द्वारा ऐसी शक्तियां ऐसे अन्य प्राधिकारियों को प्रदत्त की गई हैं जो कि राष्ट्रपति द्वारा इस निमित्त किसी साधारण या विशेष आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएं और उक्त प्राधिकारी को उसमें विहित समय के भीतर कार्यवाहियां आरंभ करनी होती है । हालांकि नियम 29(1)(vi) में यह उपबंध है कि ऐसे आदेश में वह समय भी विनिर्दिष्ट होगा जिसके भीतर उस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, किन्तु तथ्य यह बचता है कि अधिसूचना में कोई समय-सीमा विहित नहीं की गई है । हमने पहले ही यह उल्लेख कर दिया

(ii) The disposal of the appeal, where any such appeal has been preferred."

है कि अधिसूचना में कोई अवधि उल्लिखित नहीं की गई है । यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती है कि खंड (v) के अनुसार अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अवधि न होने पर भी अन्य प्राधिकारी ऐसी शक्ति का प्रयोग कर सकता है । स्पष्टतः, उपखंड (v) अपील प्राधिकारी को लागू होता है और खंड (vi) राष्ट्रपति द्वारा उपखंड (vi) के अधीन उक्त प्राधिकारी द्वारा शक्ति का प्रयोग करने के लिए किसी साधारण या विशेष आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट किसी अन्य प्राधिकारी को लागू होता है । कोई विनिर्दिष्ट अवधि अवश्य होनी चाहिए और शक्ति का प्रयोग केवल इस प्रकार विहित अवधि के भीतर ही किया जा सकता है ।

8. चूंकि तारीख 29 मई, 2001 की अधिसूचना में ऐसी कोई समय सीमा विनिर्दिष्ट नहीं की गई है जिसके भीतर विनिर्दिष्ट प्राधिकारी द्वारा नियम 29(1)(vi) के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, इसलिए हमारा यह मत है कि ऐसी अधिसूचना नियम 29 के निबंधनों के अनुसार नहीं है और अधिकरण का उसे अभिखंडित करना पूर्णतः न्यायोचित था । उच्च न्यायालय ने भी अपीलार्थियों के विशेष आवेदन को खारिज करके और अधिसूचना को इस आधार पर अभिखंडित करते हुए कि उसमें समय सीमा विनिर्दिष्ट नहीं थी, उक्त निष्कर्ष को अभिपुष्ट करके सही किया है । परिणामस्वरूप, अपील असफल होती है और वह खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

[2012] 1 उम. नि. प. 98

चितरंजन दास

बनाम

उड़ीसा राज्य

4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी और न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (1947 का 2) – धारा 19 – अभियोजन की मंजूरी – लोक सेवक की सेवानिवृत्ति के पश्चात् संज्ञान – यदि लोक सेवक के सेवा में रहने के दौरान अभियोजन की मंजूरी देने से इनकार कर दिया जाता है तो उसे उसकी सेवानिवृत्ति के पश्चात् अभियोजित नहीं किया जा सकता है ।

प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी, जो कि उड़ीसा प्रशासनिक सेवा का एक सदस्य है, सुसंगत समय पर उड़ीसा सरकार के सिंचाई विभाग में उप सचिव के रूप में सेवा कर रहा था । सतर्कता विभाग के अधिकारियों ने न्यायालय से तलाशी वारंट अभिप्राप्त करने के पश्चात् उसके घर की तलाशी ली । इसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । अन्वेषण के दौरान यह पाया गया था कि अपीलार्थी के पास 5,58,752.40 रुपए की अननुपाती आस्तियां हैं । चूंकि अपीलार्थी को राज्य सरकार द्वारा सेवा से हटाया जा सकता था इसलिए सतर्कता विभाग ने अपीलार्थी के अभियोजन के लिए उसकी मंजूरी की ईप्सा की । राज्य सरकार ने मंजूरी देने से इनकार कर दिया और यह सलाह दी कि अपीलार्थी को अभियोजित करने का प्रस्ताव छोड़ देना चाहिए । अपीलार्थी ने तारीख 30 जून, 1997 को सेवा से अधिवर्षिता प्राप्त की । ऐसा प्रतीत होता कि अपीलार्थी की सेवानिवृत्ति के पश्चात्, सतर्कता विभाग ने उस पूर्ववर्ती आदेश पर पुनर्विचार करने के लिए लिखा जिसके द्वारा अपीलार्थी के अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार किया गया था । राज्य सरकार ने सतर्कता विभाग को उत्तर दिया और अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने से इनकार कर दिया क्योंकि उसकी राय में अपीलार्थी के विरुद्ध कोई प्रथमदृष्ट्या मामला नहीं था और उसके द्वारा धारित आस्तियां उसकी आय के ज्ञात स्रोत के अननुपात में नहीं थीं । तदनुसार, राज्य सरकार ने इस बात पर जोर दिया कि उन पूर्ववर्ती आदेशों पर पुनर्विचार

करने का कोई न्यायौचित्य नहीं है जिनके द्वारा अपीलार्थी के अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार किया गया था । सतर्कता विभाग ने, सरकार के उपर्युक्त इनकारी के बावजूद अपीलार्थी के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(ङ) के साथ पठित धारा 5(2) के अधीन आरोपपत्र फाइल किया जिसमें तारीख 1 जनवरी, 1980 और 31 दिसम्बर, 1985 के बीच 1,44,234.78 रुपए की अननुपाती आस्तियों के अर्जन का अभिकथन किया गया । उक्त आरोपपत्र भुवनेश्वर के विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) के समक्ष रखा गया था जिसने उपर्युक्त अपराध का संज्ञान लिया और अपीलार्थी के विरुद्ध अजमानतीय वारंट जारी कर दिए । अपीलार्थी ने, अपराध का संज्ञान लेने और गिरफ्तारी का अजमानतीय वारंट जारी किए जाने वाले उक्त आदेश से व्यथित होकर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका फाइल की जिसके द्वारा पूर्वोक्त आदेश को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर अभिखंडित करने की ईप्सा की गई कि राज्य सरकार की मंजूरी के बिना उसका अभियोजन विधि की दृष्टि से दूषित है किन्तु उच्च न्यायालय ने आवेदन का निपटारा कर दिया और अपीलार्थी को आरोप विरचित किए जाने के समय विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) के समक्ष इस दलील को उठाने की स्वतंत्रता दी । इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष रिहा करने के लिए आवेदन फाइल किया जिसने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर उसे खारिज कर दिया कि चूंकि अपीलार्थी सेवा से निवृत्त हो चुका था इसलिए पूर्व मंजूरी आवश्यक नहीं है । अपीलार्थी ने उपर्युक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जिसने आक्षेपित आदेश द्वारा उस चुनौती को नामंजूर कर दिया । उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – जब लोक सेवक उस तारीख को जब न्यायालय अपराध का संज्ञान करता है, लोक सेवक नहीं रहता है तब भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन मंजूरी की कोई आवश्यकता नहीं होती है । तथापि, ऐसे मामले में स्थिति भिन्न होती है जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 लागू होती है । (पैरा 6)

ऐसे किसी मामले में जिसमें सक्षम प्राधिकारी द्वारा, जबकि लोक सेवक सेवा में है, ईप्सित मंजूरी देने से इनकार कर दिया जाता है उसे इस बात के होते हुए भी सेवानिवृत्ति के पश्चात् अभियोजित नहीं किया जा सकता है कि लोक सेवक की सेवानिवृत्ति के पश्चात् भ्रष्टाचार निवारण

अधिनियम के अधीन अभियोजन के लिए किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं है । कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाने से संरक्षण काल्पनिक बन जाएगा । उस समय स्थिति भिन्न हो सकती है जब सक्षम प्राधिकारी द्वारा लोक सेवक की सेवानिवृत्ति के पश्चात् मंजूरी प्रदान करने से इनकार किया जाता है क्योंकि उस दशा में मंजूरी बिल्कुल भी आवश्यक नहीं होती है और इस संबंध में की गई कोई भी कार्यवाही निरर्थक कार्यवाही होगी । (पैरा 8)

मामले के तथ्य इतने प्रभावकारी हैं कि अपीलार्थी के अभियोजन से न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसार, अपीलार्थी के पास 5.58 लाख रुपए की अननुपाती आस्तियां थीं । तथापि, आरोपपत्र के अनुसार, अननुपाती आस्तियां का मूल्य केवल 1.44 लाख रुपए था । राज्य सरकार ने अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने से इनकार करते समय यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थी द्वारा धारित आस्तियां उसकी आय के ज्ञात स्रोत के अननुपात में नहीं हैं । (पैरा 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2004]	ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 2317 : **एन. भार्गवन पिल्लै (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा और एक अन्य** बनाम **केरल राज्य** ।	6,7,9

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 820.

2004 के दांडिक प्रकीर्ण मामला सं. 1499 में उड़ीसा उच्च न्यायालय के तारीख 11 जुलाई, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री विनोद भगत

प्रत्यर्थी की ओर से श्री सुरेश चन्द्र त्रिपाठी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद ने दिया ।

न्या. प्रसाद – अनावश्यक ब्यौरों के बिना, वे तथ्य जिनके कारण प्रस्तुत अपील उद्भूत हुई है, ये हैं कि अपीलार्थी, जो कि उड़ीसा प्रशासनिक सेवा का एक सदस्य है, सुसंगत समय पर उड़ीसा सरकार के सिंचाई विभाग में उप सचिव के रूप में सेवा कर रहा था । सतर्कता विभाग के अधिकारियों ने न्यायालय से तलाशी वारंट अभिप्राप्त करने के पश्चात् तारीख 17 मार्च, 1992 को उसके घर की तलाशी ली । इसके

परिणामस्वरूप अपीलार्थी के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । अन्वेषण के दौरान यह पाया गया था कि अपीलार्थी के पास 5,58,752.40 रुपए की अननुपाती आस्तियां हैं । चूंकि अपीलार्थी को राज्य सरकार द्वारा सेवा से हटाया जा सकता था इसलिए सतर्कता विभाग ने अपीलार्थी के अभियोजन के लिए उसकी मंजूरी की ईप्सा की । राज्य सरकार ने तारीख 13 मई, 1997 के अपने पत्र द्वारा मंजूरी देने से इनकार कर दिया और यह सलाह दी कि अपीलार्थी को अभियोजित करने का प्रस्ताव छोड़ देना चाहिए । अपीलार्थी ने तारीख 30 जून, 1997 को सेवा से अधिवर्षिता प्राप्त की । ऐसा प्रतीत होता कि अपीलार्थी की सेवानिवृत्ति के पश्चात्, सतर्कता विभाग ने तारीख 25 मार्च, 1998 को उस पूर्ववर्ती आदेश पर पुनर्विचार करने के लिए लिखा जिसके द्वारा अपीलार्थी के अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार किया गया था । राज्य सरकार ने तारीख 31 जुलाई, 1998 के अपने पत्र द्वारा सतर्कता विभाग को उत्तर दिया और अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने से इनकार कर दिया क्योंकि उसकी राय में अपीलार्थी के विरुद्ध कोई प्रथमदृष्ट्या मामला नहीं था और उसके द्वारा धारित आस्तियां उसकी आय के ज्ञात स्रोत के अननुपात में नहीं थीं । तदनुसार, राज्य सरकार ने इस बात पर जोर दिया कि उन पूर्ववर्ती आदेशों पर पुनर्विचार करने का कोई न्यायौचित्य नहीं है जिनके द्वारा अपीलार्थी के अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार किया गया था । सतर्कता विभाग ने, सरकार के उपर्युक्त इनकारी के बावजूद तारीख 10 सितम्बर, 1998 को अपीलार्थी के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(ङ) के साथ पठित धारा 5(2) के अधीन आरोपपत्र फाइल किया जिसमें तारीख 1 जनवरी, 1980 और 31 दिसम्बर, 1985 के बीच 1,44,234.78 रुपए की अननुपाती आस्तियों के अर्जन का अभिकथन किया गया । उक्त आरोपपत्र भुवनेश्वर के विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) के समक्ष रखा गया था जिसने तारीख 2 अगस्त, 1999 के अपने आदेश द्वारा उपर्युक्त अपराध का संज्ञान लिया और अपीलार्थी के विरुद्ध अजमानतीय वारंट जारी कर दिए ।

2. अपीलार्थी ने, अपराध का संज्ञान लेने और गिरफ्तारी का अजमानतीय वारंट जारी किए जाने वाले उक्त आदेश से व्यथित होकर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका फाइल की जिसके द्वारा पूर्वोक्त आदेश को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर अभिखंडित करने की ईप्सा की गई कि राज्य सरकार की मंजूरी के बिना उसका

अभियोजन विधि की दृष्टि से दूषित है किन्तु उच्च न्यायालय ने तारीख 22 सितम्बर, 2003 के अपने आदेश द्वारा आवेदन का निपटारा कर दिया और अपीलार्थी को आरोप विरचित किए जाने के समय विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) के समक्ष इस दलील को उठाने की स्वतंत्रता दी ।

3. इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष रिहा करने के लिए आवेदन फाइल किया जिसने तारीख 9 जून, 2004 के आदेश द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर उसे खारिज कर दिया कि चूंकि अपीलार्थी सेवा से निवृत्त हो चुका था इसलिए पूर्व मंजूरी आवश्यक नहीं है । अपीलार्थी ने उपर्युक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जिसने आक्षेपित आदेश द्वारा उस चुनौती को नामंजूर कर दिया और ऐसा करते समय निम्न प्रकार मताभिव्यक्ति की :–

> "6. इस मामले में अंतर्वलित तथ्यों और परिस्थितियों की रूपरेखा और आक्षेपित आदेश की तुलना में मंजूरी के मामले में विधि की स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह न्यायालय उस आदेश में कोई अवैधता नहीं पाता है जिससे कि आक्षेपित आदेश को अभिखंडित करने की दृष्टि से अंतर्निहित शक्ति का अवलंब लिया जा सके । तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस बारे में विवादित प्रश्न की परीक्षा कि क्या प्रस्तुत मामले में मंजूरी आदेश आवश्यक है और क्या राज्य सरकार ने उससे इनकार कर दिया था और उसके परिणाम क्या हैं, विचारण के समय की जा सकती है यदि आक्षेपित आदेश द्वारा अभियुक्त-याची का आवेदन नामंजूर किए जाने के बावजूद भी उसके द्वारा उसे उठाया जाता है चूंकि इस न्यायालय द्वारा की गई पूर्वगामी चर्चा किसी भी रीति में अभियुक्त के उस अधिकार का पालन करने में तब हस्तक्षेप नहीं करती यदि विचारण के समय विधिक रूप से ऐसी सलाह दी जाती है ।"

4. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले श्री वीनू भगत ने यह दलील दी कि चूंकि राज्य सरकार ने अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने से इनकार कर दिया था और इसके पश्चात् इस विनिश्चय पर पुनर्विचार करने से इनकार कर दिया था और इसके अलावा अपीलार्थी के अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने से इनकार कर दिया था इसलिए उसका अभियोजन अवैध और न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है ।

5. तथापि, प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले श्री एस. सी.

त्रिपाठी ने यह दलील दी है कि आरोपपत्र अपीलार्थी की सेवानिवृत्ति के पश्चात् फाइल किया गया था और वास्तव में उस आधार पर अपराध का संज्ञान किया गया था और उसके पश्चात् आदेशिका जारी की गई थी और इसलिए अपीलार्थी मंजूरी की कमी के आधार पर अपने अभियोजन को चुनौती नहीं दे सकता है । उसके अनुसार, चूंकि अपीलार्थी उस तारीख को जब न्यायालय ने अपराध का संज्ञान किया और आदेशिका जारी की, लोक सेवक नहीं रहा था इसलिए उसके अभियोजन के लिए मंजूरी बिल्कुल आवश्यक नहीं है ।

6. हमें श्री त्रिपाठी की इस व्यापक दलील को स्वीकार करने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है कि जब लोक सेवक उस तारीख को जब न्यायालय अपराध का संज्ञान करता है, लोक सेवक नहीं रहता है तब भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन मंजूरी की कोई आवश्यकता नहीं होती है । तथापि, ऐसे मामले में स्थिति भिन्न होती है जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 लागू होती है । वास्तव में, दी गई दलील को **एन. भार्गवन पिल्लै (मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा और एक अन्य** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय से समर्थन मिलता है जिसमें निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "8. अतः, सही विधिक स्थिति यह है कि पुराने अधिनियम या नए अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए अभियोजित किया जाने वाला अभियुक्त तब मंजूरी की कमी के आधार पर किसी अवमुक्ति का दावा नहीं कर सकता है, यदि वह उस तारीख को जब न्यायालय उक्त अपराधों का संज्ञान करता है, लोक सेवक नहीं रहता है । किन्तु ऐसे मामलों में स्थिति भिन्न होती है जहां संहिता की धारा 197 लागू होती है ।"

7. तथापि, प्रस्तुत मामले में हमारे समक्ष स्थिति ऐसी है जिसमें सतर्कता विभाग ने राज्य सरकार से तब मंजूरी प्रदान करने के लिए कहा जब प्रस्तुत अपीलार्थी सेवा में था, जिससे उसने इनकार कर दिया था । सतर्कता विभाग ने न केवल राज्य सरकार से विनिश्चय पर पुनर्विचार करने की ईप्सा की और वह प्रार्थना भी नामंजूर कर दी गई थी बल्कि वास्तव में राज्य सरकार ने इस बात पर जोर दिया कि अपीलार्थी के विरुद्ध कोई प्रथमदृष्ट्या मामला नहीं है और उसके द्वारा धारित आस्तियां उसकी आय

---

[1] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 2317.

के ज्ञात स्रोतों के अननुपात में नहीं थीं । श्री त्रिपाठी ने यह उल्लेख किया कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 19 के अधीन तब मंजूरी प्रदान करने से इनकार करना महत्वपूर्ण नहीं है जबकि अपीलार्थी सेवा में था, क्योंकि निर्विवाद रूप से अपीलार्थी की सेवानिवृत्ति के पश्चात् ही उसके विरुद्ध आरोपपत्र फाइल किया गया था और इसके अलावा न्यायालय ने अपराध का संज्ञान किया था और आदेशिका जारी की थी । उसने यह उल्लेख किया कि **एन. भार्गवन पिल्लै** (उपर्युक्त) वाले मामले में ईप्सित मंजूरी देने से इनकार कर दिया गया था किन्तु इस न्यायालय ने उसमें कोई अवैधता नहीं पाई थी ।

8. हम श्री त्रिपाठी के निवेदन में कोई सार नहीं पाते हैं और अवलंबित निर्णय स्पष्ट रूप से प्रभेद्य है । मंजूरी एक ऐसी युक्ति है जिसके बारे में विधि में लोक सेवकों को तंग करने वाले और तुच्छ अभियोजन से संरक्षित करने के लिए उपबंध किया गया है । यह उन्हें भय या पक्षपात के बिना अपने कर्तव्य का पालन करने और बेईमान तत्वों के दबाव में न झुकने की स्वतंत्रता और स्वाधीनता देना है । यह मंजूरी प्रदान करने वाले प्राधिकारी के हाथों में एक ऐसा हथियार है जो निर्दोष लोक सेवकों को अनावश्यक अभियोजन से संरक्षित करता है किन्तु वह दोषी सेवकों को बचाने के लिए नहीं है । प्रस्तुत मामले में जबकि अपीलार्थी सेवा में था, उसके अभियोजन के लिए मांगी गई मंजूरी से राज्य सरकार ने इनकार कर दिया था । सतर्कता विभाग ने उसे चुनौती नहीं दी थी और अपीलार्थी को सेवा से निवृत्त होने दिया । सेवानिवृत्ति के पश्चात्, सतर्कता विभाग ने राज्य सरकार से अपने विनिश्चय पर पुनर्विचार करने का अनुरोध किया जिससे न केवल इनकार कर दिया गया था बल्कि राज्य सरकार ने ऐसा करते समय स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया था कि अपीलार्थी के विरुद्ध अननुपाती आस्तियां रखने का कोई प्रथमदृष्ट्या मामला साबित नहीं होता है । इस बात के होते हुए भी सतर्कता विभाग ने अपीलार्थी की सेवानिवृत्ति के पश्चात् आरोपपत्र फाइल करने का विकल्प अपनाया और विशेष न्यायाधीश ने उसका संज्ञान किया और आदेशिका जारी की । हमारी यह राय है कि ऐसे किसी मामले में जिसमें सक्षम प्राधिकारी द्वारा, जबकि लोक सेवक सेवा में है, ईप्सित मंजूरी देने से इनकार कर दिया जाता है उसे इस बात के होते हुए भी सेवानिवृत्ति के पश्चात् अभियोजित नहीं किया जा सकता है कि लोक सेवक की सेवानिवृत्ति के पश्चात् भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अभियोजन के लिए किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं

है । कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाने से संरक्षण काल्पनिक बन जाएगा । उस समय स्थिति भिन्न हो सकती है जब सक्षम प्राधिकारी द्वारा लोक सेवक की सेवानिवृत्ति के पश्चात् मंजूरी प्रदान करने से इनकार किया जाता है क्योंकि उस दशा में मंजूरी बिल्कुल भी आवश्यक नहीं होती है और इस संबंध में की गई कोई भी कार्यवाही निरर्थक कार्यवाही होगी ।

9. अब हम प्रत्यर्थियों द्वारा अवलंब लिए गए **एन. भार्गवन पिल्लै** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय पर विचार करेंगे । यह सही है कि उक्त निर्णय के पैरा 5 में यह मत व्यक्त किया गया है कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें ईप्सित मंजूरी देने से इनकार कर दिया गया था किन्तु इस पैराग्राफ से यह स्पष्ट नहीं है कि क्या इसकी ईप्सा लोक सेवक की सेवानिवृत्ति के पूर्व या उसके पश्चात् की गई थी । तथापि, निर्णय को समग्र रूप से पढ़ने पर यह प्रकट होता है कि इस मामले में लोक सेवक के विरुद्ध आरोपपत्र सेवानिवृत्ति के पश्चात् फाइल किया गया था । इसके अलावा, इसके पश्चात् अभियोजन के लिए मंजूरी की ईप्सा की गई थी और उससे इनकार कर दिया गया था । यह उक्त निर्णय में तथ्यों के निम्नलिखित वर्णन से स्पष्ट हो जाएगा :–

> "3....निगम के प्रबंध निदेशक ने सतर्कता निदेशक (अन्वेषण) को प्रदर्श पी-1 रिपोर्ट की एक प्रति भेजते हुए पत्र लिखा । सतर्कता निदेशक (अन्वेषण) ने मामला दर्ज करने की मंजूरी दे दी । इस निदेश के आधार पर तत्कालीन पुलिस उपाधीक्षक, सतर्कता, कोल्लम (अभि. सा. 10) ने प्रदर्श पी-39 के अनुसार एक मामला रजिस्ट्रीकृत किया । उसने अन्वेषण का कार्य कोल्लम सतर्कता एकक-I के निरीक्षक (अभि. सा.11) को सौंपा जिसने अन्वेषण किया और अपने उच्चतर प्राधिकारियों को एक रिपोर्ट भेजी । इसी बीच, अभियुक्त तारीख 28 फरवरी, 1992 को सेवानिवृत्त हो गया । चूंकि वह सेवानिवृत्त हो चुका था इसलिए अभियोजन के लिए मंजूरी लेना अनावश्यक हो गया । मामला नए स्थापित पथनमथिट्टा सतर्कता एकक को अंतरित कर दिया गया । अभि. सा. 12, पुलिस उपाधीक्षक, सतर्कता, पथनमथिट्टा ने भी, जिसे इस मामले का भारसाधक बनाया गया था, अभिलेख का सत्यापन किया और आरोपपत्र फाइल किया ।"

(रेखांकन हमारे द्वारा बल देने के लिए किया गया)

अतः, अवलंबित मामले में अभियोजन के लिए मंजूरी आवश्यक नहीं थी

और इसलिए इससे इनकारी का लोक सेवक के विचारण से कोई संबंध नहीं है । तथापि, प्रस्तुत मामले में मंजूरी की ईप्सा और उससे इनकार तब किया गया था जब अपीलार्थी सेवा में था । अतः, इस निर्णय से प्रत्यर्थियों की दलील को कोई समर्थन नहीं मिलता है और वह स्पष्ट रूप से प्रभेद्य है ।

10. अन्यथा भी, मामले के तथ्य इतने प्रभावकारी हैं कि हमारी यह राय है कि अपीलार्थी का अभियोजन न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसार, अपीलार्थी के पास 5.58 लाख रुपए की अननुपाती आस्तियां थीं । तथापि, आरोपपत्र के अनुसार, अननुपाती आस्तियों का मूल्य केवल 1.44 लाख रुपए था । राज्य सरकार ने अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने से इनकार करते समय यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थी द्वारा धारित आस्तियां उसकी आय के ज्ञात स्रोत के अननुपात में नहीं हैं ।

11. इसके अलावा हमारी यह राय है कि चूंकि इसमें कोई विवादग्रस्त प्रश्न अंतर्वलित नहीं था इसलिए उच्च न्यायालय को इस बारे में मताभिव्यक्ति करने के बजाय कि इस बात का विनिश्चय विचारण न्यायालय द्वारा किया जाना है कि क्या प्रस्तुत मामले में मंजूरी आदेश आवश्यक है और क्या राज्य सरकार ने उससे इनकार कर दिया था और उसके परिणाम क्या होंगे, उन प्रश्नों का विनिश्चय स्वयं करना चाहिए था । चूंकि तथ्यों के संबंध में कोई विवाद नहीं था इसलिए उच्च न्यायालय ने इन प्रश्नों को विनिश्चित न करके गलती की थी ।

12. परिणामस्वरूप, हम यह अपील मंजूर करते हैं, उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हैं और भुवनेश्वर के विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) के न्यायालय में लंबित 1999 के टी. आर. सं. 113 में अपीलार्थी के अभियोजन को अभिखंडित करते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

झारखंड राज्य और अन्य

बनाम

अशोक कुमार डांगी और अन्य

4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी और न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 16 [सपठित झारखंड प्राथमिक अध्यापक नियुक्ति नियम, 2002 का नियम 2(ख) (वर्ष 2003 में यथा-संशोधित)] – प्राथमिक विद्यालय अध्यापक के पदों पर नियुक्ति – व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापक के रूप में नियुक्ति के लिए पात्रता – उच्च न्यायालय द्वारा किसी सरकारी नीति के अभाव में प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के 5 प्रतिशत पद व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों में से भरने का निदेश देना नीति विरचित करने की कोटि में आएगा और नीति संबंधी विषय में ऐसा कोई निदेश देना अनुचित है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित झारखंड प्राथमिक विद्यालय नियुक्ति नियम, 2002 का नियम 2(ख) (2003 में यथा-संशोधित)] – नया अभिवाक् – राज्य सरकार को प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के 5 प्रतिशत पद व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों में से भरने संबंधी निदेश को चुनौती – व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा यह अभिवाक् करना कि संशोधित नियम 2(ख) इससे पूर्व विज्ञापित पदों को लागू नहीं होगा – चूंकि राज्य ने संशोधित उपबंध के अनुरूप विज्ञापन का शुद्धिपत्र जारी कर दिया था और प्रत्यर्थियों ने इस पर कोई आक्षेप किए बिना चयन प्रक्रिया में भाग लिया था इसलिए प्रथम बार उच्चतम न्यायालय में उठाए गए उनके अभिवाक् पर विचार नहीं किया जा सकता है ।

झारखंड के राज्यपाल ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए झारखंड प्राथमिक अध्यापक नियुक्ति नियम (झारखंड प्राइमरी टीचर्स अपायंटमेंट रूल्स), 2002 विरचित किए थे जिनमें प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों की नियुक्ति के लिए उपबंध किए गए थे । नियमों के नियम 2(ख) में "प्रशिक्षित" पद की परिभाषा दी गई है । झारखंड लोक सेवा आयोग ने झारखंड प्राथमिक विद्यालय नियुक्ति नियम, 2002 के नियम 3 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए सरकारी

प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों की रिक्तियां भरने के लिए आवेदन आमंत्रित किए थे । बाद में झारखंड प्राथमिक विद्यालय नियुक्ति (संशोधन) नियम, 2003 द्वारा नियमों के नियम 2(ख) के खंड (iii) में "केवल व्यायाम अध्यापकों के लिए शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र/शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा" विहित करते हुए संशोधन किया गया । परिणामस्वरूप, आयोग ने संशोधित नियम के अनुरूप एक शुद्धिपत्र जारी कर दिया और यह उपबंध किया कि शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र/शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा धारण करने वाले अभ्यर्थी केवल व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के पद के लिए नियुक्ति के पात्र समझे जाएंगे । उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की गई थी जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ परमादेश प्रकृति की ऐसी रिट जारी करने की प्रार्थना की गई थी जिसमें राज्य सरकार और उसके कृत्यकारियों को यह आदिष्ट किया जाए कि शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र या शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा धारण करने वाले अभ्यर्थियों के मामलों में प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की समस्त रिक्तियों पर विचार किया जाना चाहिए । उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने वह रिट याचिका खारिज कर दी । तथापि, रिट याचियों द्वारा फाइल की गई अपीलों में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने बिहार राज्य की नीति को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की कुल रिक्तियों की 5 प्रतिशत रिक्तियों पर व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति करने का निदेश दिया । इससे व्यथित होकर, राज्य सरकार ने उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सुस्थापित है कि राज्य सरकार को नीति बनाने की स्वाधीनता और स्वतंत्रता होनी चाहिए । इसके अलावा, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि न्यायालय के पास प्रतिस्पर्धी दावों और परस्पर-विरोधी हितों पर कार्यवाही करने के लिए साधन नहीं हैं । प्रायः, न्यायालयों के पास इस बात का विनिश्चय करने के लिए समाधानकारी और प्रभावी साधन नहीं होते हैं कि कई प्रतिस्पर्धी अनुकल्पों में कौन सा अनुकल्प मामले की परिस्थितियों में सर्वोत्तम है । यह प्रश्न आवश्यक रूप से राज्य द्वारा विनिश्चिय किया जाने वाला नीति संबंधी प्रश्न है कि प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के कितने पद व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से भरे जाने हैं । नीति तैयार करते समय विभिन्न जानकारी अपेक्षित होती है और न्यायालय के लिए सरकार को कोई ऐसी विशिष्ट नीति, जो वह उपयुक्त या उचित समझे, अंगीकृत करने के लिए निदेश देना या

संक्षेपीकृत करना न तो वांछनीय और न ही उपयुक्त है । प्रस्तुत मामले में, अध्यापन में प्रशिक्षित अभ्यर्थियों का यह दावा है कि प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के पद उनमें से भरे जाने चाहिएं और व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों के संबंध में केवल व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए विचार किया जाना चाहिए क्योंकि शिक्षा में किसी प्रशिक्षण के अभाव में वे प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण प्रदान करने के योग्य नहीं हैं जबकि व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों की दलील यह है कि उनके संबंध में दोनों पदों पर नियुक्ति के लिए विचार किया जाना चाहिए । इन प्रतिस्पर्धी दावों पर नीति बनाने वालों द्वारा विचार करने की आवश्यकता है । इसके अलावा, न्यायालयों के पास प्राथमिक विद्यालयों की संख्या और उन संसाधनों के संबंध में आंकड़े नहीं हैं जो सरकार व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यवस्था करने और उनकी आवश्यकता पर खर्च कर सकती है । ऐसी स्थिति में, नीति के विषय में कोई निदेश देना अनावश्यक है । (पैरा 11)

उच्च न्यायालय ने स्वयं यह पाया कि झारखंड राज्य में व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से भरे जाने के लिए अध्यापकों के पदों की संख्या के संबंध में कोई नीति नहीं है । बिहार राज्य में नियुक्ति को शासित करने वाला अधिनियम और नियम झारखंड राज्य में की जाने वाली नियुक्ति को शासित नहीं करते हैं और उन्हें नियमों के नियम 16 द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से निरसित कर दिया गया है । इसके अलावा, दो राज्यों की आवश्यकता एक जैसी नहीं हो सकती और इसलिए झारखंड राज्य के लिए यह आवश्यक था कि वह इस संबंध में नीति विरचित करे । सकृतदर्शने, उच्च न्यायालय ने बिहार राज्य की नीति का अवलंब लेकर और प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के 5 प्रतिशत पदों को व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से भरे जाने का निदेश देकर गलती की है । प्रस्तुत मामले में, न तो झारखंड राज्य के किसी कानून या नियम या नीति में प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के कतिपय प्रतिशत पद शारीरिक शिक्षा में प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से भरे जाने के लिए उपबंध किया गया है । राज्य सरकार को व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों की प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के रूप में नियुक्ति करने का कोई निदेश राज्य के किसी नियम या उसकी नीति से नहीं निकलता है और इसलिए उनके पक्ष में आरक्षण करने का निदेश देना नीति बनाने की कोटि में आएगा और इसे राज्य सरकार में निहित विवेकाधिकार के प्रयोग में असफलता नहीं कहा जा सकता है । (पैरा 12 और 13)

प्रस्तुत अपीलों में रिट याचियों ने प्रथम बार यह दलील देने का प्रयास

किया है कि तारीख 6 मार्च, 2003 को नियम 2(ख)(iii) में किया गया संशोधन, जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध किया गया था कि शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र या शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा धारण करने वाले अभ्यर्थी केवल व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए पात्र होंगे, भूतलक्षी रूप से लागू नहीं किया जा सकता है और उनके मामले असंशोधित नियमों द्वारा शासित होंगे । यह उल्लेख किया गया है कि यह संशोधन भूतलक्षी प्रभाव से नहीं किया गया है । न्यायालय प्रस्तुत अपील में इस कारण इस प्रश्न की परीक्षा नहीं करना चाहता है कि नियमों में किए गए संशोधन के आधार पर आयोग ने शुद्धिपत्र जारी किया था और शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र या शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा की अर्हता धारण करने वाले रिट याचियों जैसे व्यक्तियों की अभ्यर्थिता को व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए ही सीमित किया था । उसने उस आधार पर परीक्षा आयोजित की और रिट याचियों ने उसे कोई चुनौती दिए बिना चयन प्रक्रिया में भाग लिया और वे कोई शिकायत किए बिना परीक्षा में बैठे थे । परिणाम प्रकाशित किए जाने और उनकी अभ्यर्थिता के संबंध में प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की समस्त रिक्तियों के लिए विचार न किए जाने के पश्चात् उन्होंने पूर्वोक्त अनुतोष के लिए रिट याचिका फाइल करने का विकल्प अपनाया । रिट याचियों की अभ्यर्थिता के संबंध में प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की समस्त रिक्तियों के लिए विचार करने का कोई निदेश देना स्थापित मामले को अस्थिर कर देगा और इसके परिणामस्वरूप कई प्रतिक्रियाएं होंगी जिनसे अनेक व्यक्तियों की नियुक्ति पर प्रभाव पड़ेगा । (पैरा 17)

प्रभेदित निर्णय

		पैरा
[1986]	[1986] 3 उम. नि. प. 986 = (1986) 2 एस. सी. सी. 679 : **भारत का नियंत्रक महालेखा परीक्षक, ज्ञान प्रकाश, नई दिल्ली और एक अन्य** बनाम **के. एस. जगन्नाथन और अन्य ;**	9,13
[1976]	[1976] 3 उम. नि. प. 744 = (1976) 3 एस. सी. सी. 242 : **पंजाब राज्य और अन्य** बनाम **बलबीर सिंह और अन्य ।**	10,14

अवलंबित निर्णय

[1998]	(1998) 4 एस. सी. सी. 202 : **राजस्थान लोक सेवा आयोग** बनाम **चानन राम** ।	18

निर्दिष्ट निर्णय

[1999]	(1999) 8 एस. सी. सी. 16 : **महाराजा चिन्तामणि सरन नाथ सहदेव** बनाम **बिहार राज्य** ;	15
[1999]	(1999) 1 एस. सी. सी. 544 : **गोपाल कृष्ण रथ** बनाम **एम. ए. ए. बेग** ;	15
[1990]	(1990) 3 एस. सी. सी. 157 : **एन. टी. देविन कट्टी** बनाम **कर्नाटक लोक सेवा आयोग** ;	15
[1983]	(1983) 3 एस. सी. सी. 33 : **ए. ए. काल्टन** बनाम **शिक्षा निदेशक** ।	15

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल अपील सं. 8118-8121, 8122, 8123-24.

2004 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 161 और 87 तथा 2004 की रिट याचिका सं. 3889 और 3100 में रांची स्थित झारखंड उच्च न्यायालय के तारीख 23 दिसम्बर, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री गोपाल प्रसाद कृष्णानंद पांडे, और रतन कुमार चौधरी

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री सुनील कुमार, ज्येष्ठ अधिवक्ता, अजीत कुमार, अरुण कुमार बेरीवाल, अनिल कुमार टंडाले, ए. पी. सहारय्या, संदीप नगोरा, हिमांशु शेखर, पवन कुमार मिश्रा और (सुश्री) कुमुद लता दास

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद ने दिया ।

न्या. प्रसाद – अपीलार्थी, झारखंड राज्य और उसके कृत्यकारियों ने,

2004 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 161 और सदृश अपीलों में पारित झारखंड उच्च न्यायालय के तारीख 23 दिसम्बर, 2005 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय से विशेष इजाजत लेकर ये अपीलें फाइल की हैं ।

2. अनावश्यक ब्यौरों के बिना वे तथ्य जिनसे प्रस्तुत अपीलें उद्भूत हुई हैं, ये हैं कि झारखंड के राज्यपाल ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए झारखंड प्राथमिक अध्यापक नियुक्ति नियम (झारखंड प्राइमरी टीचर्स अपायंटमेंट रूल्स), 2002 (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "नियम" कहा गया है) विरचित किए थे जिनमें प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों की नियुक्ति के लिए उपबंध किए गए थे । नियमों के नियम 2(ख) में "प्रशिक्षित" पद की परिभाषा दी गई है, जो निम्नलिखित रूप में है :–

*"2. परिभाषाएं –

* * * * * *

(ख) 'प्रशिक्षित' से वे व्यक्ति अभिप्रेत हैं जिन्होंने मान्यताप्राप्त संस्था से निम्नलिखित प्रशिक्षण प्राप्त किया है और उत्तीर्ण किया है -

(i) दो वर्षीय अध्यापक प्रशिक्षण ; या

(ii) बी.एड./शिक्षा में डिप्लोमा/अध्यापन में डिप्लोमा ; या

(iii) शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र/शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा

* * * * * *

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"2. Definitions –

* * * * * *

(b) 'Trained' means those persons who have received the following training from the recognized institution and has passed –

(i) Two years Teachers training ; or

(ii) B.Ed/Dip. In Ed./Dip. In Teaching; and

(iii) C. P. Ed-/Dip. P. Ed.

* * * * * *

3. नियमों के नियम 3 द्वारा झारखंड लोक सेवा आयोग (जिसे इसमें इसके पश्चात् "आयोग" कहा गया है) को प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के पदों को भरने के लिए भारत के ऐसे नागरिकों से आवेदन आमंत्रित करने के लिए विज्ञापन प्रकाशित करने की शक्ति प्रदत्त की गई है जिन्होंने मैट्रिकुलेशन या उसके समतुल्य परीक्षा उत्तीर्ण की है और जो नियमों के नियम 2(ख) में दी गई परिभाषा के अनुसार प्रशिक्षित हैं । आयोग ने सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों की रिक्तियों को भरने के लिए आवेदन आमंत्रित करने के लिए नियमों के नियम 3 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए तारीख 24 अगस्त, 2002 को एक विज्ञापन जारी किया । उस विज्ञापन में विहित पात्रता कसौटी निम्नलिखित रूप में है :–

"आवेदक –

(क) भारत का नागरिक होना चाहिए ;

(ख) उसने मैट्रिक या समतुल्य परीक्षा उत्तीर्ण की हो ; और

(ग) उसके पास दो वर्षीय अध्यापक प्रशिक्षण या बी.एड./शिक्षा में डिप्लोमा/अध्यापन में डिप्लोमा या शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र या शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा हो ।"

नियमों के नियम 2(ख) में तारीख 6 मार्च, 2003 को प्रकाशित झारखंड प्राथमिक विद्यालय नियुक्ति संशोधन नियम, 2003 द्वारा संशोधन किया गया था जिसके द्वारा नियमों के नियम 2(ख)(iii) के पश्चात् "केवल व्यायाम अध्यापको के लिए" शब्द अंतःस्थापित किए गए थे । नियमों का नियम 2(ख) उसके संशोधन के पश्चात् निम्नलिखित रूप में है :–

*"2. परिभाषाएं –

* * * * * *

(ख) 'प्रशिक्षित' से वे व्यक्ति अभिप्रेत हैं जिन्होंने मान्यताप्राप्त संस्था से निम्नलिखित प्रशिक्षण प्राप्त किया है और उत्तीर्ण किया है –

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"2. Definitions –

* * * * * *

(b) 'Trained' means those persons who have received the following training from the recognized institution and has passed –

(i) दो वर्षीय अध्यापक प्रशिक्षण ; या

(ii) बी.एड. /शिक्षा में डिप्लोमा/अध्यापन में डिप्लोमा ; या

(iii) केवल व्यायाम अध्यापकों के लिए शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र/शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा ।"

आयोग ने, नियमों में किए गए पूर्वोक्त संशोधन के प्रकाश में तारीख 22 अप्रैल, 2003 को शुद्धिपत्र प्रकाशित किया और उसमें यह उपबंध किया कि वे अभ्यर्थी, जिनके पास शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र/शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा है, केवल व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के पद पर रिक्तियों के लिए नियुक्ति के पात्र समझे जाएंगे ।

4. आयोग ने पात्र अभ्यर्थियों की परीक्षा आयोजित की जिसमें रिट याची बैठे । उनका परिणाम प्रकाशित नहीं किया गया था और उनकी अभ्यर्थिता केवल व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के पदों तक सीमित रखी गई थी । उन्होंने इससे व्यथित होकर झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ परमादेश प्रकृति की ऐसी रिट जारी करने की प्रार्थना की गई थी जिसमें राज्य सरकार और उसके कृत्यकारियों को यह आदेश किया गया हो कि वे उनके मामले पर प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की समस्त रिक्तियों पर नियुक्तियों के लिए विचार करे और यह निदेश देने की भी प्रार्थना की गई कि उनकी अभ्यर्थिता को व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के रिक्त पदों तक ही निर्बंधित न करे ।

5. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 2 दिसम्बर, 2003 के अपने निर्णय द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह मत व्यक्त करते हुए वह रिट याचिका खारिज कर दी कि रिट याचियों के पास अपेक्षित अर्हताएं नहीं हैं और इसलिए वे प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के पद पर नियुक्तियों के लिए विचार किए जाने के पात्र नहीं हैं । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने ऐसा करते समय निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

(i) Two years Teachers training ; or

(ii) B.Ed/Dip. In Ed./Dip. In Teaching; and

(iii) C. .P. Ed./Dip. P. Ed. only for the Physical Trained Teachers."

"स्वीकृत रूप से, वर्तमान मामले में याचियों ने व्यायाम प्रशिक्षण पाठ्यक्रम अभिप्राप्त किया जो कि व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापक के पद के लिए अपेक्षित है । प्राथमिक अध्यापक के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अभ्यर्थी के पास एक प्रशिक्षित अध्यापक की अर्हता होनी चाहिए, अर्थात्, बी.एड./शिक्षा में डिप्लोमा/अध्यापन में डिप्लोमा । अतः, मेरी सुविचारित राय में, याचियों के पास प्राथमिक अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए अपेक्षित अर्हता नहीं है ।"

6. रिट याचियों ने इससे व्यथित होकर अपीलें फाइल कीं और उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 23 दिसम्बर, 2005 के आक्षेपित आदेश द्वारा निम्नलिखित निदेश के साथ अपीलों का निपटारा कर दिया :–

"(i) वर्तमान में प्रत्यर्थी इस आदेश/निर्णय की प्रति प्राप्त होने/प्रस्तुत किए जाने की तारीख से एक मास की अवधि के भीतर रिक्तियों की उक्त संख्या की सीमा तक प्राथमिक अध्यापकों की कुल रिक्तियों के कम से कम 5 प्रतिशत पदों पर व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति करेंगे और झारखंड लोक सेवा आयोग ऐसे अभ्यर्थियों के लंबित परिणाम अविलंब प्रकाशित करेगा जिनके परिणाम अब तक प्रकाशित नहीं किए गए हैं ।

(ii) राज्य-प्रत्यर्थी विद्यालयों में व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों की भावी रिक्तियों और उसके काडर में नियुक्ति करने और उनकी प्रोन्नति के अवसर या किसी अन्य सहबद्ध विषय के संबंध में कोई स्पष्ट नीति संबंधी विनिश्चय ले सकेगा ।

(iii) चूंकि इस समय व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों का कोई पृथक् काडर नहीं है और वे स्वीकृततः प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के काडर के अंतर्गत आते हैं, इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अपीलार्थी और ऐसे अन्य व्यक्ति, जिनके पास व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति के लिए यथापेक्षित पात्रता है, प्राथमिक व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र हैं और वे कुल विद्यमान रिक्तियों के 5 प्रतिशत की सीमा तक और आरक्षित पदों की सीमा तक नियुक्तियों के लिए विचार किए जाने के हकदार हैं ।

(iv) ऐसे व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों को, जिनके पास बी.एड./शिक्षा में डिप्लोमा/अध्यापन में डिप्लोमा या अन्य समतुल्य प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम प्रमाणपत्र नहीं है, उन पदों पर नियुक्ति के लिए दावा करने का कोई अधिकार नहीं है जो सामान्य विषयों

वाले प्राथमिक अध्यापकों के लिए हैं और उनका अधिकार उनके लिए अभिप्रेत पदों के अनुपात की प्रतिशतता तक सीमित होगा । तथापि, व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के रूप में नई नियुक्ति के पश्चात् उन्हें कक्षाएं सौंपने या अनुशासनिक आचरण के प्रयोजन के लिए कोई अन्य प्राथमिक विद्यालय अध्यापक माना जा सकता है ।"

7. उच्च न्यायालय ने बिहार राज्य की नीति को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की कुल रिक्तियों की 5 प्रतिशत रिक्तियों पर व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों की नियुक्ति करने का निदेश दिया था । उसने यह मत व्यक्त किया कि व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापक और प्राथमिक विद्यालय अध्यापक भिन्न-भिन्न काडर के नहीं हैं और इसके अलावा झारखंड सरकार ने राज्य में व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के पद की संख्या या अनुपात के संबंध में कोई निश्चित स्कीम या नीति विरचित नहीं की है । उसने यह भी मत व्यक्त किया कि बिहार राज्य ने प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की रिक्तियों के 5 प्रतिशत की सीमा तक व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापक नियुक्त करने का नीति-विषयक विनिश्चय किया है और राज्यों के पुनर्गठन की तारीख से पूर्व विद्यमान उक्त नीति में उपांतरण नहीं किया गया है और न ही झारखंड राज्य द्वारा कोई अन्य नीति-विषयक विनिश्चय किया गया है ।

8. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री गोपाल प्रसाद ने यह दलील दी है कि व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों द्वारा भरे जाने वाले पदों की प्रतिशतता नीति संबंधी विषय है और उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों को प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की 5 प्रतिशत रिक्तियां व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से भरे जाने का निदेश देकर गलती की है । उसने यह उल्लेख किया कि नियमों के नियम 16 द्वारा बिहार प्राथमिक विद्यालय अध्यापक नियुक्ति नियम, 1991 और बिहार प्राथमिक विद्यालय अध्यापक संशोधन नियुक्ति नियम, 1993 या बिहार सरकार द्वारा झारखंड राज्य को लागू करने के लिए विरचित किसी अन्य अधिनियम या नियमों को निरसित कर दिया गया है । तदनुसार, उसने यह दलील दी है कि बिहार राज्य के तथाकथित नीति-विषयक विनिश्चयों का अवलंब लेना पूर्णतः भ्रामक है और उच्च न्यायालय ने उक्त नीति-विषयक विनिश्चय का अवलंब लेकर गलती की है ।

9. तथापि, प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री अजय कुमार ने यह दलील दी है कि प्रत्येक विद्यालय में एक व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापक की आवश्यकता होती है और चूंकि झारखंड राज्य में इस संबंध में कोई नीति नहीं है इसलिए उच्च न्यायालय

ने प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की 5 प्रतिशत रिक्तियां व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों द्वारा भरे जाने का निदेश देकर गलती नहीं की थी । उसके अनुसार, कोई भी बात इस न्यायालय को नीति विरचित करने का निदेश देने वाला परमादेश जारी करने से निवारित नहीं करती । उसने अपनी दलील के समर्थन में **भारत का नियंत्रक महालेखा परीक्षक, ज्ञान प्रकाश, नई दिल्ली और एक अन्य** बनाम **के. एस. जगन्नाथन एक और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया । इस मामले में, निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "20. इस प्रकार, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारत में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालयों को परमादेश की रिट अथवा परमादेश की प्रकृति की रिट जारी करने अथवा आदेश पारित करने और आवश्यक निदेश देने की शक्ति होगी जहां सरकार या लोक प्राधिकारी कानून या नियम या सरकार की नीति संबंधी विनिश्चय द्वारा उसे प्रदत्त विवेकाधिकार का प्रयोग करने में असफल रहा हो अथवा उसने गलत प्रयोग किया हो अथवा ऐसे विवेकाधिकार का असद्भावपूर्वक या असंगत बातों के आधार पर अथवा सुसंगत बातों और सामग्रियों की उपेक्षा करके अथवा ऐसी रीति में प्रयोग किया हो जिससे ऐसा विवेकाधिकार प्रदान करने का उद्देश्य या ऐसी नीति को कार्यान्वित करना विफल हो जिसके लिए ऐसा विवेकाधिकार प्रदत्त किया गया हो । ऐसे सभी मामलों में और किसी अन्य ठीक और उचित मामले में उच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए परमादेश की रिट अथवा परमादेश की प्रकृति की रिट जारी कर सकता है या आदेश पारित कर सकता है और सरकार या लोक प्राधिकारी को प्रदत्त विवेकाधिकार का उचित और विधिपूर्ण रीति में अनुपालन करने के लिए बाध्य करने हेतु निदेश दे सकता है और किसी उचित मामले में, संबंधित पक्षकारों को होने वाले अन्याय को निवारित करने के लिए न्यायालय स्वयं ऐसा आदेश पारित कर सकता है या निदेश दे सकता है जो सरकार या लोक प्राधिकारी को पारित करना चाहिए या देना चाहिए यदि उसने उचित रूप से और विधिपूर्ण रूप से अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया होता ।"

10. श्री कुमार ने इसके अलावा यह उल्लेख किया कि बिहार राज्य

---

[1] [1986] 3 उम. नि. प. 986 = (1986) 2 एस. सी. सी. 679.

की नीति, जहां तक उसका संबंध व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों से है, नियमों के नियम 16 द्वारा समाप्त नहीं हो जाएगी । इस दलील के समर्थन में **पंजाब राज्य और अन्य** बनाम **बलबीर सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया गया है जो कि निम्नलिखित रूप में है :–

> "....हमारे मतानुसार जब प्रभुसत्ता में कोई परिवर्तन नहीं होता है और किसी विशिष्ट राज्य के पुनर्गठन द्वारा राज्यक्षेत्रों में केवल समायोजन मात्र होता है तो भूतपूर्व राज्य की सरकार द्वारा किए गए प्रशासनिक आदेश चालू और प्रभावी बने रहते हैं और उत्तरवर्ती राज्य पर तब तक बाध्यकर होते हैं, जब तक कि उत्तरवर्ती राज्यों की सरकारों द्वारा वे उपांतरित या निराकृत न कर दिए जाएं ।"

11. हमने परस्पर-विरोधी दलीलों पर विचार किया है और हमें अपीलार्थियों के विद्वान् काउन्सेल की दलील में सार प्रतीत होता है । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि झारखंड सरकार ने आज तक व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों द्वारा भरे जाने वाले पदों की संख्या के संबंध में कोई नीति विरचित नहीं की थी । हमारी राय में, यह प्रश्न आवश्यक रूप से राज्य द्वारा विनिश्चय किया जाने वाला नीति संबंधी प्रश्न है कि प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के कितने पद व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से भरे जाने हैं । नीति तैयार करते समय विभिन्न जानकारी अपेक्षित होती है और न्यायालय के लिए सरकार को कोई ऐसी विशिष्ट नीति, जो वह उपयुक्त या उचित समझे, अंगीकृत करने के लिए निदेश देना या संक्षेपीकृत करना न तो वांछनीय और न ही उपयुक्त है । यह सुस्थापित है कि राज्य सरकार को नीति बनाने की स्वाधीनता और स्वतंत्रता होनी चाहिए । इसके अलावा, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि न्यायालय के पास प्रतिस्पर्धी दावों और परस्पर-विरोधी हितों पर कार्यवाही करने के लिए साधन नहीं हैं । प्रायः, न्यायालयों के पास इस बात का विनिश्चय करने के लिए समाधानकारी और प्रभावी साधन नहीं होते हैं कि कई प्रतिस्पर्धी अनुकल्पों में कौन सा अनुकल्प मामले की परिस्थितियों में सर्वोत्तम है । कोई भी यह दलील दे सकता है कि बालकों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करना देश के विकास के लिए आवश्यक है । जबकि अन्य लोग यह तर्क देते हैं कि प्राथमिक विद्यालय में बालकों का शारीरिक प्रशिक्षण आवश्यक है क्योंकि इससे राष्ट्र मजबूत बनेगा । जैसा कि प्रस्तुत

---

[1] [1976] 3 उम. नि. प. 744 = (1976) 3 एस. सी. सी. 242.

मामले में है, अध्यापन में प्रशिक्षित अभ्यर्थियों का यह दावा है कि प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के पद उनमें से भरे जाने चाहिएं और व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों के संबंध में केवल व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए विचार किया जाना चाहिए क्योंकि शिक्षा में किसी प्रशिक्षण के अभाव में वे प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण प्रदान करने के योग्य नहीं हैं जबकि व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों की दलील यह है कि उनके संबंध में दोनों पदों पर नियुक्ति के लिए विचार किया जाना चाहिए । हमारी राय में, इन प्रतिस्पर्धी दावों पर नीति बनाने वालों द्वारा विचार करने की आवश्यकता है । इसके अलावा, हमारे पास प्राथमिक विद्यालयों की संख्या और उन संसाधनों के संबंध में आंकड़े नहीं हैं जो सरकार व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यवस्था करने और उनकी आवश्यकता पर खर्च कर सकती है । ऐसी स्थिति में, नीति के विषय में कोई निदेश देना अनावश्यक है ।

12. जैसा कि पहले मत व्यक्त किया गया है, उच्च न्यायालय ने स्वयं यह पाया कि झारखंड राज्य में व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से भरे जाने के लिए अध्यापकों के पदों की संख्या के संबंध में कोई नीति नहीं है । बिहार राज्य में नियुक्ति को शासित करने वाला अधिनियम और नियम झारखंड राज्य में की जाने वाली नियुक्ति को शासित नहीं करते हैं और उन्हें नियमों के नियम 16 द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से निरसित कर दिया गया है । इसके अलावा, दो राज्यों की आवश्यकता एक जैसी नहीं हो सकती और इसलिए झारखंड राज्य के लिए यह आवश्यक था कि वह इस संबंध में नीति विरचित करे । सकृतदर्शने, हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने बिहार राज्य की नीति का अवलंब लेकर और प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के 5 प्रतिशत पदों को व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से भरे जाने का निदेश देकर गलती की है ।

13. अब हम **भारत का नियंत्रक और महालेखा परीक्षक** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय पर विचार करते हैं जिसका प्रत्यर्थियों द्वारा अवलंब लिया गया है । उक्त मामले में, संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति पर विचार करते समय इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि परमादेश की रिट वहां जारी की जा सकती है जहां सरकार या लोक प्राधिकारी कानून या नियम या सरकार की नीति संबंधी विनिश्चय द्वारा उसे प्रदत्त विवेकाधिकार का प्रयोग करने में असफल रहा हो अथवा उसने गलत प्रयोग किया हो । इसके अलावा, यह मत व्यक्त किया गया है कि किसी लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए बाध्य करने की दृष्टि से न्यायालय स्वयं कोई आदेश पारित कर सकेगा/निदेश दे सकेगा ।

प्रस्तुत मामले में, न तो झारखंड राज्य के किसी कानून या नियम या नीति में प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के कतिपय प्रतिशत पद शारीरिक शिक्षा में प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से भरे जाने के लिए उपबंध किया गया है । राज्य सरकार को व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों की प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों के रूप में नियुक्ति करने का कोई निदेश राज्य के किसी नियम या उसकी नीति से नहीं निकलता है और इसलिए उनके पक्ष में आरक्षण करने का निदेश देना नीति बनाने की कोटि में आएगा और इसे राज्य सरकार में निहित विवेकाधिकार के प्रयोग में असफलता नहीं कहा जा सकता है ।

14. **बलबीर सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में, जिसका अवलंब प्रत्यर्थियों द्वारा लिया गया है, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि राज्य के पुनर्गठन के पश्चात् तत्कालीन राज्य सरकार द्वारा किए गए प्रशासनिक आदेश उत्तरवर्ती राज्य पर प्रवृत्त और बाध्यकारी बने रहे किन्तु ऐसी मताभिव्यक्ति करते समय इस न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वे तब तक बाध्यकारी होंगे जब तक वे उपांतरित, परिवर्तित या निराकृत नहीं कर दिए जाते । जैसा कि पहले कहा गया है, नियमों के नियम 16 द्वारा बिहार राज्य में प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की नियुक्ति को शासित करने वाले अधिनियम और नियमों को निरसित कर दिया गया था और यह मत व्यक्त किया गया है कि वे झारखंड राज्य में की जाने वाली नियुक्तियों को शासित नहीं करेंगे । सकृतदर्शने, **बलबीर सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में अवलंबित विनिश्चय स्पष्ट रूप से प्रभेद्य है ।

15. प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि तारीख 6 मार्च, 2003 की अधिसूचना द्वारा नियमों के नियम 2(ख)(iii) में किया गया संशोधन प्रश्नगत नियुक्ति को लागू नहीं होगा क्योंकि नियुक्ति की प्रक्रिया उस तारीख से पूर्व, अर्थात्, तारीख 24 अगस्त, 2002 को आवेदन आमंत्रित करके आरंभ हो चुकी थी । यह उल्लेख किया गया है कि नियमों के संशोधन से पूर्व अर्जित अधिकारों और फायदों को नियमों में संशोधन करके छीना नहीं जा सकता है । इस बात पर जोर दिया गया है कि प्रत्यर्थियों ने विचार किए जाने का निहित अधिकार अर्जित कर लिया था और उनके अधिकार विज्ञापन के प्रकाशन की तारीख को निश्चित रूप धारण कर चुके थे । इसके अलावा, यह दलील दी गई है कि चूंकि नियुक्ति की प्रक्रिया विज्ञापन के साथ आरंभ हो गई थी, जो कि नियुक्ति का एक अभिन्न अंग है और उसका अंत परिणाम की घोषणा और पारिणामिक नियुक्ति पर ही होगा, इसलिए अभ्यर्थियों पर नियमों और विज्ञापन में आरंभ में उपबंधित पात्रता कसौटी के आधार पर विचार करना आवश्यक होगा । इस दलील के

समर्थन में इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों का अवलंब लिया गया है, अर्थात्, **ए. ए. काल्टन** बनाम **शिक्षा निदेशक**[1], **एन. टी. देविन कट्टी** बनाम **कर्नाटक लोक सेवा आयोग**[2], **गोपाल कृष्ण रथ** बनाम **एम. ए. ए. बेग**[3] और **महाराजा चिन्तामणि सरन नाथ सहदेव** बनाम **बिहार राज्य**[4] ।

16. हमें प्रत्यर्थियों की दलील में कोई सार प्रतीत नहीं होता है । यहां यह कथन करना सुसंगत है कि रिट याचियों ने किसी भी समय नियमों के उस संशोधन को, जिसमें यह उपबंध था कि व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थी केवल व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति के लिए ही पात्र होंगे तथा आयोग द्वारा जारी उस शुद्धिपत्र को जिसमें उनकी पात्रता व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए ही सीमित की गई थी, चुनौती नहीं दी थी । रिट याचिका में उनकी प्रार्थनाएं निम्नलिखित रूप में थीं :–

> "अतः, सादर यह प्रार्थना की जाती है कि माननीय न्यायालय कृपया इस मामले को ग्रहण करे, प्रत्यर्थियों को सूचनाएं जारी करें और निम्नलिखित अनुतोष के लिए निदेश दे –
>
> > (i) परमादेश की प्रकृति की समुचित रिट जारी करने के लिए जिसमें प्रत्यर्थियों को यह आदिष्ट किया जाए कि वे इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इन याचियों के परिणाम तुरंत प्रकाशित करे कि उपाबंध-I, अर्थात् तारीख 24 अगस्त, 2002 के विज्ञापन के निबंधनानुसार सभी याचियों ने प्राथमिक विद्यालय अध्यापक के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए आवेदन किया था और 9223 स्थानों में से 528 स्थान जमात्रा जिले में रिक्त दर्शाए गए थे किन्तु अब मात्र इस तथ्य के कारण कि उनके पास व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों की अर्हता है, उन्हें इस आधार पर अनस्तित्व में अलग रखा गया है कि उनकी नियुक्ति गिरिडीह और लोहरदगा जिले में व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के रिक्त पदों पर की जाएगी ;
> >
> > (ii) प्रत्यर्थियों, विशेषकर प्रत्यर्थी सं. 2 को यह आदिष्ट करने वाली परमादेश की प्रकृति की समुचित रिट जारी करने के

---

[1] (1983) 3 एस. सी. सी. 33.

[2] (1990) 3 एस. सी. सी. 157.

[3] (1999) 1 एस. सी. सी. 544.

[4] (1999) 8 एस. सी. सी. 16.

लिए कि वे इन याचियों के मामले पर कुल 9233 रिक्तियों पर, जिनके लिए विज्ञापन जारी किया गया था और जिसके लिए याचियों ने आवेदन किया था प्राथमिक अध्यापकों के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए विचार करे और उनकी अभ्यर्थिता को झारखंड राज्य के चार जिलों में निर्बंधित करके विचार न करे ;

(iii) प्रत्यर्थियों को यह निदेश देने के लिए कि इस तथ्य को देखते हुए कि परीक्षा पहले ही तारीख 27 मई, 2003 को आयोजित की जा चुकी है और दोनों याचियों ने उक्त परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन किया था, याचियों को प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के पद पर तुरंत नियुक्त करे ; और

(iv) कोई अन्य समुचित रिट/आदेश/निदेश जारी करने के लिए जो माननीय न्यायालय प्रस्तुत मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थिति में याची के साथ विवेकपूर्ण न्याय करने के लिए उपयुक्त और उचित समझे ।"

17. प्रस्तुत अपीलों में रिट याचियों ने प्रथम बार यह दलील देने का प्रयास किया है कि तारीख 6 मार्च, 2003 को नियम 2(ख)(iii) में किया गया संशोधन, जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध किया गया था कि शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र या शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा धारण करने वाले अभ्यर्थी केवल व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए पात्र होंगे, भूतलक्षी रूप से लागू नहीं किया जा सकता है और उनके मामले असंशोधित नियमों द्वारा शासित होंगे । यह उल्लेख किया गया है कि यह संशोधन भूतलक्षी प्रभाव से नहीं किया गया है । हम प्रस्तुत अपील में इस कारण इस प्रश्न की परीक्षा नहीं करना चाहते हैं कि नियमों में किए गए संशोधन के आधार पर आयोग ने शुद्धिपत्र जारी किया था और शारीरिक शिक्षा प्रमाणपत्र या शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा की अर्हता धारण करने वाले रिट याचियों जैसे व्यक्तियों की अभ्यर्थिता को व्यायाम प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए ही सीमित किया था । उसने उस आधार पर परीक्षा आयोजित की और रिट याचियों ने उसे कोई चुनौती दिए बिना चयन प्रक्रिया में भाग लिया और वे कोई शिकायत किए बिना परीक्षा में बैठे थे । परिणाम प्रकाशित किए जाने और उनकी अभ्यर्थिता के संबंध में प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की समस्त रिक्तियों के लिए विचार न किए जाने के पश्चात् उन्होंने पूर्वोक्त अनुतोष के लिए रिट याचिका फाइल करने का विकल्प अपनाया । रिट याचियों की अभ्यर्थिता के संबंध में प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की समस्त रिक्तियों

के लिए विचार करने का कोई निदेश देना स्थापित मामले को अस्थिर कर देगा और इसके परिणामस्वरूप कई प्रतिक्रियाएं होंगी जिनसे अनेक व्यक्तियों की नियुक्ति पर प्रभाव पड़ेगा ।

18. इसके अलावा, **राजस्थान लोक सेवा आयोग** बनाम **चानन राम**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सरकार को परिवर्तित नियमों के अनुसार चयन करने और अंतिम भर्ती करने का अधिकार प्राप्त है । उक्त मामले में, निम्न प्रकार मत व्यक्त किया गया है :–

> "17.... वे अभ्यर्थी ही, जो परीक्षा में बैठे थे और जिन्होंने लिखित परीक्षा उत्तीर्ण की थी, प्रचलित नियमों के अनुसार विचार किए जाने की विधिसम्मत प्रत्याशा कर सकते थे । संशोधित नियम केवल भविष्यलक्षी रूप से प्रवृत्त होते थे । सरकार परिवर्तित नियमों के अनुसार चयन करने और अंतिम भर्ती करने के लिए हकदार थी । स्पष्टतः, कोई भी अभ्यर्थी राज्य के विरुद्ध कोई निहित अधिकार अर्जित नहीं करता था । इसलिए, राज्य उस अधिसूचना को, जिसके द्वारा उसने इससे पूर्व भर्ती अधिसूचित की थी, वापस लेने और संशोधित नियमों के आधार पर उस संबंध में नई अधिसूचना जारी करने का हकदार था.... ।"

19. पूर्वोक्त कारणों से, प्रत्यर्थियों द्वारा अवलंब ली गई नजीरों पर किसी भी प्रकार से विस्तार से विचार करना असमीचीन है । हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को प्राथमिक विद्यालय अध्यापकों की 5 प्रतिशत रिक्तियां व्यायाम प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से भरने का निदेश देकर गलती की है । तथापि, हम कहना समीचीन समझते हैं कि यदि अपीलार्थियों ने कोई नीति नहीं बनाई है तो उसे नियुक्ति की अगली प्रक्रिया आरंभ करने से पूर्व कोई नीति बना लेनी चाहिए ।

20. परिणामतः, हम इन अपीलों को मंजूर करते हैं, आक्षेपित निर्णय को अपास्त करते हैं और रिट याचिका को खर्चे के संबंध में कोई आदेश किए बिना खारिज करते हैं ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

ग्रो.

---

[1] (1998) 4 एस. सी. सी. 202.

[2012] 1 उम. नि. प. 124

बीनाबाई भाटे

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य और अन्य

4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति (डा.) मुकुंदकम् शर्मा और न्यायमूर्ति अनिल आर. दवे

मध्य प्रदेश नगर तथा ग्राम निवेश अधिनियम, 1973 – धारा 17, 18, 19 और 23क – प्रारूप विकास योजना का प्रकाशन – समिति द्वारा योजना के आक्षेपकर्ता के आक्षेपों को स्वीकार करते हुए संकल्प पारित करना – राज्य सरकार द्वारा प्रारूप विकास योजना को किसी उपांतरण के बिना अनुमोदित करना – पुनर्विलोकन – समिति द्वारा पारित संकल्प आत्यांतिक, अंतिम और बाध्यकारी नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि किसी विकास योजना का अनुमोदन करने के विषय में अंतिम प्राधिकार राज्य सरकार के पास होता है ।

मध्य प्रदेश नगर तथा ग्राम निवेश अधिनियम, 1973 – धारा 23 और 23क – अंतिम विकास योजना का अनुमोदन – पुनर्विलोकन – पुनर्विलोकन की शक्ति कानून द्वारा सृजित की जाती है जिसके लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध करना होता है और किसी अधिनियम के उपबंधों में पुनर्विलोकन की ऐसी शक्ति के अभाव में पुनर्विलोकन से इनकार करना न्यायोचित होगा ।

अपीलार्थी मध्य प्रदेश में स्थित कतिपय भूमि की भू-स्वामी है । मध्य प्रदेश नगर तथा ग्राम निवेश अधिनियम, 1973 के अधीन एक प्रारूप विकास योजना प्रकाशित की गई थी । अपीलार्थी को इस बात का पता चला कि प्रारूप विकास योजना में उसकी भूमि का कुछ भाग भी शामिल है । तथापि, वह भूमि पैतृक थी और अपीलार्थी उसे सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत और पहले से निष्पादित वसीयत द्वारा अंतरित करना चाहती थी । अपीलार्थी ने आक्षेप प्रस्तुत किए और एक समिति का गठन किया गया था जिसमें संसद् सदस्य, विधान सभा सदस्य, मेयर, जिला पंचायत का अध्यक्ष, ग्राम पंचायत का सरपंच और कलक्टर थे । समिति ने आक्षेपों पर विचार किया और यह विनिश्चय किया कि भूमि की आवश्यकता नहीं है और अपीलार्थी और अन्य लोगों के आक्षेप यह कथन करते हुए स्वीकार कर लिए गए थे कि प्रश्नगत भूमि की आवश्यकता नहीं है । तदनुसार, समिति

द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में एक संकल्प पारित किया गया था । समिति द्वारा पारित संकल्प के बावजूद, जो कि अधिसूचना द्वारा मध्य प्रदेश राजपत्र में प्रकाशित किया गया था, अपीलार्थी को इस बात का पता चला कि राज्य सरकार ने उपांतरित विकास योजना में अपीलार्थी की कतिपय भूमि शामिल कर ली थी । अपीलार्थी ने राज्य सरकार के समक्ष अधिनियम की धारा 23क के अधीन पुनर्विलोकन याचिका फाइल की जो कि यह कथन करते हुए नामंजूर कर दी गई कि अधिनियम में आदेश के पुनर्विलोकन के लिए कोई उपबंध नहीं है । इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की जो कि विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दी गई थी । चूंकि लेटर्स पेटेंट अधिकारिता का उत्सादन कर दिया गया था इसलिए अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका फाइल की । विशेष इजाजत याचिका के लंबित रहने के दौरान लेटर्स पेटेंट अधिकारिता का उपबंध पुनः प्रवर्तित कर दिया गया था । उच्च न्यायालय में लेटर्स पेटेंट अपील फाइल करने के लिए विशेष इजाजत याचिका को वापस लेने की अनुज्ञा दे दी गई थी । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट अपील फाइल की जो कि खारिज कर दी गई थी । प्रस्तुत अपील उच्च न्यायालय द्वारा पारित पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मध्य प्रदेश नगर तथा ग्राम निवेश अधिनियम, 1973 अधिनियम की धारा 17, 18 और 19 में ऐसी प्रक्रिया को अधिकथित करने वाली एक व्यापक स्कीम दी गई है कि राज्य सरकार द्वारा किसी विकास योजना का अनुमोदन किस प्रकार किया जाना है तथा वह प्रक्रिया भी दी गई है कि कब वह योजना अंतिम और प्रवर्तनशील हो जाती है । उपबंधों की पूर्वोक्त स्कीम में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि समिति की कोई सिफारिश केवल अनुशंसात्मक और परामर्शी प्रकृति की होती है और राज्य सरकार को समिति की इन सिफारिशों पर विचार करना होता है किन्तु प्रारूप विकास योजना को अनुमोदित या नामंजूर करने या उसे ऐसे उपांतरणों सहित, जो वह उपयुक्त समझे, अनुमोदित करने की आत्यांतिक और अंतिम शक्ति राज्य सरकार में निहित है । (पैरा 18)

समिति द्वारा पारित संकल्पों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वे आत्यांतिक, अंतिम और बाध्यकारी हैं और विकास योजना को अनुमोदन प्रदान करने के विषय में अंतिम प्राधिकार राज्य सरकार के पास है । तथापि, प्रस्तुत मामले में, राज्य सरकार ने प्रारूप योजना को किसी उपांतरण के बिना अनुमोदित कर दिया था और इसलिए अधिनियम की

धारा 19 की उपधारा (2) और (3) के उपबंध प्रस्तुत मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों को लागू नहीं होते हैं । उक्त विधिक उपबंध के बावजूद, राज्य सरकार ने प्रस्तुत मामले में अंतिम योजना जारी की है और उन व्यक्तियों से आक्षेप भी आमंत्रित किए हैं जिनका उनकी भूमि शामिल किए जाने के कारण प्रभावित होना संभावित है । इसके पश्चात् भी, अपीलार्थी ने कोई आक्षेप प्रस्तुत नहीं किया था और इसलिए अपीलार्थी को उस प्रक्रम पर सुनवाई का अवसर दिए जाने का प्रश्न उद्‌भूत नहीं हुआ । अतः, अपीलार्थी की दलीलों की परीक्षा किसी भी दृष्टिकोण से की जाए, वे स्वीकार किए जाने योग्य नहीं पाई जाती हैं । (पैरा 19)

प्रस्तुत मामले में, धारा 14 के अधीन तैयार की गई विकास योजना राज्य सरकार द्वारा किसी उपांतरण के बिना अनुमोदित कर दी गई थी और इसलिए कोई और सुझाव आमंत्रित करने का कोई प्रश्न नहीं था क्योंकि उक्त विकास योजना के लिए किसी भी उपांतरण का सुझाव नहीं दिया गया था । उक्त स्थिति को भी ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर दिए जाने का कोई प्रश्न नहीं था और इसलिए नैसर्गिक न्याय के अभिकथित अतिक्रमण के संबंध में उठाए गए विवाद में कोई सार नहीं है । (पैरा 17)

जहां तक पुनर्विलोकन की शक्ति का संबंध है, उच्च न्यायालय के पास पुनर्विलोकन की शक्ति नहीं है क्योंकि पुनर्विलोकन की ऐसी शक्ति के संबंध में अधिनियम में विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध किया जाना होता है । किसी आदेश के विरुद्ध पुनर्विलोकन की शक्ति कानून द्वारा सृजित होती है और चूंकि अधिनियम के उपबंधों के अधीन पुनर्विलोकन की ऐसी किसी शक्ति के बारे में उपबंध नहीं किया है इसलिए उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना न्यायोचित था कि पारित किए गए आदेश का कोई पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता है । जहां तक अधिनियम की धारा 23 और 23क में यथा-उपबंधित विकास योजना या समीपस्थ योजना के पुनर्विलोकन और उपांतरण का संबंध है, उक्त उपबंध प्रस्तुत मामले को लागू नहीं होते हैं क्योंकि राज्य सरकार ने विकास योजना में कोई उपांतरण नहीं किया है और इसलिए अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि उनमें कोई सार नहीं है । इसके अलावा, उक्त शक्ति अनन्य रूप से राज्य सरकार में निहित है और किसी समुचित मामले में राज्य सरकार को, जब भी वह उचित समझे ऐसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दी गई है । यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें राज्य सरकार ने ऐसी शक्ति का अवलंब लेना उपयुक्त समझा हो । (पैरा 20)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की सिविल अपील सं. 4920.

2006 की रिट अपील सं. 1063 में जबलपुर स्थित मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के तारीख 29 अगस्त, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री प्रमोद स्वरूप, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) सुषमा वर्मा, पूजा शर्मा और प्रवीन स्वरूप

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री विकास उपाध्याय (बी. एस. बंथिया की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) मुकुंदकम् शर्मा ने दिया ।

न्या. शर्मा – इजाजत दी जाती है ।

2. यह अपील 2003 की रिट अपील सं. 1063 में जबलपुर स्थित मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 29 अगस्त, 2008 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने प्रस्तुत अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई उक्त अपील खारिज कर दी थी और जबलपुर स्थित मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 16 अप्रैल, 2003 के आदेश को कायम रखा था ।

3. अपीलार्थी मध्य प्रदेश के पूर्वी निमार जिले की खंडवा तहसील में स्थित कतिपय भूमि का भू-स्वामी है । मध्य प्रदेश नगर तथा ग्राम निवेश अधिनियम, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) के अधीन एक प्रारूप विकास योजना प्रकाशित की गई थी । अपीलार्थी को इस बात का पता चला कि प्रारूप विकास योजना में नवचंदी मेले के लिए उपलब्ध कराने के आशय से उसकी भूमि का कुछ भाग भी शामिल है । तथापि, वह भूमि पैतृक थी और अपीलार्थी उसे सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत और पहले से निष्पादित वसीयत द्वारा अंतरित करना चाहती थी ।

4. अपीलार्थी ने तारीख 24 मार्च, 2000 को आक्षेप प्रस्तुत किए और एक समिति का गठन किया गया था जिसमें संसद् सदस्य, विधान सभा सदस्य, मेयर, जिला पंचायत का अध्यक्ष, ग्राम पंचायत का सरपंच और कलक्टर थे । समिति ने आक्षेपों पर विचार किया और यह विनिश्चय किया कि भूमि की आवश्यकता नहीं है और अपीलार्थी और अन्य लोगों के आक्षेप यह कथन करते हुए स्वीकार कर लिए गए थे कि प्रश्नगत भूमि की आवश्यकता नहीं है । तदनुसार, समिति द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में तारीख 26 मई, 2000 का एक संकल्प पारित किया गया था ।

5. समिति द्वारा पारित संकल्प के बावजूद, जो कि तारीख 28 फरवरी, 2001 की अधिसूचना द्वारा मध्य प्रदेश राजपत्र में प्रकाशित किया गया था, अपीलार्थी को इस बात का पता चला कि राज्य सरकार ने उपांतरित विकास योजना में अपीलार्थी की कतिपय भूमि शामिल कर ली थी । अपीलार्थी ने राज्य सरकार के समक्ष अधिनियम की धारा 23क के अधीन पुनर्विलोकन याचिका फाइल की जो कि तारीख 24 जुलाई, 2002 के आदेश द्वारा यह कथन करते हुए नामंजूर कर दी गई कि अधिनियम में आदेश के पुनर्विलोकन के लिए कोई उपबंध नहीं है ।

6. इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की जो कि विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 16 अप्रैल, 2003 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी । चूंकि लेटर्स पेटेंट अधिकारिता का उत्सादन कर दिया गया था इसलिए अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका फाइल की । विशेष इजाजत याचिका के लंबित रहने के दौरान लेटर्स पेटेंट अधिकारिता का उपबंध पुनः प्रवर्तित कर दिया गया था । उच्च न्यायालय में लेटर्स पेटेंट अपील फाइल करने के लिए विशेष इजाजत याचिका को वापस लेने की अनुज्ञा दे दी गई थी ।

7. अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय की जबलपुर न्यायपीठ के समक्ष रिट अपील फाइल की जो कि तारीख 29 अगस्त, 2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी । प्रस्तुत अपील, जैसा कि इसमें इसके पूर्व कथन किया गया है, उच्च न्यायालय द्वारा पारित पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है ।

8. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि गठित की गई समिति द्वारा संकल्प पारित किए जाने के पश्चात्, जिसमें अपीलार्थी के आक्षेपों/सुझावों को स्वीकार कर लिया गया था, समिति के उक्त संकल्प को सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया जाना चाहिए था क्योंकि वह आबद्धकर था बल्कि इसके विपरीत राज्य सरकार ने अपीलार्थी को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना समिति की उक्त सिफारिश को नामंजूर कर दिया और सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना भूमि को अर्जित करने की कार्यवाही आरंभ कर दी और इस प्रकार राज्य सरकार की उक्त कार्रवाई से नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण होता है ।

9. यह भी दलील दी गई थी कि अर्जन की संपूर्ण प्रक्रिया शक्ति का आभासी प्रयोग था न कि किसी लोक प्रयोजन के लिए था और ऐसा बाह्य कारणों से किया गया था । अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल द्वारा यह निवेदन भी किया गया था कि अपीलार्थी को आरंभ

से ही यह आश्वासन दिया गया था कि उसकी भूमि का प्रयोग मेला आयोजित करने के प्रयोजनार्थ राज्य सरकार द्वारा नहीं किया जाएगा और इसलिए उक्त भूमि का अर्जन किए जाने से अपीलार्थी को अचानक अचंभा हुआ ।

10. यह भी दलील दी गई थी कि संसद सदस्य, विधान सभा सदस्यों, मेयर, जिला पंचायत के अध्यक्ष, ग्राम पंचायत के सरपंच और कलक्टर द्वारा गठित समिति की रिपोर्ट के अनुसार प्रश्नगत भूमि की आवश्यकता नहीं थी और चूंकि अपीलार्थी के आक्षेपों को स्वीकार कर लिया गया था कि प्रश्नगत भूमि की आवश्यकता नहीं थी और इसलिए की गई कार्रवाई शक्ति का आभासी प्रयोग है । यह भी दलील दी गई थी कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके अधिनियम की धारा 23 के उपबंधों का निर्वचन करने में गंभीर त्रुटि कारित की थी कि अधिनियम के अधीन आदेशों के पुनर्विलोकन के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया था ।

11. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि पूर्वोक्त समिति द्वारा पारित संकल्प अंतिम नहीं था और वह केवल अनुशंसात्मक प्रकृति का था और राज्य सरकार प्रत्येक मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए स्वयं अपना विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र थी । यह भी दलील दी गई थी कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का कोई अतिक्रमण नहीं किया गया था और यह कि अपीलार्थी को सुने जाने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया था ।

12. यह भी कहा गया था कि जैसे ही खंडवा के नगर निगम द्वारा भूमि अर्जित की जाएगी, अपीलार्थी को प्रतिकर का संदाय कर दिया जाएगा और इसलिए, इस समय भूमि का कब्जा अपीलार्थी के पास है । यह भी दलील दी गई थी कि यह विनिश्चय सद्भाविक है और वह विधि के अनुसार किया गया था ।

13. उच्च न्यायालय के समक्ष भी अपीलार्थी द्वारा इसी प्रकार की दलीलें दी गई थीं । उच्च न्यायालय के तारीख 16 अप्रैल, 2003 के अपने आदेश में यह अभिनिर्धारित करते हुए उक्त दलीलों को नामंजूर कर दिया था कि उनमें कोई सार नहीं है । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 17 और 18 की स्कीम के अनुसार, समिति की सिफारिश अंतिम, बाध्यकारी और निश्चायक नहीं है और इसलिए राज्य विधि के अनुसार अपना अंतिम विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र था । उच्च न्यायालय द्वारा यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि उस प्रकृति के आदेश का पुनर्विलोकन, जो कि अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष

फाइल किया गया था, अधिनियम की धारा 23क के उपबंधों के निबंधनानुसार संधार्य नहीं था ।

14. रिट अपील में पारित तारीख 29 अगस्त, 2008 के आदेश में उच्च न्यायालय ने अपने तारीख 16 अप्रैल, 2003 के आदेश को कायम रखते हुए यह मत व्यक्त किया था कि राज्य सरकार ने समिति द्वारा की गई सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया था इसलिए राज्य के लिए उपांतरित योजना जारी करना आवश्यक नहीं था । अंतिम योजना के लिए राज्य सरकार ने धारा 19(2) के अनुसार योजना अवश्य जारी कर थी और उन व्यक्तियों से आक्षेप मांगे थे जिन पर उनकी भूमि शामिल किए जाने से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी । न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति भी की कि यदि अपीलार्थी की यह राय थी कि राज्य सरकार द्वारा कतिपय दस्तावेज़ें अपने पास रख ली गई थी तो वह विद्वान् एकल न्यायाधीश से सदैव उक्त दस्तावेज़ों को प्रस्तुत करने के लिए राज्य सरकार को निदेश देने के लिए कह सकती थी । ऐसी दस्तावेज़ों को मांगने में असफल रहने पर यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि राज्य सरकार ने समिति द्वारा की गई सिफारिशों को स्वीकार कर लिया था, अंतिम योजना में उसकी भूमि को शामिल नहीं किया था और अचानक अपीलार्थी के हितों के विरुद्ध अंतिम योजना जारी कर दी थी ।

15. उपस्थित होने वाले पक्षकारों के काउन्सेलों द्वारा दी गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए हमने अभिलेख तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का सूक्ष्मतापूर्वक परिशीलन किया है । अधिनियम की धारा 17क, धारा 18 और धारा 19 के उपबंधों का सावधानीपूर्वक पठन करने पर हमें किसी प्रारूप विकास योजना के प्रकाशन और अंतिम विकास योजना के अनुमोदन और तैयार करने से संबंधित प्रक्रिया और स्कीम के संबंध में पता चलता है ।

16. अधिनियम की धारा 17क की उपधारा (2) से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि समिति को धारा 14 के अधीन निदेशक द्वारा तैयार की गई प्रारूप विकास योजना पर विचार करने की शक्ति प्राप्त है । उसे तैयार की गई पूर्वोक्त प्रारूप विकास योजना में उपांतरणों और परिवर्तनों के बारे में सुझाव देने की भी शक्ति प्राप्त है । समिति को धारा 18 के अधीन प्रारूप विकास योजना के प्रकाशन के पश्चात् आक्षेपों पर सुनवाई करने और निदेशक को उपांतरणों या परिवर्तनों के बारे में, यदि कोई हों, सुझाव देने की भी शक्ति प्रदान की गई है । अतः, यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि

पूर्वोक्त विनिश्चय और समिति का संकल्प केवल एक सुझाव और सिफारिश है जिस पर राज्य सरकार को आवश्यक रूप से ध्यान देना है । जब अधिनियम की धारा 17 और 18 के अधीन विहित प्रक्रिया और कार्यवाही के पूरा हो जाने के पश्चात् विकास योजना प्रस्तुत कर दी जाती है तब राज्य सरकार को, अधिनियम की धारा 19 के अधीन या तो विकास योजना का अनुमोदन करने या उसे कुछ उपांतरणों सहित, जैसा वह आवश्यक समझे, अनुमोदित करने की शक्ति प्राप्त है । इसके अलावा, राज्य सरकार को उसे निदेशक के पास उपांतरण करने या ऐसे निदेशों के अनुसार, जो राज्य सरकार उपयुक्त समझे, नई योजना तैयार करने के लिए वापस भेजने की भी शक्ति निहित है ।

17. प्रस्तुत मामले में, धारा 14 के अधीन तैयार की गई विकास योजना राज्य सरकार द्वारा किसी उपांतरण के बिना अनुमोदित कर दी गई थी और इसलिए कोई और सुझाव आमंत्रित करने का कोई प्रश्न नहीं था क्योंकि उक्त विकास योजना के लिए किसी भी उपांतरण का सुझाव नहीं दिया गया था । उक्त स्थिति को भी ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर दिए जाने का कोई प्रश्न नहीं था और इसलिए नैसर्गिक न्याय के अभिकथित अतिक्रमण के संबंध में उठाए गए विवाद में कोई सार नहीं है ।

18. पूर्वोक्त उपबंधों, अर्थात् अधिनियम की धारा 17, 18 और 19 में ऐसी प्रक्रिया को अधिकथित करने वाली एक व्यापक स्कीम दी गई है कि राज्य सरकार द्वारा किसी विकास योजना का अनुमोदन किस प्रकार किया जाना है तथा वह प्रक्रिया भी दी गई है कि कब वह योजना अंतिम और प्रवर्तनशील हो जाती है । उपबंधों की पूर्वोक्त स्कीम में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि समिति की कोई सिफारिश केवल अनुशंसात्मक और परामर्शी प्रकृति की होती है और राज्य सरकार को समिति की इन सिफारिशों पर विचार करना होता है किन्तु प्रारूप विकास योजना को अनुमोदित या नामंजूर करने या उसे ऐसे उपांतरणों सहित, जो वह उपयुक्त समझे, अनुमोदित करने की आत्यांतिक और अंतिम शक्ति राज्य सरकार में निहित है ।

19. समिति द्वारा पारित संकल्पों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वे आत्यांतिक, अंतिम और बाध्यकारी हैं और विकास योजना को अनुमोदन प्रदान करने के विषय में अंतिम प्राधिकार राज्य सरकार के पास है । तथापि, प्रस्तुत मामले में, राज्य सरकार ने प्रारूप योजना को किसी उपांतरण के बिना अनुमोदित कर दिया था और इसलिए धारा 19 की

उपधारा (2) और (3) के उपबंध प्रस्तुत मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों को लागू नहीं होते हैं । उक्त विधिक उपबंध के बावजूद, राज्य सरकार ने प्रस्तुत मामले में अंतिम योजना जारी की है और उन व्यक्तियों से आक्षेप भी आमंत्रित किए हैं जिनका उनकी भूमि शामिल किए जाने के कारण प्रभावित होना संभावित है । इसके पश्चात् भी, अपीलार्थी ने कोई आक्षेप प्रस्तुत नहीं किया था और इसलिए अपीलार्थी को उस प्रक्रम पर सुनवाई का अवसर दिए जाने का प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ । अतः, अपीलार्थी की दलीलों की परीक्षा किसी भी दृष्टिकोण से की जाए, वे स्वीकार किए जाने योग्य नहीं पाई जाती हैं ।

20. जहां तक पुनर्विलोकन की शक्ति का संबंध है, उच्च न्यायालय के पास पुनर्विलोकन की शक्ति नहीं है क्योंकि पुनर्विलोकन की ऐसी शक्ति के संबंध में अधिनियम में विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध किया जाना होता है । किसी आदेश के विरुद्ध पुनर्विलोकन की शक्ति कानून द्वारा सृजित होती है और चूंकि अधिनियम के उपबंधों के अधीन पुनर्विलोकन की ऐसी किसी शक्ति के बारे में उपबंध नहीं किया है इसलिए उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना न्यायोचित था कि पारित किए गए आदेश का कोई पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता है । जहां तक अधिनियम की धारा 23 और 23क में यथा-उपबंधित विकास योजना या समीपस्थ योजना के पुनर्विलोकन और उपांतरण का संबंध है, उक्त उपबंध प्रस्तुत मामले को लागू नहीं होते हैं क्योंकि राज्य सरकार ने विकास योजना में कोई उपांतरण नहीं किया है और इसलिए अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि उनमें कोई सार नहीं है । इसके अलावा, उक्त शक्ति अनन्य रूप से राज्य सरकार में निहित है और किसी समुचित मामले में राज्य सरकार को, जब भी वह उचित समझे ऐसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दी गई है । यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें राज्य सरकार ने ऐसी शक्ति का अवलंब लेना उपयुक्त समझा हो ।

21. अतः हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है । आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है । इसलिए, प्रस्तुत अपील खारिज की जाती है क्योंकि उसमें कोई सार नहीं है । तथापि, खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

[2012] 1 उम. नि. प. 133

राजस्थान राज्य और एक अन्य

बनाम

जे. के. सिंथेटिक्स लिमिटेड और एक अन्य

4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति आर. वी. रवीन्द्रन, न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् और
न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक

खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 (1957 का 67) – धारा 9(3) [सपठित खनिज रियायत नियम, 1960 का नियम 64-क)] – खनन पट्टे की बाबत स्वामिस्व के बकाया पर ब्याज – राज्य सरकार की 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज की मांग को उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की सीमा तक स्वीकार करना – अंतर-न्यायालयीय अपीलों में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा एकल न्यायाधीश के आदेश को महाधिवक्ता की स्वीकृति/रियायत पर आधारित मानकर यह अभिनिर्धारित करना कि एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती – चूंकि महाधिवक्ता ने केवल यह निवेदन किया था कि राज्य सरकार 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज की हकदार है और एकल न्यायाधीश की यह मताभिव्यंक्ति कि राज्य सरकार को विलंबित संदायों पर कम से कम 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज मिलना चाहिए, एकल न्यायाधीश की एक मताभिव्यक्ति मात्र है न कि महाधिवक्ता द्वारा दी गई कोई रियायत इसलिए ऐसा कथन राज्य सरकार द्वारा एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती देने के मार्ग में बाधक नहीं होगा यदि उसके मतानुसार वह उच्चतर दर पर ब्याज प्राप्त करने की हकदार है ।

खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 (1957 का 67) – धारा 9(3) [सपठित खनिज रियायत नियम, 1960 का नियम 64-क] – स्वामिस्व के बकाया पर ब्याज – उच्च न्यायालय के अंतरिम आदेशों द्वारा बढ़ी हुई दरों पर स्वामिस्व की वसूली करने पर रोक – मामला अंततः खारिज हो जाने पर अंतरिम आदेशों के कारण विधारित स्वामिस्व के अंतर पर ब्याज संदत्त करने की मांग – जब दर या टैरिफ में पुनरीक्षण के संबंध में कोई अंतरिम रोकादेश किया जाता है, तब जब तक अंतरिम रोकादेश या रिट याचिका को खारिज करने वाले अंतिम आदेश में अन्यथा विनिर्दिष्ट नहीं किया जाता है, रिट याचिका के खारिज या

अंतरिम आदेश के बातिल हो जाने पर अंतरिम आदेश के फायदाग्राही को उस रकम पर, जो अंतरिम आदेश के कारण विधारित की गई है या संदत्त नहीं की गई है, ब्याज का संदाय करना होगा और जहां कानून या संविदा में ब्याज की दर विनिर्दिष्ट की गई है वहां प्रायः उसी दर पर ब्याज का संदाय करना होगा तथा जहां ब्याज के संदाय के लिए कोई कानूनी या संविदात्मक उपबंध न हो वहां भी न्यायालय को अंतरिम रोकादेश को बातिल करते समय या रिट याचिका को खारिज करते समय जब तक ऐसा न करने के लिए विशेष कारण न हों, प्रत्यास्थापन के तौर पर किसी युक्तियुक्त दर पर ब्याज का संदाय करने का निदेश देना होगा ।

खनिज रियायत नियम, 1960 – नियम 64-क, 31 और 27 – खनन पट्टे की बाबत स्वामिस्व – स्वामिस्व के बकाया पर ब्याज – क्या नियम 64 में प्रयुक्त "24 प्रतिशत की दर से साधारण ब्याज प्रभारित कर सकेगी" शब्द प्रभारित की जाने वाली दर के संबंध में राज्य में विवेकाधिकार निहित करते हैं – नियम 64-क में "सकेगी" शब्द का प्रयोग राज्य सरकार को प्रभारित किए जाने वाले ब्याज की दर के संबंध में विवेकाधिकार देने के संदर्भ में नहीं किया गया है बल्कि इसका प्रयोग उसे पट्टे का पर्यवसान करने या 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज प्रभारित करने के संबंध में विकल्प प्रदान करने के लिए किया गया है ।

इन अपीलों में से प्रत्येक में प्रथम प्रत्यर्थी चूना पत्थर के खनन पट्टे का धारक है या था । खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 9 खनन पट्टों की बाबत स्वामिस्वों के संबंध में है । उसकी उपधारा (2) में खनन पट्टे के धारक से यह अपेक्षित है कि वह पट्टाकृत क्षेत्र में से उसके द्वारा हटाए या खपाए गए किसी खनिज की बाबत उस दर पर स्वामिस्व का संदाय करे जो उस खनिज की बाबत अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में तत्समय विनिर्दिष्ट है । उसकी उपधारा (3) केन्द्रीय सरकार को राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा द्वितीय अनुसूची में संशोधन करने के लिए सशक्त करती है जिससे कि उन दरों में वृद्धि की जा सके जिन पर किसी खनिज की बाबत ऐसी तारीख से जो कि अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, स्वामिस्व संदेय होगा । केन्द्रीय सरकार ने तारीख 3 मई, 1987 की अधिसूचना द्वारा अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में संशोधन किया था और चूना पत्थर की बाबत स्वामिस्व 4.50 रुपए प्रति टन से बढ़ाकर 10 रुपए प्रति टन कर दिया था । तारीख 17 फरवरी, 1992 की अधिसूचना द्वारा, अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में पुनः संशोधन किया गया था और चूना पत्थर के लिए स्वामिस्व की दर 10 रुपए

प्रति टन से बढ़ाकर 25 रुपए प्रति टन कर दी गई थी । इन अपीलों में संबंधित प्रथम प्रत्यर्थी ने (जिन्हें एक साथ "विरोध करने वाले प्रत्यर्थी" कहा गया है) अधिनियम की धारा 9(3) और उस अधिसूचना की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती देते हुए, जिसके द्वारा स्वामिस्व की दर 10 रुपए प्रति टन से बढ़ाकर 25 रुपए प्रति टन कर दी गई थी, रिट याचिकाएं फाइल कीं । उच्च न्यायालय ने सभी मामलों में (सिवाय जे. के. उदयपुर उद्योग लिमिटेड के मामले में) अंतरिम आदेश जारी कर दिए थे, जिनके द्वारा राज्य सरकार को यह निदेश दिया गया था कि वह रिट याचियों द्वारा 10 रुपए प्रति मीट्रिक टन की दर पर स्वामिस्व का संदाय करने और 15 रुपए प्रति मीट्रिक टन के अंतर के लिए बैंक प्रतिभूति प्रस्तुत करने के अधीन रहते हुए उक्त अधिसूचना के अनुसरण में 25 रुपए प्रति मीट्रिक टन की दर पर स्वामिस्व की वसूली करने संबंधी प्रपीड़क कदम न उठाए । जे. के. उदयपुर उद्योग लिमिटेड के मामले में, उच्च न्यायालय ने इस अतिरिक्त शर्त के साथ अन्य मामलों की तरह अंतरिम आदेश किया कि यदि उक्त रिट याची अंततोगत्वा रिट याचिका में असफल हो जाता है तो रिट याची से देय बकाया रकम की वसूली 18 प्रतिशत वार्षिक दर पर ब्याज सहित की जाएगी । विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा अधिनियम की धारा 9(3) और स्वामिस्व में वृद्धि करने वाली अधिसूचना को चुनौती देते हुए फाइल की गई अनेक रिट याचिकाएं अंततः खारिज कर दी गई थीं जिसमें इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 9(3) और स्वामिस्व की दर को पुनरीक्षित करने वाली अधिसूचना की विधिमान्यता को कायम रखा था । ऐसी खारिजी के परिणामस्वरूप विरोध करने वाले प्रत्येक प्रत्यर्थी ने यह दावा किया है कि उन्होंने वर्ष 1996-1997 में स्वामिस्व के अंतर (अर्थात्, 15 रुपए प्रति मीट्रिक टन की दर पर) का संदाय कर दिया है । खनिज रियायत नियम, 1960 के नियम 64-क में स्वामिस्व और अन्य देयों के बकाया पर ब्याज उद्गृहीत करने का उपबंध है । राजस्थान राज्य ने विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों को निम्नलिखित मांग सूचनाएं जारी कीं जिनमें उनसे नियमों के नियम 64-क के अधीन उस स्वामिस्व के अंतर पर, जो उनके द्वारा अभिप्राप्त अंतरिम आदेशों के कारण विधारित किया गया था और जिनका संदाय उनकी रिट याचिकाओं के खारिज हो जाने के पश्चात् विलंब से किया गया था, 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज संदत्त करने की मांग की गई थी । विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने इस प्रक्रम पर यह दलील देते हुए ब्याज की मांग करने वाली सूचनाओं को चुनौती देते हुए दूसरी बार रिट याचिकाएं फाइल कीं कि वे ब्याज का संदाय करने के लिए

दायी नहीं हैं । उन्होंने नियमों के नियम 64-क की विधिमान्यता को भी चुनौती दी थी । उन्होंने विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष यह निवेदन किया कि 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का दावा कठोर, अत्यधिक और असाम्यापूर्ण था और 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष से उच्चतर दर पर ब्याज प्रभारित नहीं किया जाना चाहिए । एकल न्यायाधीश ने ब्याज की मांग को 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की सीमा तक ही कायम रखा और 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की उच्चतर दर पर ब्याज की मांग को इस शर्त पर अपास्त कर दिया कि यदि विलंब से किए गए संदायों पर 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज तीन मास के भीतर संदत्त नहीं किया जाता है तो संबंधित रिट याची 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज संदत्त करने के दायी होंगे । विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने यह कथन किया है कि उनमें से सभी ने विलंब से किए गए संदायों पर तीन मास की अवधि के भीतर 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय कर दिया है । राज्य सरकार ने एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती देते हुए अंतर-न्यायालीय अपीलें फाइल कीं । उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने तारीख 14 नवम्बर, 2009, 13 नवम्बर, 2006, 13 मार्च, 2007, 14 नवम्बर, 2006 और 4 नवम्बर, 2009 के आक्षेपित आदेशों द्वारा उन अपीलों को इस आधार पर खारिज कर दिया कि एकल न्यायाधीश का आदेश महाधिवक्ता की स्वीकृति/रियायत पर आधारित था और इसलिए इस आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । राज्य सरकार द्वारा विशेष इजाजत लेकर फाइल की गई इन अपीलों में उक्त आदेशों को चुनौती दी गई है । राज्य सरकार द्वारा फाइल की गई वर्तमान अपीलों में निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुए - (i) क्या राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले महाधिवक्ता ने 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज से संबंधित अधिनिर्णय से सहमति व्यक्त थी ? (ii) जब उच्च न्यायालय उद्ग्रहण को चुनौती देने वाली किसी रिट याचिका में, जो कि अंततः ब्याज का संदाय करने के लिए किसी विनिर्दिष्ट निदेश के बिना खारिज कर दी जाती है, संदाय के लिए की गई मांग के संबंध में अंतरिम रोक प्रदान कर देता है तब क्या प्रत्यर्थी अंतरिम आदेश के अंतर्गत आने वाली अवधि के लिए देय रकम पर ब्याज का दावा कर सकता है ? (iii) क्या नियम 64-क राज्य सरकार को समुचित या पात्र मामलों में 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष से कम दर पर ब्याज प्रभारित करने के लिए कोई विवेकाधिकार निहित करता है ? (iv) क्या अधिनिर्णीत 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज की दर में वृद्धि करना अपेक्षित है ? उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों को भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष महाधिवक्ता ने एकमात्र दलील यह दी थी कि राज्य सरकार 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज की हकदार है । इसके बाद की गई यह मताभिव्यक्ति कि उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों की प्रवृत्ति के अनुसार राज्य सरकार को विलंब से किए गए संदायों पर कम से कम 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज मिलना चाहिए, विद्वान् एकल न्यायाधीश की मात्र मताभिव्यक्ति है न कि विद्वान् महाधिवक्ता द्वारा दी गई कोई रियायत है । इसके अलावा, विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश के पश्चात्वर्ती पैरा से यह संदेह से परे स्पष्ट हो जाता है कि वह आदेश न तो सहमति पर और न ही रियायत पर आधारित था बल्कि वह इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय का अनुसरण करते हुए गुणागुण के आधार पर किया गया था । इसलिए, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ की यह उपधारणा कि विद्वान् महाधिवक्ता ने रियायत दी थी और विद्वान् एकल न्यायाधीश का आदेश एक सहमत आदेश था और इसलिए राज्य सरकार विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती नहीं दे सकेगी, स्पष्टतः त्रुटिपूर्ण है । अतः, खंड न्यायपीठ का आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है । भले ही यह मान लिया जाए कि विद्वान् महाधिवक्ता ने यह दलील दी थी कि उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय की वर्तमान प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए, सरकार को स्वामिस्व की रकम के अंतर का विलंब से संदाय करने पर, कम से कम 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज मिलना चाहिए, तो भी वह न तो कोई स्वीकृति होगी और न ही कोई ऐसी रियायत कि राज्य सरकार ब्याज की दर के संबंध में 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ही ब्याज की हकदार है । यह साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स वाले विनिश्चय के प्रति निर्देश से किए गए एक कथन के सिवाय कुछ भी नहीं होगा और ऐसा कोई कथन तब आदेश को चुनौती दिए जाने के मार्ग में बाधक नहीं होगा यदि राज्य सरकार की यह राय है कि वह उच्चतर ब्याज दर प्राप्त करने की हकदार है । (पैरा 12 और 13)

जब कभी दर या टैरिफ में किसी पुनरीक्षण के संबंध में कोई अंतरिम रोकादेश दिया जाता है, तब जब तक अंतरिम रोक मंजूर करने वाले आदेश या रिट याचिका को खारिज करने वाले अंतिम आदेश में अन्यथा विनिर्दिष्ट नहीं किया जाता है, रिट याचिका के खारिज या अंतरिम आदेश के बातिल हो जाने पर अंतरिम आदेश के फायदाग्राही को उस रकम पर, जो अंतरिम आदेश के कारण विधारित की गई है या संदत्त नहीं की गई है, ब्याज का संदाय करना होगा । जहां कानून या संविदा में ब्याज की दर विनिर्दिष्ट की

गई है वहां प्रायः उसी दर पर ब्याज का संदाय करना होगा । जहां ब्याज के संदाय के लिए कोई कानूनी या संविदात्मक उपबंध न हो वहां भी न्यायालय को अंतिम रोकादेश को बातिल करते समय या रिट याचिका को खारिज करते समय जब तक ऐसा न करने के लिए विशेष कारण न हों, प्रत्यास्थापन के तौर पर किसी युक्तियुक्त दर पर ब्याज का संदाय करने का निदेश देना होगा । कोई अन्य निर्वचन करना बेईमान देनदारों को टैरिफ/दरों में किए गए पुनरीक्षण को चुनौती देते हुए रिट याचिकाएं फाइल करने और अंतिम रोकादेश अभिप्राप्त करने का प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करना होगा । यदि विधारित की गई रकम पर समुचित ब्याज का संदाय करके प्रत्यास्थापन करने संबंधी बाध्यता को कड़ाई से लागू नहीं किया जाता है तो हारने वाला अन्यायपूर्ण मुकदमेबाजी का सहारा लेकर अंततः वित्तीय फायदा उठा लेगा और जीतने वाला अंत में अपना कोई दोष न होने पर भी वित्तीय रूप से हानि उठाएगा । (पैरा 17)

विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि नियम 64-क में यह उपबंध है कि राज्य सरकार 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर साधारण ब्याज प्रभारित कर "सकेगी", यह कि चूंकि यह एक समर्थकारी उपबंध है इसलिए 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज प्रभारित करने का कोई आदेश या बाध्यता नहीं है और यह कि इसलिए राज्य सरकार को समुचित पात्र मामलों में 24 प्रतिशत से कम दर पर ब्याज प्रभारित करने का विवेकाधिकार प्राप्त है । राज्य सरकार को ब्याज की दर के संबंध में ऐसा कोई विवेकाधिकार नहीं दिया गया है । यह नियम 31 और 27 और पट्टा विलेख के कानूनी प्ररूप (प्ररूप - ट) के निबंधनों को नियम 64-क के साथ पढ़ने से स्पष्ट हो जाएगा । (पैरा 18 और 19)

24 प्रतिशत ब्याज की दर पट्टे के मानक प्ररूप के भाग 6 के खंड (3) में उसी संशोधन अर्थात् सा. का. नि. सं. 129(अ), तारीख 20 फरवरी, 1991 द्वारा प्रतिस्थापित की गई थी जिसके द्वारा नियम 64-क में उक्त प्रतिशतता प्रतिस्थापित की गई थी । नियम 64-क में "साधारण ब्याज प्रभारित कर सकेगी" शब्दों को "अधिनियम या इन नियमों में के किसी अन्य नियम के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना" शब्दों के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए । नियम 45(iv) में यह अपेक्षित है कि पट्टा-विलेख में यह शर्त होनी चाहिए कि यदि स्वामिस्व के संदाय में कोई व्यतिक्रम किया जाता है तो पट्टाकर्ता, किसी ऐसी कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जो पट्टेदार के विरुद्ध की जा सकती है, पट्टे का पर्यवसान कर

सकेगा । इसलिए, जब "24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर साधारण ब्याज प्रभारित" शब्दों के प्रति निर्देश से प्रयुक्त "सकेगी" शब्द को नियम 64-क में आने वाले "अधिनियम या किसी अन्य नियम में अंतर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना" शब्दों के साथ पढ़ा जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जब कभी भाटक/स्वामिस्व/फीस देय हो जाती है तो पट्टाकर्ता के पास उपचार के तौर पर अनेक विकल्प होते हैं । यदि भंग में सुधार करने की सूचना देने के साठ दिन के पश्चात् भी भंग में सुधार नहीं किया जाता है तो पट्टाकर्ता पट्टे का पर्यवसान कर सकेगा । अनुकल्पतः, पट्टे का पर्यवसान करने की बजाय नियम में देय रकमों पर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज प्रभारित करने का विकल्प दिया गया है । राज्य सरकार के लिए तीसरा विकल्प पट्टे का पर्यवसान करना और बकाया देयों पर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज प्रभारित करना भी है । नियम 64-क में "सकेगी" शब्द का प्रयोग प्रभारित किए जाने वाले ब्याज की दर के संबंध में विवेकाधिकार देने के संदर्भ में नहीं किया गया है बल्कि राज्य सरकार को यह अनुकल्प या विकल्प देने के लिए किया गया है कि वह पट्टे का पर्यवसान करे या 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज प्रभारित करें या दोनों । अतः, जहां पट्टे का व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप पर्यवसान नहीं किया जाता है वहां राज्य को बकाया रकम पर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज प्रभारित करना होगा । नियमों में ही यह दर्शित करने के लिए अन्य सामग्री भी है कि नियम 64-क में उल्लिखित ब्याज की दर का नम्य होना आशयित नहीं था और उसमें उल्लिखित ब्याज की दर को असंदाय/व्यतिक्रम के सभी मामलों में लागू करना होगा । जब नियम 64-क में तारीख 20 फरवरी, 1991 की अधिसूचना द्वारा संशोधन किया गया था जिसके द्वारा ब्याज की दर बढ़ाकर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर दी गई थी, तब पट्टे के मानक प्ररूप (प्ररूप - ट) के भाग 4 के खंड (3) में भी संशोधन किया गया था और सभी देयों पर संदेय ब्याज की दर बढ़ाकर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर दी गई थी । प्ररूप - ट के उक्त खंड से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्याज की दर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष होनी चाहिए और राज्य सरकार को किसी कम दर पर ब्याज प्रभारित करने का कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है । (पैरा 20 और 21)

यह सही है कि 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज बाजार में उधार की साधारण ब्याज दर से काफी अधिक है । किन्तु यह शास्तिक प्रकृति का नहीं है । खनन से प्राप्त होने वाला राजस्व राज्य सरकारों के गैर-कर

राजस्व का बहुत बड़ा स्रोत है । खनन पट्टेदारों से खनन देय तुरंत और व्यतिक्रम के बिना संदत्त करने की प्रत्याशा की जाती है । यदि नियमों के अधीन ब्याज की कम दर का उपबंध किया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप बेईमान पट्टेदार विलंबकारी गतिविधियों में आलिप्त हो जाएंगे । नियम 64-क का आशय ब्याज की उच्चतर दर का उपबंध करके ऐसे व्यवहार को निरुत्साहित करना है जो कि राजस्व की वसूली के लिए हानिकर हो । अतः, जब राज्य सरकार पट्टे का पर्यवसान न करने का मार्ग अपना लेती है तो 24 प्रतिशत की दर पर ब्याज प्रभारित करना आज्ञापक है और राज्य सरकार के पास ब्याज की दर के संबंध में कोई विवेकाधिकार नहीं बचता । (पैरा 22)

जहां कानून या संविदा में ब्याज की विनिर्दिष्ट दर विहित की जाती है वहां न्यायालय को सामान्यतः ब्याज अधिनिर्णीत करते समय ऐसी दर को अंगीकार करना चाहिए सिवाय वहां जहां कि न्यायालय विशेष और आपवादिक कारणों से ब्याज की उच्चतर या निम्नतर दर अधिनिर्णीत करना चाहता है । अब इस बात पर विचार करना है कि क्या इस मामले में कानूनी ब्याज को घटाने के लिए कोई विशेष या आपवादिक परिस्थितियां हैं । विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों में से एक (जे. के. उदयपुर उद्योग लिमिटेड) के मामले में, अंतरिम रोकादेश मंजूर करते समय कि स्पष्ट रूप से यह निदेश दिया गया था कि रिट याचिका में असफल होने की दशा में रिट याची को 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय करना होगा । यह अंतरिम आदेश की शर्त थी और इसलिए यह संभव है कि पक्षकारों ने इस आधार पर सद्भाविक रूप से कार्यवाही की कि ब्याज केवल 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष होगा । विरोध करने वाले अन्य प्रत्यर्थियों की रिट याचिकाओं में, रोकादेश मंजूर करते समय ब्याज के संबंध में ऐसी कोई शर्त नहीं थी । किन्तु यह संभव है कि विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने इस तथ्य के कारण कि रोकादेश मंजूर करते समय ब्याज का संदाय करने के लिए कोई शर्त नहीं थी, यह सोचा कि उन्हें कानूनी ब्याज-दर पर संदाय करने की आवश्यकता नहीं होगी । यह भी महत्वपूर्ण है कि राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् महाधिवक्ता ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष यह दलील दी थी कि राज्य सरकार केवल 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज की हकदार थी । इन मामलों की असाधारण और विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी उस स्वामिस्व की बाबत जो तारीख 17 फरवरी, 1992 और उनकी अपनी-अपनी रिट याचिकाओं के खारिज किए जाने की तारीख के बीच देय हुआ था, 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष

की दर पर ब्याज के हकदार होंगे । रिट याचिकाओं के खारिज किए जाने के बाद की अवधि के लिए, विरोध करने वाले प्रत्यर्थी उक्त रकम पर संदाय की तारीख तक 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय करने के लिए दायी होंगे । अंतिम मामले (श्री सीमेंट) में विरोध करने वाले प्रत्यर्थी ने एक अतिरिक्त दलील दी । यह दलील दी गई थी कि उसके मामले में पट्टा-विलेख के खंड VI(iii) में यह उपबंध था कि ऐसा स्वामिस्व, जिसका विहित समय के भीतर संदाय नहीं किया गया था, 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर साधारण ब्याज का संदाय करेगा । पट्टा खनिज और रियायत नियम, 1960 द्वारा शासित होता है और पट्टा-विलेख का निष्पादन ही नियमों, अर्थात् नियम 31 की अपेक्षाओं में से एक अपेक्षा के अनुपालन में है । जब नियम 64-क में ब्याज की दर को बढ़ाकर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष करने वाली अधिसूचना द्वारा संशोधन कर दिया गया था तब पट्टा-विलेख में के किसी ऐसे निबंधन को, जिसमें ब्याज की कम दर विहित की गई है, उस तारीख से नियम 64-क के सामने समर्पण करना होगा क्योंकि नियम पट्टे के निबंधनों पर अभिभावी होगा । परिणामस्वरूप प्रत्येक मामले में ब्याज की दर निम्नलिखित रूप में उपांतरित की जाती है - (i) तारीख 17 फरवरी, 1992 से (तारीख 17 फरवरी, 1992 की अधिसूचना को चुनौती देने वाली) संबंधित रिट याचिका के खारिज किए जाने की तारीख तक स्वामिस्व इत्यादि के बकाया पर ब्याज की दर 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष होगी । (ii) रिट याचिका के खारिज किए जाने की तारीख से संदाय करने की तारीख तक ब्याज की दर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष होगी । (पैरा 27, 28, 29 और 30)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 1 एस. सी. सी. 216 : **नव भारत फैरो एलायज़ लिमिटेड** बनाम **ट्रांसमिशन कारपोरेशन आफ आन्ध्र प्रदेश लिमिटेड** ;	15
[2005]	(2005) 13 एस. सी. सी. 151 : **राजस्थान हाउसिंग बोर्ड** बनाम **कृष्णा कुमारी** ;	15
[1997]	(1997) 5 एस. सी. सी. 772 : **कनोरिया केमिकल्स एंड इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड** ।	15,27,28

प्रभेदित निर्णय

[2001] (2001) 1 एस. सी. सी. 91 :
सौराष्ट्र सीमेंट एंड केमिकल इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड बनाम **भारत संघ** । 9,24,26

निर्दिष्ट निर्णय

[2003] (2003) 8 एस. सी. सी. 648 :
साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम **मध्य प्रदेश रोज्य** ; 9,12,13,14, 16,23,24,25,29

[1995] (1995) सप्ली. (1) एस. सी. सी. 642 :
मध्य प्रदेश राज्य बनाम **महालक्ष्मी फैब्रिक मिल्स लिमिटेड** । 6,26

अपीली (सिविल) अधिकारिता : **2011 की सिविल अपील सं. 4927-4932.**

1997 की एकल न्यायपीठ सिविल रिट याचिका सं. 4267 में राजस्थान उच्च न्यायालय की जोधपुर न्यायपीठ के तारीख 14 नवम्बर, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री हरीश साल्वे, सोली जे. सोराबजी, वी. शेखर, ज्येष्ठ अधिवक्ता, डा. मनीष सिंघवी, अपर महाधिवक्ता, डी. के. देवेश, साहिल एस. चौहान, मिलिंद कुमार, आर. गोपालकृष्णन्, यू. ए. राणा, देविना सहगल (मैसर्स गगरत एंड कंपनी की ओर से) प्रवीण कुमार और के. वी. मोहन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. वी. रवीन्द्रन ने दिया ।

न्या. रवीन्द्रन – इजाजत दी जाती है ।

2. विशेष इजाजत लेकर की गई इन अपीलों में अपीलार्थियों ने राजस्थान उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के उन आदेशों को चुनौती दी

है जिनके द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश के उस सामान्य आदेश के विरुद्ध फाइल की गई उनकी अपीलें खारिज कर दी गई थीं जिसके द्वारा स्वामिस्व के बकाया पर ब्याज 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की बजाय, जैसी कि राजस्थान राज्य द्वारा मांग की गई थी, 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक निर्बंधित कर दिया गया था ।

3. इन अपीलों में से प्रत्येक में प्रथम प्रत्यर्थी चूना पत्थर के खनन पट्टे का धारक है या था । खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 (जिसे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 9 खनन पट्टों की बाबत स्वामिस्वों के संबंध में है । उसकी उपधारा (2) में खनन पट्टे के धारक से यह अपेक्षित है कि वह पट्टाकृत क्षेत्र में से उसके द्वारा हटाए या खपाए गए किसी खनिज की बाबत उस दर पर स्वामिस्व का संदाय करे जो उस खनिज की बाबत अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में तत्समय विनिर्दिष्ट है । उसकी उपधारा (3) केन्द्रीय सरकार को राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा द्वितीय अनुसूची में संशोधन करने के लिए सशक्त करती है जिससे कि उन दरों में वृद्धि की जा सके जिन पर किसी खनिज की बाबत ऐसी तारीख से जो कि अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, स्वामिस्व संदेय होगा ।

4. केन्द्रीय सरकार ने तारीख 3 मई, 1987 की अधिसूचना द्वारा अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में संशोधन किया था और चूना पत्थर की बाबत स्वामिस्व 4.50 रुपए प्रति टन से बढ़ाकर 10 रुपए प्रति टन कर दिया था । तारीख 17 फरवरी, 1992 की अधिसूचना द्वारा, अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में पुनः संशोधन किया गया था और चूना पत्थर के लिए स्वामिस्व की दर 10 रुपए प्रति टन से बढ़ाकर 25 रुपए प्रति टन कर दी गई थी ।

5. इन अपीलों में संबंधित प्रथम प्रत्यर्थी ने (जिन्हें एक साथ "विरोध करने वाले प्रत्यथा" कहा गया है) अधिनियम की धारा 9(3) और तारीख 17 फरवरी, 1992 की उस अधिसूचना की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती देते हुए, जिसके द्वारा स्वामिस्व की दर 10 रुपए प्रति टन से बढ़ाकर 25 रुपए प्रति टन कर दी गई थी, रिट याचिकाएं फाइल कीं । उच्च न्यायालय ने सभी मामलों में (सिवाय जे. के. उदयपुर उद्योग लिमिटेड के मामले में) अंतरिम आदेश जारी कर दिए थे, जिनके द्वारा राज्य सरकार को यह निदेश दिया गया था कि वह रिट याचियों द्वारा 10 रुपए प्रति मीट्रिक टन की दर पर स्वामिस्व का संदाय करने और 15 रुपए प्रति

मीट्रिक टन के अंतर के लिए बैंक प्रतिभूति प्रस्तुत करने के अधीन रहते हुए तारीख 17 फरवरी, 1992 की अधिसूचना के अनुसरण में 25 रुपए प्रति मीट्रिक टन की दर पर स्वामिस्व की वसूली करने संबंधी प्रपीड़क कदम न उठाए । जे. के. उदयपुर उद्योग लिमिटेड के मामले में, उच्च न्यायालय ने इस अतिरिक्त शर्त के साथ अन्य मामलों की तरह अंतरिम आदेश किया कि यदि उक्त रिट याची अंततोगत्वा रिट याचिका में असफल हो जाता है तो रिट याची से देय बकाया रकम की वसूली 18 प्रतिशत वार्षिक दर पर ब्याज सहित की जाएगी ।

6. अंततः विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा अधिनियम की धारा 9(3) और स्वामिस्व में वृद्धि करने वाली तारीख 17 फरवरी, 1992 की अधिसूचना को चुनौती देते हुए फाइल की गई अनेक रिट याचिकाएं **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **महालक्ष्मी फैब्रिक मिल्स लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अनुसरण करते हुए वर्ष 1996 में खारिज कर दी गई थी जिसमें इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 9(3) और स्वामिस्व की दर को पुनरीक्षित करने वाली अधिसूचना की विधिमान्यता को कायम रखा गया था । ऐसी खारिजी के परिणामस्वरूप विरोध करने वाले प्रत्येक प्रत्यर्थी ने यह दावा किया है कि उन्होंने वर्ष 1996-1997 में स्वामिस्व के अंतर (अर्थात्, 15 रुपए प्रति मीट्रिक टन की दर पर) का संदाय कर दिया है ।

7. खनिज रियायत नियम, 1960 (जिन्हें संक्षेप में "नियम" कहा गया है) के नियम 64-क में स्वामिस्व और अन्य देयों के बकाया पर ब्याज उद्‌गृहीत करने का उपबंध है और उसे नीचे उद्धृत किया जाता है :-

> *"64-क राज्य सरकार, अधिनियम या इन नियमों में के किसी अन्य नियम में अंतर्विष्ट उपबंधों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, किसी भाटक, स्वामिस्व या नियम 54 के नियम (1) के अधीन संदेय फीस से भिन्न फीस, या अधिनियम या इन नियमों के अधीन या किसी

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :-

> "64-A. The State Government may, without prejudice to the provisions contained in the Act or any other rule in these rules, charge simple interest at the rate of 24% per annum on any rent, royalty or fee, other than the fee payable under sub-

[1] (1995) सप्ली. (1) एस. सी. सी. 642.

पूर्वेक्षण अनुज्ञप्ति या खनन पट्टे के निबंधनों और शर्तों के अधीन उस सरकार को देय किसी अन्य धनराशि पर ऐसे स्वामित्व, भाटक, फीस या अन्य धनराशि का संदाय करने के लिए उस सरकार द्वारा नियत तारीख के अवसान होने के साठवें दिन से ऐसे स्वामित्व, भाटक, फीस या अन्य धनराशि का संदाय किए जाने तक 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर साधारण ब्याज प्रभारित कर सकेगी ।"

8. राजस्थान राज्य ने विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों को निम्नलिखित मांग सूचनाएं जारी कीं जिनमें उनसे नियमों के नियम 64-क के अधीन उस स्वामित्व के अंतर पर, जो उनके द्वारा अभिप्राप्त अंतरिम आदेशों के कारण विधारित किया गया था और जिनका संदाय उनकी रिट याचिकाओं के खारिज हो जाने के पश्चात् विलंब से किया गया था, 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज संदत्त करने की मांग की गई थी :–

क्रम सं.	पट्टेदार का नाम	रिट याचिका सं. (जिसमें स्थगन आभिप्राप्त किया गया था)	मांगा गया ब्याज (रुपयों में)	मांग की तारीख
1.	जे. के. सिंथेटिक लिमिटेड	1992 की रिट याचिका सं. 5721	6,98,54,031	6.11.1997
2.	बिरला कारपोरेशन लिमिटेड	1992 की रिट याचिका सं. 6008	5,99,81,784	24.7.1997
3.	जे. के. उदयपुर उद्योग लिमिटेड	1993 की रिट याचिका सं. 3871	1,12,76,364	12.3.1997

---

rule (1) of Rule 54, or other sum due to that government under the Act or these rules or under the terms and conditions of any prospecting licence or mining lease from the sixtieth day of the expiry of the date fixed by that government for payment of such royalty, rent fee or other sum and until payment of such royalty, rent fee or other suit is made."

4.	जे. के. सिंथेटिक लिमिटेड	1992 की रिट याचिका सं. 5300	20,04,474	24.7.1997
5.	जे. के. कारपोरेशन लिमिटेड	1992 की रिट याचिका सं. 5202	1,83,10,418	4.11.1996
6.	श्री सीमेंट लिमिटेड	1992 की रिट याचिका सं. 5004	2,91,89,622	21.1.1997

9. विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने इस प्रक्रम पर यह दलील देते हुए ब्याज की मांग करने वाली सूचनाओं को चुनौती देते हुए दूसरी बार रिट याचिकाएं फाइल कीं कि वे ब्याज का संदाय करने के लिए दायी नहीं हैं । उन्होंने नियमों के नियम 64-क की विधिमान्यता को भी चुनौती दी थी । उन याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान इस न्यायालय ने **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में नियम 64-क की विधिमान्यता को कायम रखा था । उस मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर, जिनकी अवेक्षा उक्त निर्णय के पैरा 30 में की गई थी, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किए गए उस विवेकाधिकार में हस्तक्षेप नहीं करेगा जिसके द्वारा ब्याज की दर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष से घटाकर 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर दी गई थी और यह स्पष्ट कर दिया गया था कि तथापि, इसे किसी अन्य मामले में पूर्व-निर्णय के रूप में नहीं माना जाएगा । उक्त विनिश्चय के पश्चात् विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं में ब्याज की दर पर विचार किया जाना शेष था । विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने रिट याचियों के रूप में विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष यह निवेदन किया कि 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का दावा कठोर, अत्यधिक और असाम्यापूर्ण था और 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष से उच्चतर दर पर ब्याज प्रभारित नहीं किया जाना चाहिए । उन्होंने **सौराष्ट्र सीमेंट एंड केमिकल इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के

[1] (2003) 8 एस. सी. सी. 648.

[2] (2001) 1 एस. सी. सी. 91.

विनिश्चय का अवलंब लिया जिसमें इस न्यायालय ने असंदत्त स्वामिस्व पर उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित ब्याज की दर (18 प्रतिशत प्रतिवर्ष) को घटाकर 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर दिया था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 11 अगस्त, 2005 के सामान्य आदेश द्वारा विरोध करने वाले छह प्रत्यर्थियों की रिट याचिकाएं भागतः मंजूर कर ली । उसने यह उल्लेख किया कि महाधिवक्ता ने यह निवेदन किया था कि राज्य सरकार 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज की हकदार थी । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह उल्लेख किया कि उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों की प्रवृत्ति से यह दर्शित होता था कि राज्य को विलंब से किए गए संदायों पर कम से कम 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज मिलना चाहिए । परिणामस्वरूप, उसने ब्याज की मांग को 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की सीमा तक ही कायम रखा और 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की उच्चतर दर पर ब्याज की मांग को इस शर्त पर अपास्त कर दिया कि यदि विलंब से किए गए संदायों पर 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज तीन मास के भीतर संदत्त नहीं किया जाता है तो संबंधित रिट याची 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज संदत्त करने के दायी होंगे । विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने यह कथन किया है कि उनमें से सभी ने विलंब से किए गए संदायों पर तीन मास की अवधि के भीतर 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय कर दिया है । तथापि, स्थिति वही है ।

10. राज्य सरकार ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती देते हुए अंतर-न्यायालीय अपीलें फाइल कीं । उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने तारीख 14 नवम्बर, 2009, 13 नवम्बर, 2006, 13 मार्च, 2007, 14 नवम्बर, 2006 और 4 नवम्बर, 2009 के आक्षेपित आदेशों द्वारा उन अपीलों को इस आधार पर खारिज कर दिया कि विद्वान् एकल न्यायाधीश का आदेश विद्वान् महाधिवक्ता की स्वीकृति/रियायत पर आधारित था और इसलिए इस आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । राज्य सरकार द्वारा विशेष इजाजत लेकर फाइल की गई इन अपीलों में उक्त आदेशों को चुनौती दी गई है ।

11. जो दलीलें दी गई हैं, उनसे निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होते हैं :–

(i) क्या राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले महाधिवक्ता ने 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज से संबंधित अधिनिर्णय से सहमति व्यक्त थी ?

(ii) जब उच्च न्यायालय उद्ग्रहण को चुनौती देने वाली किसी रिट याचिका में, जो कि अंततः ब्याज का संदाय करने के लिए किसी विनिर्दिष्ट निदेश के बिना खारिज कर दी जाती है, संदाय के लिए की गई मांग के संबंध में अंतरिम रोक प्रदान कर देता है तब क्या प्रत्यर्थी अंतरिम आदेश के अंतर्गत आने वाली अवधि के लिए देय रकम पर ब्याज का दावा कर सकता है ?

(iii) क्या नियम 64-क राज्य सरकार को समुचित या पात्र मामलों में 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष से कम दर पर ब्याज प्रभारित करने के लिए कोई विवेकाधिकार निहित करता है ?

(iv) क्या अधिनिर्णीत 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज की दर में वृद्धि करना अपेक्षित है ?

प्रश्न सं. (i) के संबंध में

12. प्रथम प्रश्न यह है कि क्या विद्वान् एकल न्यायाधीश का आदेश किसी सहमति पर आधारित है और क्या राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् महाधिवक्ता ने इस बात को स्वीकार किया था कि राज्य सरकार केवल 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज की हकदार है । हम विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश के सुसंगत भाग को नीचे उद्धृत करते हैं जिसमें विद्वान् महाधिवक्ता द्वारा किए गए निवेदन के प्रति निर्देश किया गया है :–

> "दूसरी ओर, विद्वान् महाधिवक्ता ने यह निवेदन किया है कि राज्य सरकार 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज की हकदार है किन्तु माननीय उच्चतम न्यायालय की वर्तमान प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए, सरकार को स्वामित्व की रकम के अंतर का विलंब से संदाय करने पर कम से कम 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज अवश्य मिलना चाहिए, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिनिर्णीत किया है ।
>
> पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेलों की सुनवाई करने के पश्चात् मेरी यह राय है कि प्रस्तुत मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में, **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज की मांग से न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हो जाएगी ।"

विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष महाधिवक्ता ने एकमात्र दलील यह दी

थी कि राज्य सरकार 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज की हकदार है । इसके बाद की गई यह मताभिव्यक्ति कि उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों की प्रवृत्ति के अनुसार राज्य सरकार को विलंब से किए गए संदायों पर कम से कम 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज मिलना चाहिए, जैसा कि **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय में अधिनिर्णीत किया गया है, विद्वान् एकल न्यायाधीश की मात्र मताभिव्यक्ति है न कि विद्वान् महाधिवक्ता द्वारा दी गई कोई रियायत है । इसके अलावा, विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश के पश्चात्वर्ती पैरा से यह संदेह से परे स्पष्ट हो जाता है कि वह आदेश न तो सहमति पर और न ही रियायत पर आधारित था बल्कि वह **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अनुसरण करते हुए गुणागुण के आधार पर किया गया था । इसलिए, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ की यह उपधारणा कि विद्वान् महाधिवक्ता ने रियायत दी थी और विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश एक सहमत आदेश था और इसलिए राज्य सरकार विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश को चुनौती नहीं दे सकेगी, स्पष्टतः त्रुटिपूर्ण है । अतः, खंड न्यायपीठ का आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है ।

13. भले ही यह मान लिया जाए कि विद्वान् महाधिवक्ता ने यह दलील दी थी कि उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय की वर्तमान प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए, सरकार को स्वामिस्व की रकम के अंतर का विलंब से संदाय करने पर, जैसा कि **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिनिर्णीत किया गया था, कम से कम 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज मिलना चाहिए, तो भी वह न तो कोई स्वीकृति होगी और न ही कोई ऐसी रियायत कि राज्य सरकार ब्याज की दर के संबंध में 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ही ब्याज की हकदार है । यह **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय के प्रति निर्देश से किए गए एक कथन के सिवाय कुछ भी नहीं होगा और ऐसा कोई कथन तब आदेश को चुनौती दिए जाने के मार्ग में बाधक नहीं होगा यदि राज्य सरकार की यह राय है कि वह उच्चतर ब्याज दर प्राप्त करने की हकदार है ।

<u>प्रश्न सं. (ii) के संबंध में</u>

14. विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने ब्याज की मांग और नियम 64-क की विधिमान्यता को इन दो आधारों पर चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष दूसरी बार रिट याचिकाएं फाइल कीं : कि नियम 64-क अविधिमान्य था; यह कि ब्याज की दर अत्यधिक थी । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने

साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स (उपर्युक्त) वाले इस विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए प्रथम दलील को नकार दिया । तथापि, उसने द्वितीय दलील को स्वीकार कर लिया और ब्याज की दर 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक निर्बंधित कर दी । विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने उच्च न्यायालय के उस आदेश को चुनौती नहीं दी है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वे 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय करने के लिए दायी हैं । उन्होंने वास्तव में उस दर पर ब्याज का संदाय कर दिया है । हमारे समक्ष ब्याज की दर में वृद्धि करने संबंधी राज्य के दावे का विरोध करने के लिए दी गई दलीलों का संबंध स्वयं दायित्व के बारे में मूल प्रश्न से है । यह दलील दी गई थी कि उनके द्वारा वृद्धि को चुनौती दिए जाने के कारण और उच्च न्यायालय के अंतरिम रोकादेश को ध्यान में रखते हुए वे स्वामिस्व की रकम में हुई वृद्धि पर ब्याज संदत्त करने के लिए दायी नहीं थे । विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा यह दलील दी गई थी कि भले ही स्वामिस्व की दर पुनरीक्षित करने वाली तारीख 17 फरवरी, 1992 की अधिसूचना को चुनौती देने वाली रिट याचिकाएं अंततः खारिज कर दी गई थीं, तो भी उच्च न्यायालय द्वारा स्वामिस्व की रकम के अंतर पर ब्याज संदाय करने के संबंध में कोई विनिर्दिष्ट निदेश न दिए जाने के कारण वे रोकादेश के प्रवर्तन में रहने की अवधि के दौरान कोई ब्याज संदत्त करने के लिए दायी नहीं थे । यह प्रश्न अब अनिर्णीत विषय नहीं रहा है । हम इस न्यायालय के ऐसे विनिश्चयों के प्रति निर्देश कर सकते हैं जिनमें रोकादेश की अवधि के लिए, जब रोकादेश अंततः बातिल कर दिया जाता है, ब्याज का संदाय करने संबंधी दायित्व के बारे में स्पष्ट रूप से अधिकथित किया गया है ।

15. **कनोरिया केमिकल्स एंड इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विद्युत प्रभारों को पुनरीक्षित करने वाली किसी अधिसूचना में रोक मंजूर कर दिए जाने का प्रभाव उपभोक्ता को, यदि और जब भी रिट याचिकाएं अंततः खारिज कर दी जाती हैं, अंतरिम रोक के कारण उसके द्वारा विधारित रकम पर ब्याज (या विलंब संदाय अधिभार) संदत्त करने संबंधी उसकी बाध्यता से अवमुक्त करना नहीं होता है । उक्त सिद्धांत निम्नलिखित तर्काधार पर आधारित था :–

---

[1] (1997) 5 एस. सी. सी. 772.

"अन्यथा अभिनिर्धारित करने का अभिप्राय यह होगा कि यद्यपि विद्युत बोर्ड, जो कि रिट याचिकाओं में प्रत्यर्थी था, उनमें सफल रहा है तथापि, उसे विलंब से किए गए संदाय पर अधिभार से, जो कि उसे टैरिफ नियमों/ विनियमों के अधीन देय था, वंचित किया गया है । यह ऐसा मामला होगा जिसमें बोर्ड न्यायालय के आदेशों के कारण और अपना कोई दोष न होने पर भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है । वह रिट याचिकाओं में सफल हो जाता है किन्तु फिर भी नुकसान उठाता है । उपभोक्ता रिट याचिका फाइल करता है, दरों को पुनरीक्षित करने वाली अधिसूचना के प्रवर्तन पर रोकादेश प्राप्त करता है और अधिसूचना की विधिमान्यता को दी गई चुनौती में असफल होता है फिर भी उसे रोक की अवधि के लिए विलंब से किए गए संदाय पर अधिभार का संदाय करने की बाध्यता से अवमुक्त कर दिया जाता है, जिसका संदाय करने के लिए वह प्रदाय के कानूनी निबंधनों और शर्तों के अनुसार दायी है - जो निबंधन और शर्तें वास्तव में उसके द्वारा बोर्ड के साथ की गई प्रदाय संबंधी संविदा का भाग गठित करते हैं । हम यह नहीं समझते कि ऐसी कोई अनुचित और असाम्यापूर्ण प्रतिपादना विधि की दृष्टि से कायम रखी जा सकती है ।....

यह भी समान रूप से सुस्थापित है कि किसी रिट याचिका/वाद या अन्य कार्यवाही का निपटारा होने तक मंजूर किए गए रोकादेश का मूल कार्यवाही के खारिज हो जाने के साथ ही अंत हो जाता है और यह कि ऐसे मामले में न्यायालय का यह कर्तव्य होता है कि वह पक्षकारों को उसी स्थिति में ला दें जिसमें वे न्यायालय के अंतरिम आदेशों के न होने पर थे । कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाने का परिणाम न्यायालय के कार्य या आदेश द्वारा पक्षकार पर (इस मामले में बोर्ड) उसके किसी दोष के बिना उस पर प्रतिकूल प्रभाव डालना होगा और इसका अभिप्राय रिट याची को उसके असफल होने के बावजूद पुरस्कृत करना होगा । हम यह नहीं समझते कि न्यायालयों द्वारा ऐसे किसी अन्यायपूर्ण परिणाम का समर्थन किया जा सकता है । वास्तव में, इस मामले में उपभोक्ताओं द्वारा तर्कसम्मत रूप से दी गई दलील का अर्थ यह होना चाहिए कि रोकादेश के अंतर्गत आने वाली अवधि के लिए भी वृद्धित दरें इसलिए संदेय नहीं हैं क्योंकि टैरिफ में पुनरीक्षण/वृद्धि करने वाली अधिसूचना के प्रवर्तन पर ही रोक लगा दी

गई थी । अपीलार्थियों की ओर से ऐसी कोई दलील नहीं दी गई थी । यह अबोधगम्य है कि यह कैसे कहा जा सकता है कि वृद्धित दरें तो संदेय हैं किन्तु उन पर विलंब से किए गए संदाय के लिए अधिभार संदेय नहीं है जब कि वृद्धि और विलंब से किए जाने वाले संदाय पर अधिभार के लिए उसी अधिसूचना में उपबंध किया गया है जिसके प्रवर्तन पर रोक लगाई गई थी ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

उपर्युक्त सिद्धांतों का इस न्यायालय द्वारा **राजस्थान हाउसिंग बोर्ड** बनाम **कृष्णा कुमारी**[1] और **नव भारत फैरो एलायज़ लिमिटेड** बनाम **ट्रांसमिशन कारपोरेशन आफ आन्ध्र प्रदेश लिमिटेड**[2] वाले मामलों में अनुसरण किया गया है और उन्हें दोहराया गया है ।

16. इस न्यायालय द्वारा **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में नियम 64-क की सांविधानिक विधिमान्यता की परीक्षा करते समय इसी प्रश्न पर विचार किया गया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय करने के लिए उपबंध करने वाला नियम 64-क विधिमान्य है । उस मामले में भी, इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई थी कि स्वामिस्व की बढ़ाई गई रकम का संदाय न करना उच्च न्यायालय के अंतरिम आदेशों द्वारा संरक्षित था और इसलिए उन्हें तब तक ब्याज का संदाय करने लिए दायी नहीं ठहराया जाना चाहिए जब तक कि वह धनराशि अंतरिम आदेशों के संरक्षात्मक छत्र के अधीन विधारित की गई थी । इसके अलावा, यह दलील दी गई थी कि मात्र इस कारण कि रिट याचिका अंतिम रूप से खारिज कर दी गई थी, इसका परिणाम यह नहीं है कि अंतिम आदेश दूषित या त्रुटिपूर्ण हो जाता है क्योंकि वह अब भी पूर्णतः न्यायोचित अंतिम आदेश है । इसके अलावा यह दलील दी गई थी कि चूंकि उन्होंने तारीख 17 फरवरी, 1992 की अधिसूचना की विधिमान्यता को कायम रखे जाने के ठीक पश्चात् स्वामिस्व में के अंतर का संदाय करके अपनी सद्‌भाविकता दर्शित कर दी थी इसलिए उन्हें ब्याज का संदाय करने के लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता था । इन सभी दलीलों को इस न्यायालय द्वारा इस आधार पर नामंजूर कर दिया गया था कि प्रत्यास्थापन के सिद्धांत से उक्त

---

[1] (2005) 13 एस. सी. सी. 151.

[2] (2011) 1 एस. सी. सी. 216.

निवेदनों का पूरा उत्तर मिल जाता है । इस न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "प्रत्यास्थापन के सिद्धांत को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 144 में कानूनी रूप से मान्यता दी गई है । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अंतर्गत न केवल वह डिक्री आती है जिसमें फेरफार या उलटाव किया गया है, जो अपास्त या उपांतरित की गई है बल्कि उसमें ऐसा आदेश भी आता है जो डिक्री के समतुल्य है । इस उपबंध की परिधि काफी व्यापक है जिससे कि उसमें किसी डिक्री या आदेश में लगभग सभी किस्म के फेरफार, उलटाव, अपास्त करना या उपांतरण आ सके । न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश अंतिम विनिश्चय में विलीन हो जाता है । किसी पक्षकार के पक्ष में पारित अंतरिम आदेश की विधिमान्यता अंतिम विनिश्चय के अंतरिम प्रक्रम पर सफल हुए पक्षकार के विरुद्ध जाने की दशा में उलट जाती है । जब तक न्यायालय द्वारा अन्यथा आदेश नहीं कर दिया जाता है, अंततः सफल पक्षकार सभी समीचीनता के साथ प्रतिकर और उसी स्थिति में रखने की मांग करने में न्यायोचित होगा जिसमें वह तब होता यदि उसके विरुद्ध अंतरिम आदेश पारित न किया गया होता । सफल पक्षकार (क) विरोधी पक्षकार द्वारा न्यायालय के अंतरिम आदेश के अधीन अर्जित फायदे के परिदान, या (ख) उसे जो हानि हुई है उसके प्रत्यास्थापन की मांग कर सकता है; और तब तक ऐसा करना न्यायालय का कर्तव्य है जब तक उसे यह महसूस नहीं होता है कि मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में प्रत्यास्थापन से न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति होना तो दूर वे विफल हो जाएंगे । प्रत्यास्थापन के सिद्धांतों का अवलंब लेकर अंतरिम आदेश के प्रभाव को समाप्त करना उस पक्षकार की बाध्यता है जिसने न्यायालय के अंतरिम आदेश से लाभ उठाया है जिससे कि पारित किए गए उस अंतरिम आदेश के प्रभाव को समाप्त किया जा सकता जिसे न्यायालय द्वारा अंतिम विनिश्चय के प्रक्रम पर अंगीकृत तर्काधार को देखते हुए पूर्ववर्ती न्यायालय ने पारित नहीं किया होता या पारित नहीं किया जाना चाहिए था । पक्षकारों को उसी स्थिति में, जिसमें वे तब होते यदि अंतरिम आदेश अस्तित्व में न रहा होता, प्रत्यावर्तित करने के लिए किए जाने वाले किसी प्रयास में कोई दोष नहीं है ।"

17. अतः, यह स्पष्ट है कि जब कभी दर या टैरिफ में किसी

पुनरीक्षण के संबंध में कोई अंतरिम रोकादेश दिया जाता है, तब जब तक अंतरिम रोक मंजूर करने वाले आदेश या रिट याचिका को खारिज करने वाले अंतिम आदेश में अन्यथा विनिर्दिष्ट नहीं किया जाता है, रिट याचिका के खारिज या अंतरिम आदेश के बातिल हो जाने पर अंतरिम आदेश के फायदाग्राही को उस रकम पर, जो अंतरिम आदेश के कारण विधारित की गई है या संदत्त नहीं की गई है, ब्याज का संदाय करना होगा । जहां कानून या संविदा में ब्याज की दर विनिर्दिष्ट की गई है वहां प्रायः उसी दर पर ब्याज का संदाय करना होगा । जहां ब्याज के संदाय के लिए कोई कानूनी या संविदात्मक उपबंध न हो वहां भी न्यायालय को अंतिम रोकादेश को बातिल करते समय या रिट याचिका को खारिज करते समय जब तक ऐसा न करने के लिए विशेष कारण न हों, प्रत्यास्थापन के तौर पर किसी युक्तियुक्त दर पर ब्याज का संदाय करने का निदेश देना होगा । कोई अन्य निर्वचन करना बेइमान देनदारों को टैरिफ/दरों में किए गए पुनरीक्षण को चुनौती देते हुए रिट याचिकाएं फाइल करने और अंतिम रोकादेश अभिप्राप्त करने का प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करना होगा । यदि विधारित की गई रकम पर समुचित ब्याज का संदाय करके प्रत्यास्थापन करने संबंधी बाध्यता को कड़ाई से लागू नहीं किया जाता है तो हारने वाला अन्यायपूर्ण मुकदमेबाजी का सहारा लेकर अंततः वित्तीय फायदा उठा लेगा और जीतने वाला अंत में अपना कोई दोष न होने पर भी वित्तीय रूप से हानि उठाएगा । तथापि, स्थिति वही है ।

<u>प्रश्न सं. (iii) के संबंध में</u>

18. विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि नियम 64-क में यह उपबंध है कि राज्य सरकार 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर साधारण ब्याज प्रभारित कर 'सकेगी', यह कि चूंकि यह एक समर्थकारी उपबंध है इसलिए 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज प्रभारित करने का कोई आदेश या बाध्यता नहीं है और यह कि इसलिए राज्य सरकार को समुचित पात्र मामलों में 24 प्रतिशत से कम दर पर ब्याज प्रभारित करने का विवेकाधिकार प्राप्त है । यह दलील दी गई है कि यदि विधायी आशय स्वामिस्व/भाटक/फीस के विलंबित संदाय के सभी मामलों में बिना अपवाद के 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज के लिए उपबंध करना था तो इस नियम की भाषा भिन्न होती और वह निम्न प्रकार पठित होता : जब कभी अधिनियम या नियमों के अधीन या किसी पूर्वोक्षण अनुज्ञप्ति या खनन पट्टे के अधीन सरकार को देय कोई भाटक, स्वामिस्व या फीस या अन्य

धनराशि नियत तारीख तक संदत्त नहीं कर दी जाती है, तब पट्टेदार या अनुज्ञप्तिधारी विलंब से किए जाने वाले संदाय पर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय करेगा । प्रत्यर्थियों द्वारा यह दलील दी गई है कि नियमों में प्रयुक्त 'सकेगी (may)' शब्द का पठन सरकार में ब्याज प्रभारित करने या ब्याज प्रभारित न करने का विवेकाधिकार निहित करने के रूप में किया जाना चाहिए और यदि ब्याज प्रभारित किया जाना है तो वह 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अनधिक किसी दर पर प्रभारित किया जाएगा ।

19. नियमों का सावधानीपूर्वक पठन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सरकार को ब्याज की दर के संबंध में ऐसा कोई विवेकाधिकार नहीं दिया गया है । यह नियम 31 और 27 और पट्टा विलेख के कानूनी प्ररूप (प्ररूप-ट) के निबंधनों को नियम 64-क के साथ पढ़ने से स्पष्ट हो जाएगा । नियम 31 में यह उपबंध है कि जहां कोई खनन पट्टा मंजूर करने के लिए कोई आदेश किया जाता है वहां प्ररूप-ट (या उस प्ररूप में जो उसके समान हो, जैसा कि प्रत्येक मामले की परिस्थितियों में अपेक्षित हो) एक पट्टा विलेख निष्पादित किया जाएगा । नियम 27 में यह विनिर्दिष्ट किया गया है कि प्रत्येक खनन पट्टा उसमें उल्लिखित शर्तों के अध्यधीन होगा । नियम 27 के खंड (5) में पर्यवसान के प्रति निर्देश किया गया है :–

>*"(5) यदि पट्टेदार, धारा 9 के अधीन यथापेक्षित स्वामिस्व के संदाय या धारा 9क के अधीन यथापेक्षित अनिवार्य भाटक का संदाय करने में कोई व्यतिक्रम करता है या उपनियम (1) के खंड (च) में निर्दिष्ट शर्त के सिवाय उपनियम (1), (2) और (3) में विनिर्दिष्ट शर्तों में से किसी शर्त का उल्लंघन करता है तो राज्य सरकार पट्टेदार को सूचना देगी जिसमें उससे सूचना की प्राप्ति की तारीख से साठ दिनों के भीतर, यथास्थिति, स्वामिस्व या अनिवार्य भाटक का

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

>"(5) If the lessee makes any default in the payment of royalty as required under section 9 or payment of dead rent as required under section 9A or commits a breach of any of the conditions specified in sub-rules (1), (2) and (3) except the condition referred to in clause (f) of sub-rule (1), the State Government shall give notice to the lessee requiring him to pay the royalty or dead rent or remedy the breach, as the case

संदाय करने या भंग का उपचार करने की अपेक्षा की जाएगी और उक्त अवधि के भीतर स्वामिस्व या अनिवार्य भाटक का संदाय नहीं किया जाता है या भंग का उपचार नहीं किया जाता है तो राज्य सरकार, ऐसी किन्हीं अन्य कार्यवाहियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जो कि उसके विरुद्ध की जा सकेंगी, पट्टे का पर्यवसान कर सकेगी और प्रतिभूति निक्षेप को पूर्णतः या भागतः समपहृत कर सकेगी ।"

उपर्युक्त उपबंध तदनुसार पट्टे के मानक प्ररूप (प्ररूप-ट) के भाग 9 के खंड (2) में शामिल किया गया है ।

20. 24 प्रतिशत ब्याज की दर पट्टे के मानक प्ररूप के भाग 6 के खंड (3) में उसी संशोधन अर्थात् सा. का. नि. सं. 129(अ), तारीख 20 फरवरी, 1991 द्वारा प्रतिस्थापित की गई थी जिसके द्वारा नियम 64क में उक्त प्रतिशतता प्रतिस्थापित की गई थी । नियम 64-क में "साधारण ब्याज प्रभारित कर सकेगी" शब्दों को "अधिनियम या इन नियमों में के किसी अन्य नियम के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना" शब्दों के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, नियम 45(iv) में यह अपेक्षित है कि पट्टा विलेख में यह शर्त होनी चाहिए कि यदि स्वामिस्व के संदाय में कोई व्यतिक्रम किया जाता है तो पट्टाकर्ता, किसी ऐसी कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जो पट्टेदार के विरुद्ध की जा सकती है, पट्टे का पर्यवसान कर सकेगा । इसलिए, जब "24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर साधारण ब्याज प्रभारित" शब्दों के प्रति निर्देश से प्रयुक्त "सकेगी" शब्द को नियम 64-क में आने वाले "अधिनियम या किसी अन्य नियम में अंतर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना" शब्दों के साथ पढ़ा जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जब कभी भाटक/स्वामिस्व/फीस देय हो जाती है तो पट्टाकर्ता के पास उपचार के तौर पर अनेक विकल्प होते हैं । यदि भंग में सुधार करने की सूचना देने के साठ दिन के पश्चात् भी भंग में सुधार नहीं किया जाता है तो पट्टाकर्ता पट्टे का पर्यवसान कर सकेगा । अनुकल्पतः, पट्टे का पर्यवसान करने की बजाय नियम

---

may be, within sixty days from the date of the receipt of the notice and if the royalty or dead rent is not paid or the breach is not remedied within the said period, the State Government may, without prejudice to any other proceedings that may be taken against him, determine the lease and forefeit the whole or pay of the security deposit."

में देय रकमों पर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज प्रभारित करने का विकल्प दिया गया है । राज्य सरकार के लिए तीसरा विकल्प पट्टे का पर्यवसान करना और बकाया देयों पर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज प्रभारित करना भी है । नियम 64-क में "सकेगी" शब्द का प्रयोग प्रभारित किए जाने वाले ब्याज की दर के संबंध में विवेकाधिकार देने के संदर्भ में नहीं किया गया है बल्कि राज्य सरकार को यह अनुकल्प या विकल्प देने के लिए किया गया है कि वह पट्टे का पर्यवसान करे या 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज प्रभारित करें या दोनों । अतः, जहां पट्टे का व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप पर्यवसान नहीं किया जाता है वहां राज्य को बकाया रकम पर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज प्रभारित करना होगा । यदि नियम 64-क का निर्वचन प्राधिकारियों को किसी भी दर पर ब्याज प्रभारित करने के किसी विवेकाधिकार और वह भी अनियंत्रित विवेकाधिकार देने के रूप में किया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप इसका दुरुपयोग और गलत तौर पर उपयोग होगा । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, पक्षकारों द्वारा दी गई ये दलीलें विचारार्थ बिल्कुल भी उद्भूत नहीं होती हैं कि क्या "सकेगी" शब्द का पठन "अवश्य करना चाहिए" या "करेगी" के रूप में किया जाना चाहिए और यदि ऐसा है तो किन परिस्थितियों में किया जाना चाहिए ।

21. नियमों में ही यह दर्शित करने के लिए अन्य सामग्री भी है कि नियम 64-क में उल्लिखित ब्याज की दर का नम्य होना आशयित नहीं था और उसमें उल्लिखित ब्याज की दर को असंदाय/व्यतिक्रम के सभी मामलों में लागू करना होगा । जब नियम 64-क में तारीख 20 फरवरी, 1991 की अधिसूचना द्वारा संशोधन किया गया था जिसके द्वारा ब्याज की दर बढ़ाकर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर दी गई थी, तब पट्टे के मानक प्ररूप (प्ररूप-ट) के भाग 4 के खंड (3) में भी संशोधन किया गया था और सभी देयों पर संदेय ब्याज की दर बढ़ाकर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर दी गई थी । हम संदर्भ के लिए प्ररूप-ट के भाग 6 के खंड (3) को नीचे उद्धृत करते हैं :–

> *"3. यदि पट्टेदार/पट्टेदारों द्वारा इन विलेखों के निबंधनों और शर्तों के अधीन राज्य सरकार को देय किसी भाटक, स्वामिस्व या अन्य

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "3. Should any rent, royalty or other sums due to the State Government under the terms and conditions of these

धनराशियों का संदाय विहित समय के भीतर नहीं किया जाता है तो ऐसे अधिकारी के प्रमाणपत्र पर, जिसे राज्य सरकार साधारण या विशेष आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे, उसकी वसूली चौबीस प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से उस पर देय साधारण ब्याज सहित भू-राजस्व के बकाया के रूप में उसी रीति में की जाएगी ।"

प्ररूप-ट के उक्त खंड से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्याज की दर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष होनी चाहिए और राज्य सरकार को किसी कम दर पर ब्याज प्रभारित करने का कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है ।

22. यह सही है कि 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज बाजार में उधार की साधारण ब्याज दर से काफी अधिक है । किन्तु यह शास्तिक प्रकृति का नहीं है । खनन से प्राप्त होने वाला राजस्व राज्य सरकारों के गैर-कर राजस्व का बहुत बड़ा स्रोत है । खनन पट्टेदारों से खनन देय तुरंत और व्यतिक्रम के बिना संदत्त करने की प्रत्याशा की जाती है । यदि नियमों के अधीन ब्याज की कम दर का उपबंध किया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप बेइमान पट्टेदार विलंबकारी गतिविधियों में आलिप्त हो जाएंगे । नियम 64-क का आशय ब्याज की उच्चतर दर का उपबंध करके ऐसे व्यवहार को निरुत्साहित करना है जो कि राजस्व की वसूली के लिए हानिकर हो । अतः, जब राज्य सरकार पट्टे का पर्यवसान न करने का मार्ग अपना लेती है तो 24 प्रतिशत की दर पर ब्याज प्रभारित करना आज्ञापक है और राज्य सरकार के पास ब्याज की दर के संबंध में कोई विवेकाधिकार नहीं बचता ।

प्रश्न (iv) के संबंध में

23. अब हम इस अंतिम प्रश्न पर विचार करेंगे कि ब्याज की दर क्या होनी चाहिए । हमने यह अवेक्षा की है कि नियम 64-क में स्पष्ट तौर पर यह उपबंध किया गया है कि जहां कोई ऐसा खनन पट्टेदार, जो भाटक या किन्हीं अन्य देयों का संदाय करने का दायी है, उसका संदाय करने में असफल रहता है वहां राज्य सरकार उस पर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर

---

presents be not paid by the lessee/lessees within the prescribed time, the same, together with simple interest due thereon at the rate of twenty four per cent per annum may be recovered on a certificate of such officer as may be specified by the State Government by general or special order, in the same manner as an arrears of land revenue."

पर साधारण ब्याज प्रभारित करने की हकदार होगी । इस नियम की विधिमान्यता को इस न्यायालय द्वारा **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में कायम रखा गया है । इसलिए, सभी विलंबित संदायों पर ब्याज 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष होना चाहिए ।

24. विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि भले ही नियम 64-क के अधीन ब्याज की दर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष है, किन्तु जब दायित्व (स्वामिस्व में वृद्धि के कारण) को चुनौती दी गई है और मामला न्यायालय में लंबित है और वृद्धि के बारे में अंतरिम रोक लगा दी गई है तब ब्याज संदत्त करने का दायित्व न्यायालय के विवेकाधिकार के भीतर होगा और न्यायालय कम दर अधिनिर्णीत कर सकता है । उन्होंने इस संबंध में **सौराष्ट्र सीमेंट** (उपर्युक्त) और **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया कि उस अवधि के लिए ब्याज, जब रोकादेश प्रवर्तन में था, 9 प्रतिशत या 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अधिक नहीं होना चाहिए ।

25. **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में, जिसमें नियम 64-क की विधिमान्यता को कायम रखा गया था, इस न्यायालय ने 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने वाले उच्च न्यायालय के विनिश्चय में निम्नलिखित तर्काधार पर हस्तक्षेप नहीं किया था :–

> "जहां तक मध्य प्रदेश राज्य द्वारा फाइल की गई अपील का संबंध है, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत ब्याज 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष के स्थान पर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष करने की ईप्सा की गई है, हम संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपनी वैवेकिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए विशेष रूप से आक्षेपित विनिश्चय में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई राय को ध्यान में रखते हुए वह अनुतोष मंजूर करने के लिए तैयार नहीं है । यह मुकदमेबाजी काफी लंबे समय तक चली । अनेक वाणिज्यिक संव्यवहार किए गए हैं और इसी बीच काफी समय बर्बाद हुआ है । वाणिज्यिक ब्याज-दरों में (जिनमें बैंक दरें भी शामिल हैं) सारवान् परिवर्तन हुए हैं और काफी समय से बैंक की ब्याज दर 12 प्रतिशत से नीचे रही है । अतः, उच्च न्यायालय ने ठीक ही (और युक्तियुक्त रूप से) यह राय अपनाई है कि 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय करने संबंधी हकदारी को कायम रखना अत्यधिक होगा और यदि मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों के आधार पर ब्याज की दर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष से

> घटाकर 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर दी जाती है तो न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हो जाएगी । हम उच्च न्यायालय के मत में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते हैं किन्तु यह स्पष्ट कर देते हैं कि यह रियायत इस मामले के तथ्यों और इस मामले के पक्षकारों तक सीमित है और इसका अर्थान्वयन खनिज रियायत नियम, 1960 के नियम 64क को अध्यारोही करने के लिए पूर्व-निर्णय के रूप में नहीं किया जाएगा । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि 12 प्रतिशत ब्याज की घटी दर का फायदा लेने के लिए देयों का संदाय आज से छह सप्ताह के भीतर किया जाना चाहिए (यदि पहले न कर दिया गया हो), आज से छह सप्ताह में संदाय करने में असफल रहने पर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज संदत्त करने का दायित्व बना रहेगा ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

अतः, यह स्पष्ट है कि उस मामले में दी गई रियायत, जिसके द्वारा केवल 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज अनुज्ञात किया गया है, उस मामले के तथ्यों और उस मामले में के पक्षकारों तक सीमित थी और इसे नियमों के नियम 64-क को अकृत या अध्यारोही करने के लिए पूर्वनिर्णय के रूप में नहीं समझा जाना है ।

26. **सौराष्ट्र सीमेंट** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने **महालक्ष्मी फैब्रिक मिल्स** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय का अनुसरण करते हुए स्वामिस्व में की गई वृद्धि की विधिमान्यता को चुनौती देने वाली अपीलों को खारिज करते समय ऐसे मामले पर विचार किया जिसमें उच्च न्यायालय ने स्वामिस्व में की गई वृद्धि से संबंधित अधिसूचना के अंतरिम रोक को मंजूरी दे दी थी किन्तु अंतरिम आदेश को बातिल करते समय और नियम को प्रभावोन्मुक्त करते समय 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय करने का निदेश दिया था । न्यायमूर्ति पटनायक ने (जैसे कि वे तब थे) अपने आदेश की अंतिम पंक्ति में यह मत व्यक्त करने के सिवाय कि 18 प्रतिशत अयुक्तियुक्त है, कोई विनिर्दिष्ट कारण दिए बिना ब्याज की दर को घटाकर 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर दिया । न्यायमूर्ति बनर्जी ने अपने सम्मत निर्णय में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "हमारी राय में, वार्षिक बकाया पर 18 प्रतिशत ब्याज अधिरोपित करने का संदर्भात्मक तथ्यों में समर्थन नहीं किया जा सकता है चूंकि स्वयं विधान की विधिमान्यता को ही इस न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत किया गया है । चूंकि ब्याज का संदाय न्यायालय के विवेकाधिकार के

> भीतर है इसलिए हम ब्याज अधिनिर्णीत किए जाने के संबंध में इस समय हस्तक्षेप नहीं करना चाहते हैं हालांकि जिस दर पर यह अधिनिर्णीत किया गया है उसमें संदर्भात्मक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कुछ उपांतरण करना आवश्यक है और इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि ब्याज की दर 9 प्रतिशत साधारण ब्याज होना चाहिए न कि जैसा उच्च न्यायालय द्वारा निदेश दिया गया है ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

उक्त निर्णय का सावधानीपूर्वक पठन करने पर यह दर्शित होता है कि ब्याज के प्रश्न को विनिश्चित करते समय इस न्यायालय ने नियम 64क को अनदेखा कर दिया था जो कि एक कानूनी उपबंध है जिसमें सरकार को 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का दावा करने का हकदार बनाया गया है । इस न्यायालय ने प्रकटतः इस आधार पर कार्यवाही की कि ब्याज का संदाय करने के लिए कोई कानूनी या संविदात्मक उपबंध नहीं था और इसलिए ब्याज का प्रश्न पूर्णतः न्यायालय के विवेकाधिकार के भीतर था । अतः, उक्त विनिश्चय से भी कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकेगी ।

27. हम यह पाते हैं कि **कनोरिया केमिकल्स** (उपर्युक्त) वाला विनिश्चय ऐसे मामलों में ब्याज अधिनिर्णीत करने के संबंध में न्यायालय के विवेकाधिकार के पीछे जो तर्क है उस पर पर्याप्त प्रकाश डालता है । वह मामला, जैसी कि पहले अवेक्षा की गई है, विद्युत प्रभारों में वृद्धि करने के संबंध में था । सुसंगत उपबंधों में विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबंध था कि बिलों के विलंबित संदायों के संबंध में उपभोक्ता बिल की प्रत्येक एक सौ रुपए की असंदत्त रकम पर प्रति दिन सात पैसे का अतिरिक्त प्रभार संदत्त करेगा जो कि 25.55 प्रतिशत प्रतिवर्ष बनता है । इस न्यायालय ने निम्नलिखित तर्काधार पर उसे घटाकर 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर दिया था :—

> "इसके बाद, श्री वैद्यनाथन ने यह दलील दी कि खंड 7(ख) द्वारा उपबंधित "विलंब संदाय अधिभार" की दर वास्तव में शास्तिक प्रकृति की है चूंकि वह 25.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष आती है । विद्वान काउन्सेल ने यह दलील भी दी कि याचियों ने एडोनी गिन्निंग वाले विनिश्चय को उन्हें अंतिम आदेश के अंतर्गत आने वाली अवधि के लिए ब्याज का संदाय करने की बाध्यता के अवमुक्त करने वाला समझा और यह कि चूंकि वे सद्भाविक रूप से कार्य कर रहे थे इसलिए उन्हें ब्याज की इतनी उच्च दर से अर्थदंड नहीं दिया जाना चाहिए । हम इस बात से सहमत नहीं

> हो सकते हैं कि खंड 7(ख) द्वारा उपबंधित विलंब संदाय अधिभार की दर शास्तिक है किन्तु इस मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचियों ने संभवतः एडोनी गिन्निंग वाले विनिश्चय को उन्हें रोक की अवधि के लिए ब्याज/विलंब संदाय अधिभार संदत्त करने संबंधी उनकी बाध्यता से अवमुक्त करने वाला समझा होगा, हम खंड 7(ख) के अधीन संदेय विलंब संदाय अधिभार की दर घटाकर अठारह प्रतिशत करते हैं । किन्तु यह निदेश तारीख 21 अप्रैल, 1990 की अधिसूचना को चुनौती देते हुए फाइल की गई रिट याचिकाओं में रोकादेशों के अंतर्गत आने वाली अवधि तक सीमित है और यह तारीख 1 मार्च, 1993 तक, जिसको वे रिट याचिकाएं खारिज कर दी गई थीं, सीमित है ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

अतः, जब कभी किसी उद्ग्रहण को चुनौती दी जाती है या टैरिफ अथवा दरों में की गई किसी वृद्धि को चुनौती दी जाती है और उक्त रिट कार्यवाहियों में वसूली के संबंध में अंतरिम रोकादेश कर दिया जाता है और वह रिट याचिका अंततः नामंजूर कर दी जाती है वहां न्यायालय को सामान्यतः प्रत्यास्थापन के रूप में ब्याज अधिनिर्णीत करना चाहिए । जहां कानून या संविदा में ब्याज की विनिर्दिष्ट दर विहित की जाती है वहां न्यायालय को सामान्यतः ब्याज अधिनिर्णीत करते समय ऐसी दर को अंगीकार करना चाहिए सिवाय वहां जहां कि न्यायालय विशेष और आपवादिक कारणों से ब्याज की उच्चतर या निम्नतर दर अधिनिर्णीत करना चाहता है ।

28. अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि क्या इस मामले में कानूनी ब्याज को घटाने के लिए कोई विशेष या आपवादिक परिस्थितियां हैं । विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों में से एक (जे. के. उदयपुर उद्योग लिमिटेड) के मामले में, अंतरिम रोकादेश मंजूर करते समय कि स्पष्ट रूप से यह निदेश दिया गया था कि रिट याचिका में असफल होने की दशा में रिट याची को 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय करना होगा । यह अंतरिम आदेश की शर्त थी और इसलिए यह संभव है कि पक्षकारों ने इस आधार पर सद्भाविक रूप से कार्यवाही की कि ब्याज केवल 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष होगा । विरोध करने वाले अन्य प्रत्यर्थियों की रिट याचिकाओं में, रोकादेश मंजूर करते समय ब्याज के संबंध में ऐसी कोई शर्त नहीं थी । किन्तु जैसा कि **कनोरिया केमिकल्स** (उपर्युक्त) वाले

मामले में उल्लेख किया गया था, यह संभव है कि विरोध करने वाले प्रत्यर्थियों ने इस तथ्य के कारण कि रोकादेश मंजूर करते समय ब्याज का संदाय करने के लिए कोई शर्त नहीं थी, यह सोचा कि उन्हें कानूनी ब्याज-दर पर संदाय करने की आवश्यकता नहीं होगी । यह भी महत्वपूर्ण है कि राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् महाधिवक्ता ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष यह दलील दी थी कि राज्य सरकार केवल 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज की हकदार थी । इन मामलों की असाधारण और विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अपीलार्थी उस स्वामिस्व की बाबत जो तारीख 17 फरवरी, 1992 और उनकी अपनी-अपनी रिट याचिकाओं के खारिज किए जाने की तारीख के बीच देय हुआ था, 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज के हकदार होंगे । रिट याचिकाओं के खारिज किए जाने के बाद की अवधि के लिए, विरोध करने वाले प्रत्यर्थी उक्त रकम पर संदाय की तारीख तक 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज का संदाय करने के लिए दायी होंगे ।

29. अंतिम मामले (श्री सीमेंट) में विरोध करने वाले प्रत्यर्थी ने एक अतिरिक्त दलील दी । यह दलील दी गई थी कि उसके मामले में पट्टा-विलेख के खंड VI(iii) में यह उपबंध था कि ऐसा स्वामिस्व, जिसका विहित समय के भीतर संदाय नहीं किया गया था, 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर साधारण ब्याज का संदाय करेगा । अतः, यह दलील दी गई है कि किसी भी बकाया पर ब्याज उसके मामले में 10 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता है । पट्टा खनिज और रियायत नियम, 1960 द्वारा शासित होता है और पट्टा-विलेख का निष्पादन ही नियमों, अर्थात् नियम 31 की अपेक्षाओं में से एक अपेक्षा के अनुपालन में है । जब नियम 64-क में ब्याज की दर को बढ़ाकर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष करने वाली तारीख 20 फरवरी, 1991 की अधिसूचना द्वारा संशोधन कर दिया गया था तब पट्टा-विलेख में के किसी ऐसे निबंधन को, जिसमें ब्याज की कम दर विहित की गई है, उस तारीख से नियम 64-क के सामने समर्पण करना होगा क्योंकि नियम पट्टे के निबंधनों पर अभिभावी होगा । यह स्थिति **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय से स्पष्ट होती है ।

निष्कर्ष

30. उपरोक्त कारणों से हम इन अपीलों को भागतः मंजूर करते हैं और प्रत्येक मामले में ब्याज की दर को निम्नलिखित रूप में उपांतरित करते हैं :–

(i) तारीख 17 फरवरी, 1992 से (तारीख 17 फरवरी, 1992 की अधिसूचना को चुनौती देने वाली) संबंधित रिट याचिका के खारिज किए जाने की तारीख तक स्वामिस्व इत्यादि के बकाया पर ब्याज की दर 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष होगी ।

(ii) रिट याचिका के खारिज किए जाने की तारीख से संदाय करने की तारीख तक ब्याज की दर 24 प्रतिशत प्रतिवर्ष होगी ।

अपीलें भागतः मंजूर की गईं ।

ग्रो.

[2012] 1 उम. नि. प. 164

सुदाम उर्फ राहुल कनीराम जाधव

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति हरजीत सिंह बेदी और न्यायमूर्ति चंद्रमौली कुमार प्रसाद

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – विरल से विरलतम मामला – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अपनी पहली पत्नी तथा चार बच्चों की निर्मम हत्या कर पोखर में फेंक देना – अभियुक्त का एक अन्य महिला से अवैध संबंध होना तथा पहली पत्नी और बच्चों से पीछा छुड़ाने के लिए सभी की क्रूर और जघन्य रीति में हत्या करना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को मृत्युदंड दिया गया जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई – मामला विरल से विरलतम मामलों की श्रेणी में आता है क्योंकि अपीलार्थी अपनी पहली पत्नी और बच्चों को पोखर के पास लाया और गला दबाकर बच्चों की हत्या करने के पश्चात् पोखर में फेंककर पहली पत्नी की सुनियोजित रीति में सिर कुचलकर हत्या करके शव को पत्थर से बांधकर पोखर में फेंक दिया – साक्षियों के समक्ष की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति तथा पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला पूरी होने पर मृत्युदंड की शास्ति उचित ठहराते हुए निचले न्यायालयों के निर्णय की पुष्टि की गई ।

प्रस्तुत मामले में, अपीलार्थी, एक अभियुक्त को चार बच्चों और एक स्त्री जिसके साथ वह पति और पत्नी के रूप में रह रहा था, की हत्या करने के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया और उसे मृत्युदंड दिया गया जिसके विरुद्ध न्यायालय की अनुमति लेते हुए हमारे समक्ष अपील फाइल की है । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – सभी मृतकों की मानववधात्मक मृत्यु हुई थी और इन्हें हमारे समक्ष चुनौती नहीं दी गई है । डा. बांदीवान (अभि. सा. 10), जिन्होंने चारों बच्चों के शवों की शव परीक्षा की थी, ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि सभी चारों बच्चों की गला घोंटे जाने के कारण श्वासावरोध के कारण मृत्यु हुई थी । डा. भोंसले (अभि. सा. 4) जिन्होंने मृतक अनीता की शव परीक्षा की थी, ने अपने साक्ष्य में यह मत व्यक्त किया है कि उसकी गला दबाए जाने के कारण हुए श्वासावरोध से मृत्यु हुई थी । इसे देखते हुए, हमें किसी भी प्रकार का कोई संदेह नहीं है कि सभी पांचों मृतकों की मानववधात्मक मृत्यु हुई थी । (पैरा 6)

अभि. सा. 9 ईश्वर ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया था कि अपीलार्थी ने उसके समक्ष एक न्यायिकेतर संस्वीकृति की थी कि उसने चारों बच्चों और अपनी पहली पत्नी की गला दबाकर हत्या की थी और उनके शवों को पोखर में फेंक दिया था क्योंकि उसकी पहली पत्नी द्वारा उसे उत्पीड़ित किया जा रहा था । अभि. सा. 8 प्रल्हाद ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 19 अगस्त, 2007 को जब वह अपने घर पर था तब अपीलार्थी अपनी पत्नी और चारों बच्चों के साथ आया था और पानी के लिए कहा था । इसके आगे उसने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि उसने अपीलार्थी से रुकने को कहा था किन्तु वह अपनी पत्नी और चारों बच्चों के साथ चला गया था और दो से तीन दिनों के पश्चात् उसे यह जानकारी मिली थी कि उसने अपनी पत्नी और बच्चों की हत्या कर दी थी । (पैरा 11 और 12)

अभि. सा. 5 अनुसाया बाई मृतका की माता और अभि. सा. 6 मुक्ता बाई के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि मृतका अनीता चारों बच्चों के साथ अपीलार्थी के साथ रह रही थी । अपीलार्थी ने अभि. सा. 6 मुक्ता बाई से अपने को एकल बताते हुए विवाह किया था और मृतका द्वारा विरोध किए जाने के कारण विवाह-विच्छेद हुआ था । उपर्युक्त साक्षियों के साक्ष्य से और अभि. सा. 8 प्रल्हाद के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अनीता और चारों बच्चों को अंतिम बार अपीलार्थी के साथ तारीख 19 अगस्त, 2007 को

जीवित देखा गया था । चारों बच्चों के शव पोखर में तैरते हुए और अनीता का शव एक शिलाखंड के नीचे से तारीख 21 अगस्त, 2007 को पाया गया था । अपीलार्थी ने अभि. सा. 6 मुक्ता बाई और अभि. सा. 9 ईश्वर के समक्ष न्यायिकेतर संस्वीकृति भी की है । उसने अपनी पहली पत्नी अनीता द्वारा उसके साथ किए जा रहे उत्पीड़न के कारण हत्या कारित किए जाने की संस्वीकृति की है । उपर्युक्त साक्षियों के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी का अपराध कारित करने का हेतुक था, वह मृतका के साथ अंतिम बार देखा गया था और दोनों साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 6 मुक्ता बाई और अभि. सा. 9 ईश्वर के समक्ष अपराध किए जाने को स्वीकार करते हुए न्यायिकेतर संस्वीकृति की थी । इसके अतिरिक्त वह फरार हो गया था और वह यह स्पष्ट करने में असमर्थ है कि जिस महिला के साथ वह पति और पत्नी के रूप में रह रहे थे और, की बच्चों की किस प्रकार मानववधात्मक मृत्यु हुई थी । हमारे मत में पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषिता को साबित करने के लिए अभियोजन को यह साबित करना होता है कि साबित परिस्थितियों से केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है जो अभियुक्त की दोषिता को इंगित करता है । पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित मामले में परिस्थितियां जिनके आधार पर दोषिता का निष्कर्ष निकाले जाने की ईप्सा की गई वह तर्कपूर्ण और दृढ़ता से साबित होनी चाहिए । इस प्रकार साबित परिस्थितियों से अभियुक्त की दोषिता बिना किसी त्रुटि के इंगित होनी चाहिए । इनसे एक श्रृंखला इस प्रकार पूर्ण होनी चाहिए कि इस निष्कर्ष से किसी प्रकार न बचा जा सके कि अपराध अभियुक्त द्वारा ही कारित किया गया था और किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कारित नहीं किया गया था । इस पर समस्त मानवीय संभाव्यता के भीतर विचार किया जाना चाहिए और न कि किसी मनमौजी रीति में । दोषसिद्धि मान्य ठहराने के लिए पारिस्थितिक साक्ष्य पूर्ण होना चाहिए और उससे अभियुक्त की दोषिता इंगित होनी चाहिए । ऐसा साक्ष्य न केवल अभियुक्त की दोषिता से संगत होना चाहिए अपितु यह उसकी निर्दोषिता से असंगत होना चाहिए । ऊपर निर्दिष्ट परिस्थितियां हमारे मत में केवल एक ही निष्कर्ष को परिणाम करती है कि अपीलार्थी ने सभी पांचों व्यक्तियों की हत्या की थी । तदनुसार, हम उसकी दोषसिद्धि मान्य ठहराते हैं । (पैरा 13)

अपीलार्थी ने उस स्त्री की हत्या करना चुना था जिसके साथ वह पति और पत्नी के रूप में रहा था, ऐसी महिला जो उससे गहरा प्यार करती थी और जो अभि. सा. 6 मुक्ता बाई को 15 हजार रुपए का संदाय अपनी

इच्छा से अपने संबंधों को बचाने के लिए करना चाहती थी । अपीलार्थी ने न केवल मृतका के उसके पहले पति से उत्पन्न दो बच्चों की हत्या की थी अपितु अपने स्वयं के दो बच्चों की भी हत्या की थी । उसने अपने को एकल दर्शाया और एक महिला को धोखा देने के लिए अपना नाम परिवर्तन किया और वस्तुतः उसके साथ विवाह करने में सफल हुआ । तथापि, जब सत्यता सामने आई, तब उसने पांचों व्यक्तियों की हत्या कर दी । वह रीति जिसमें उसने अपराध कारित किया है स्पष्ट रूप से यह दर्शित करती है कि यह सोच-विचार कर और सुनियोजित था । यह प्रतीत होता है कि सभी चारों बच्चे और महिला को सुनियोजित रीति में पोखर के पास लाया गया था, गला दबाकर हत्या की गई और बच्चों के शवों को पोखर में फेंक दिया जिससे कि अपराध को छिपाया जा सके । उसने न केवल अनीता की हत्या की अपितु शनाख्त से बचने के लिए उसके सिर को भी कुचल दिया । चारों बच्चों की हत्या करना, शवों को दो-दो के बंडल में बांधना और उन्हें पोखर में फेंकना यह संभव नहीं रहा होता, यदि अपीलार्थी ने हत्याओं की योजना सुनियोजित रूप से अच्छी तरह न की होती । यह दर्शित करता है कि अपराध अत्यंत जघनता से, विभत्स, क्रूर और दर्दनाक रीति में कारित किया गया है । इससे समाज की अंतरभावना पूर्णतया और गंभीर रूप से हिल गई है और समाज की संपूर्ण अन्तरभावना को आघात पहुंचा है । हमारा यह मत है कि अपीलार्थी समाज के लिए एक अभिशाप है जो सुधारा नहीं जा सकता । हमारे मत में कम दंड खतरे को बढ़ाएगा क्योंकि अपीलार्थी के हाथों समाज को कई बार पुनः पीड़ा और दुख पहुचाने की आशंका हो सकती है । हमारा यह मत है कि वर्तमान मामला विरल से विरलतम मामलों के प्रर्वग में आता है और विचारण न्यायालय ने मृत्युदंड अधिनिर्णीत करने में कोई त्रुटि कारित नहीं की और उच्च न्यायालय ने उसकी पुष्टि करने की भी कोई त्रुटि कारित नहीं की थी । (पैरा 14)

दांडिक (अपीली) अधिकारिता : 2001 की दांडिक अपील सं. 185-186.

2009 की पुष्टि मामला सं. 1 और 2009 की दांडिक अपील सं. 128 में मुम्बई उच्च न्यायालय, औरंगाबाद न्यायपीठ द्वारा दिए गए तारीख 22 अप्रैल, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री मनोज प्रसाद, सदाशिव गुप्ता और अजय कुमार चौधरी

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री सुशील कारंजकर, सचिन जे. पाटिल, संजय खर्दे और (सुश्री) आशा गोपालन नायर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति चन्द्रमौली कुमार प्रसाद ने दिया ।

न्या. प्रसाद – अपीलार्थी, एक अभियुक्त को चार बच्चों और एक स्त्री जिसके साथ वह पति और पत्नी के रूप में रह रहा था, की हत्या करने के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया और उसे मृत्युदंड दिया गया जिसके विरुद्ध न्यायालय की अनुमति लेते हुए हमारे समक्ष अपील फाइल की है ।

2. महाराष्ट्र राज्य में जिला नांदेड में एक दूरस्थ ग्राम रूपला नायक तांडा के निवासी उस समय भयभीत और आक्रांत हो गए थे जब इसके कुछ निवासियों ने तारीख 21 अगस्त, 2007 के प्रातःकाल ग्राम के पोखर में चार शवों को तैरते हुए पाया । 10 वर्ष की एक बालिका के साथ छह वर्ष के एक बालक और दो से चार वर्ष के एक बालक के साथ 10 वर्ष की एक अन्य बालिका को पृथक् रूप से बांधा गया था । अभि. सा. 1 यशवंत जाधव, रूपला नायक तांडा के पुलिस चौकी के निरीक्षक को एक ग्रामवासी के माध्यम से पोखर में शवों की विद्यमानता के संबंध में जानकारी हुई थी और वे वहां पर पूर्वाह्न 8.00 बजे पहुंचे । वहां पर उपर्युक्त शवों के अलावा, उन्होंने एक शिलाखंड के नीचे अज्ञात महिला, जिसके गले में मंगलसूत्र था, का शव भी पाया । उन्होंने तदनुसार माहूर पुलिस थाना को सूचित किया और उसके आधार पर भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 302 और 201 के अधीन अपराध रजिस्ट्रीकृत किया गया था और अन्वेषण पुलिस निरीक्षक परमेश्वर मुंडे (अभि. सा. 14) को सौंपा गया था । वह घटनास्थल पर गए और पोखर से शवों को बाहर निकाला और मृत्यु समीक्षा रिपोर्टें तैयार कीं । अन्वेषण के दौरान मारुति माधवी ने एक महिला के शव की अपनी पुत्री अनीता के रूप में शनाख्त की और मृतक अनीता के पहले पति से उत्पन्न दो बच्चों और इसमें यहां अपीलार्थी से उत्पन्न दो बच्चों की भी शनाख्त की । अपीलार्थी को गिरफ्तार करने के लिए तलाश की गई थी किन्तु वह तारीख 24 अगस्त, 2007 तक नहीं पाए जा सके । अन्वेषण के दौरान, इसके आगे यह प्रकट हुआ कि मृतक अनीता जो अपीलार्थी के साथ उसकी पत्नी के रूप में रह रही थी, को अपने उस अपीलार्थी के अभि. सा. 6 मुक्ताबाई के साथ उसके अवैध संबंधों के संबंध में जानकारी मिली थी । मृतक प्रायः उक्त संबंध का विरोध करती थी । इस संबंध के कारण मृतक अनीता, मुक्ता

बाई और अपीलार्थी के बीच गंभीर विवाद हुआ था । अपीलार्थी ने मौखिक रूप से मुक्ता बाई से विवाह-विच्छेद किया था और उसे 15 हजार रुपए देने पर सहमत हुआ था । मृतका अनीता ने इस राशि का संदाय करने का वायदा किया था । तत्पश्चात् मुक्ताबाई अपने ग्राम चली गई थी और अपीलार्थी और मृतका अनीता और चारों बच्चे जुना पानी आ गए थे जहां तनावपूर्ण संबंध के कारण अपीलार्थी ने अनीता और चारों बच्चों की हत्या कर दी थी ।

3. पुलिस ने प्रायिक अन्वेषण के पश्चात् भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 201 और 302 के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत किया और अपीलार्थी को अंततः विचारण का सामना करने के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया । अपीलार्थी ने कोई अपराध किए जाने का खंडन किया और विचारण किए जाने का दावा किया ।

4. अभियोजन ने आरोप साबित करने के लिए अनेकों दस्तावेजों, जो कि प्रदर्शित किए गए हैं, के अलावा कुल मिलाकर 14 साक्षियों की परीक्षा की है । घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है और पारिस्थितिक साक्ष्य पर अवलंब लेते हुए विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि साबित परिस्थितियों के आधार पर स्पष्ट रूप से केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी ने चारों बच्चें और अनीता की हत्या की थी और हत्या के साक्ष्य को विलुप्त करने के लिए शवों को पोखर में फेंक दिया था । उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी का अपराध कारित करने का हेतुक था और पांचों मृतक अंतिम बार अपीलार्थी के साथ देखे गए थे । इसके अतिरिक्त अभि. सा. 6 मुक्ता बाई और अभि. सा. 9 ईश्वर के समक्ष की गई न्यायिकेतर संस्वीकृतियां विश्वसनीय थीं । उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने में विफलता जिनके अधीन उन सभी की मानववधात्मक मृत्यु हुई थी, को विचार में लेते हुए अपीलार्थी को आरोप का दोषी अभिनिर्धारित किया गया था । अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए उसके फरार होने की एक अन्य परिस्थिति पर भी विचारण न्यायालय द्वारा अवलंब लिया गया था । विचारण न्यायालय ने मृत्युदंड अभिनिर्धारित किया था । अपील फाइल किए जाने पर, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की और मामले को विरल से विरलतम मामलों में से एक मामला पाते हुए मृत्युदंडादेश की पुष्टि की ।

5. हमने अपीलार्थी की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल श्री

मनोज प्रसाद की सुनवाई की है ; जबकि प्रत्यर्थी-राज्य का श्री सुशील कारंजकर द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया है ।

6. सभी मृतकों की मानववधात्मक मृत्यु हुई थी और इन्हें हमारे समक्ष चुनौती नहीं दी गई है । डा. बांदीवान (अभि. सा. 10), जिन्होंने चारों बच्चों के शवों की शव परीक्षा की थी, ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि सभी चारों बच्चों की गला घोंटे जाने के कारण श्वासावरोध के कारण मृत्यु हुई थी । डा. भोंसले (अभि. सा. 4) जिन्होंने मृतक अनीता की शव परीक्षा की थी, ने अपने साक्ष्य में यह मत व्यक्त किया है कि उसकी गला दबाए जाने के कारण हुए श्वासावरोध से मृत्यु हुई थी । इसे देखते हुए, हमें किसी भी प्रकार का कोई संदेह नहीं है कि सभी पांचों मृतकों की मानववधात्मक मृत्यु हुई थी ।

7. तथापि, श्री प्रसाद ने यह दलील दी कि अभिलेख पर लाए गए पारस्थितिक साक्ष्य, अपीलार्थी की दोषिता की ओर इंगित नहीं करते हैं । तथापि, श्री कारंजकर ने यह दलील दी कि परिस्थितियां अपीलार्थी की दोषिता की ओर इंगित करती हैं ।

8. अभि. सा. 5 अनुसायाबाई, मृतका की माता है और उसने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि उसकी पुत्री अनीता का पूर्वतर अनिल गेदाम के साथ विवाह हुआ था और उनके दो बच्चे हुए थे । मतभेदों के कारण, उसने अनीता का अभित्यजन कर दिया था और मृतका ने तत्पश्चात् अपनी माता के साथ रहना प्रारंभ कर दिया था । मृतका की माता के अनुसार अनीता ने अचानक ही अपने बच्चों के साथ उनका घर छोड़ दिया और उन्होंने इस संबंध में कोई पूछताछ नहीं की थी क्योंकि उन्होंने यह सोचा कि वह अपने पति के घर गई थी । कुछ दिनों के पश्चात् इस साक्षी के अनुसार उन्हें यह जानकारी मिली कि मृतका अपने पति अनिल के साथ नहीं रह रही थी अपितु वस्तुतः वह अपीलार्थी के साथ रह रही थी । वह अपीलार्थी के घर गई थी और मृतका को अपने बच्चों के साथ वहां रहते हुए देखा था । उसके साक्ष्य के अनुसार जब उसे पोखर में बच्चों के शवों के तैरने की बाबत जानकारी मिली थी, वह वहां गई थी और उसने शवों की पहचान की थी । वे मृतका और उसके पति अनिल के दो बच्चें, और मृतका अपीलार्थी से दो अन्य बच्चे थे । उसने अपनी पुत्री अनीता के शव को भी पाया ।

9. अभि. सा. 6 मुक्ता बाई ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि

उसके विवाह का एक प्रस्ताव राहुल नाम के एक व्यक्ति की ओर से आया था और उसे यह बताया था कि वह अविवाहित है । उसका साक्ष्य यह है कि भावी दूल्हा उसके घर आया था और यह दावा करते हुए कि वह अकेला है उसने उससे विवाह करने का प्रस्ताव किया था । विवाह के पश्चात् दोनों ही ग्राम में आठ से दस दिन तक ठहरे थे और तत्पश्चात् करीम नगर चले गए थे और वहां पर लगभग एक माह रुके थे । उसके साक्ष्य के अनुसार, वह अपने चचेरे भाई की शादी में भाग लेने के लिए अपने पति के साथ अपने ग्राम लौटी थी और जब वे वहां पर रह रही थी तब वहां पर मृतका अनीता आई थी और उसे यह बताया कि पति का नाम राहुल नहीं है अपितु अपीलार्थी सुदाम है और उसके उससे दो बच्चे थे । यह सुनकर अपीलार्थी वहां से भाग गया था ।

10. मुक्ता बाई ने अपने साक्ष्य में इसके आगे यह अभिसाक्ष्य दिया है कि कुछ समय पश्चात् अपीलार्थी उसके घर आया था और पूछताछ किए जाने पर उसने उसे यह बताया कि उसे मृतका अनीता द्वारा उत्पीड़ित किया जा रहा था । अपीलार्थी ने इसके आगे इस साक्षी मुक्ता बाई को यह बताया था कि उसके अनीता से दो बच्चे थे । मृतका ने इस साक्षी से अपीलार्थी को छोड़ने को कहा था जिस पर अपीलार्थी ने अभि. सा. 6 मुक्ता बाई और मृतका अनीता दोनों की ही देखभाल करने का जिम्मा उठाया किन्तु बाद में उसने उपर्युक्त प्रस्ताव को स्वीकार करने से इनकार कर दिया । उसके अनुसार अपीलार्थी ने उसे मौखिक रूप से विवाह-विच्छेद दिया था और उसे 15 हजार रुपए देने का वायदा किया था । तत्पश्चात् इस साक्षी के अनुसार अनीता बच्चों के साथ अपीलार्थी के साथ चली गई थी । कुछ दिनों के पश्चात्, पुलिस उसके घर आई थी और उससे अपीलार्थी और मृतका दोनों के किस स्थान पर होने की पूछताछ की थी । उसे चारों बच्चों और मृतका अनीता के फोटो दिखाए गए थे । इस साक्षी ने इसके आगे यह कथन किया है कि कुछ दिनों पश्चात्, अपीलार्थी वापस लौटा था और पूछताछ किए जाने पर उसने यह प्रकट किया कि उसने अनीता और चारों बच्चों की हत्या की थी क्योंकि अनीता उसे उत्पीड़ित कर रही थी ।

11. अभि. सा. 9 ईश्वर ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया था कि अपीलार्थी ने उसके समक्ष एक न्यायिकेतर संस्वीकृति की थी कि उसने चारों बच्चों और अपनी पहली पत्नी की गला दबाकर हत्या की थी और उनके शवों को पोखर में फेंक दिया था क्योंकि उसकी पहली पत्नी द्वारा

उसे उत्पीड़ित किया जा रहा था ।

12. अभि. सा. 8 प्रल्हाद ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 19 अगस्त, 2007 को जब वह अपने घर पर था तब अपीलार्थी अपनी पत्नी और चारों बच्चों के साथ आया था और पानी के लिए कहा था । इसके आगे उसने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि उसने अपीलार्थी से रुकने को कहा था किन्तु वह अपनी पत्नी और चारों बच्चों के साथ चला गया था और दो से तीन दिनों के पश्चात् उसे यह जानकारी मिली थी कि उसने अपनी पत्नी और बच्चों की हत्या कर दी थी ।

13. इस प्रकार अभि. सा. 5 अनुसाया बाई मृतका की माता और अभि. सा. 6 मुक्ता बाई के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि मृतका अनीता चारों बच्चों के साथ अपीलार्थी के साथ रह रही थी । अपीलार्थी ने अभि. सा. 6 मुक्ता बाई से अपने को एकल बताते हुए विवाह किया था और मृतका द्वारा विरोध किए जाने के कारण विवाह-विच्छेद हुआ था । उपर्युक्त साक्षियों के साक्ष्य से और अभि. सा. 8 प्रल्हाद के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अनीता और चारों बच्चों को अंतिम बार अपीलार्थी के साथ तारीख 19 अगस्त, 2007 को जीवित देखा गया था । चारों बच्चों के शव पोखर में तैरते हुए और अनीता का शव एक शिलाखंड के नीचे से तारीख 21 अगस्त, 2007 को पाया गया था । अपीलार्थी ने अभि. सा. 6 मुक्ता बाई और अभि. सा. 9 ईश्वर के समक्ष न्यायिकेतर संस्वीकृति भी की है । उसने अपनी पहली पत्नी अनीता द्वारा उसके साथ किए जा रहे उत्पीड़न के कारण हत्या कारित किए जाने की संस्वीकृति की है । उपर्युक्त साक्षियों के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी का अपराध कारित करने का हेतुक था, वह मृतका के साथ अंतिम बार देखा गया था और दोनों साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 6 मुक्ता बाई और अभि. सा. 9 ईश्वर के समक्ष अपराध किए जाने को स्वीकार करते हुए न्यायिकेतर संस्वीकृति की थी । इसके अतिरिक्त वह फरार हो गया था और वह यह स्पष्ट करने में असमर्थ है कि जिस महिला के साथ वह पति और पत्नी के रूप में रह रहे थे और, की बच्चों की किस प्रकार मानववधात्मक मृत्यु हुई थी । हमारे मत में पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषिता को साबित करने के लिए अभियोजन को यह साबित करना होता है कि साबित परिस्थितियों से केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है जो अभियुक्त की दोषिता को इंगित करता है । पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित मामले में परिस्थितियां जिनके आधार पर दोषिता का निष्कर्ष निकाले जाने की ईप्सा की गई वह तर्कपूर्ण और दृढ़ता से साबित होनी

चाहिए । इस प्रकार साबित परिस्थितियों से अभियुक्त की दोषिता बिना किसी त्रुटि के इंगित होनी चाहिए । इनसे एक श्रृंखला इस प्रकार पूर्ण होनी चाहिए कि इस निष्कर्ष से किसी प्रकार न बचा जा सके कि अपराध अभियुक्त द्वारा ही कारित किया गया था और किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कारित नहीं किया गया था । इस पर समस्त मानवीय संभाव्यता के भीतर विचार किया जाना चाहिए और न कि किसी मनमौजी रीति में । दोषसिद्धि मान्य ठहराने के लिए पारिस्थितिक साक्ष्य पूर्ण होना चाहिए और उससे अभियुक्त की दोषिता इंगित होनी चाहिए । ऐसा साक्ष्य न केवल अभियुक्त की दोषिता से संगत होना चाहिए अपितु यह उसकी निर्दोषिता से असंगत होना चाहिए । ऊपर निर्दिष्ट परिस्थितियां हमारे मत में केवल एक ही निष्कर्ष को परिणाम करती है कि अपीलार्थी ने सभी पांचों व्यक्तियों की हत्या की थी । तदनुसार, हम उसकी दोषसिद्धि मान्य ठहराते हैं ।

14. अब हम इस पर विचार करेंगे कि क्या वर्तमान मामला विरल से विरलतम मामलों के प्रर्वग में आता है । अपीलार्थी ने उस स्त्री की हत्या करना चुना था जिसके साथ वह पति और पत्नी के रूप में रहा था, ऐसी महिला जो उससे गहरा प्यार करती थी और जो अभि. सा. 6 मुक्ता बाई को 15 हजार रुपए का संदाय अपनी इच्छा से अपने संबंधों को बचाने के लिए करना चाहती थी । अपीलार्थी ने न केवल मृतका के उसके पहले पति से उत्पन्न दो बच्चों की हत्या की थी अपितु अपने स्वयं के दो बच्चों की भी हत्या की थी । उसने अपने को एकल दर्शाया और एक महिला को धोखा देने के लिए अपना नाम परिवर्तन किया और वस्तुतः उसके साथ विवाह करने में सफल हुआ । तथापि, जब सत्यता सामने आई, तब उसने पांचों व्यक्तियों की हत्या कर दी । वह रीति जिसमें उसने अपराध कारित किया है स्पष्ट रूप से यह दर्शित करती है कि यह सोच-विचार कर और सुनियोजित था । यह प्रतीत होता है कि सभी चारों बच्चे और महिला को सुनियोजित रीति में पोखर के पास लाया गया था, गला दबाकर हत्या की गई और बच्चों के शवों को पोखर में फेंक दिया जिससे कि अपराध को छिपाया जा सके । उसने न केवल अनीता की हत्या की अपितु शनाख्त से बचने के लिए उसके सिर को भी कुचल दिया । चारों बच्चों की हत्या करना, शवों को दो-दो के बंडल में बांधना और उन्हें पोखर में फेंकना यह संभव नहीं रहा होता, यदि अपीलार्थी ने हत्याओं की योजना सुनियोजित रूप से अच्छी तरह न की होती । यह दर्शित करता है कि अपराध अत्यंत जघनता से, विभत्स, क्रूर और दर्दनाक रीति में कारित किया गया है ।

इससे समाज की अंतरभावना पूर्णतया और गंभीर रूप से हिल गई है और समाज की संपूर्ण अन्तरभावना को आघात पहुंचा है । हमारा यह मत है कि अपीलार्थी समाज के लिए एक अभिशाप है जो सुधारा नहीं जा सकता । हमारे मत में कम दंड खतरे को बढ़ाएगा क्योंकि अपीलार्थी के हाथों समाज को कई बार पुनः पीड़ा और दुख पहुचाने की आशंका हो सकती है । हमारा यह मत है कि वर्तमान मामला विरल से विरलतम मामलों के प्रर्वग में आता है और विचारण न्यायालय ने मृत्युदंड अधिनिर्णीत करने में कोई त्रुटि कारित नहीं की और उच्च न्यायालय ने उसकी पुष्टि करने की भी कोई त्रुटि कारित नहीं की थी ।

15. परिणामस्वरूप, हम इन अपीलों में कोई गुणता नहीं पाते हैं और यह तदनुसार खारिज की जाती है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अनू.

संसद् के अधिनियम

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000

(2000 का अधिनियम संख्यांक 56)

[30 दिसम्बर, 2000]

विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों और देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद बालकों से संबंधित विधि का, उनके विकास की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए उचित देखरेख, संरक्षण और उपचार का उपबंध करते हुए तथा उनसे संबंधित विषयों का न्यायनिर्णयन और व्ययन करने में बालकों के सर्वोत्तम हित में, बालकों के प्रति मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हुए तथा इस अधिनियमिति के अधीन स्थापित विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से उनके अंतिम पुनर्वास के लिए समेकन और संशोधन करने के लिए अधिनियम

संविधान के अनुच्छेद 15 के खंड (3), अनुच्छेद 39 के खंड (ङ) और खंड (च), अनुच्छेद 45 और अनुच्छेद 47 सहित, अनेक उपबंधों में राज्य पर यह सुनिश्चित करने का प्राथमिक दायित्व अधिरोपित किया गया है कि बालकों की सभी आवश्यकताएं पूरी की जाएं और उनके बुनियादी मानवीय अधिकारों का पूर्ण रूप से संरक्षण किया जाए ;

और संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 20 नवम्बर, 1989 को बालकों के अधिकारों से संबंधित अभिसमय को अंगीकार किया है ;

और बालक के अधिकारों से संबंधित अभिसमय ने ऐसे कुछ मानदंड विहित किए हैं, जिनका बालक के सर्वोत्तम हितों को प्राप्त करने के लिए, सभी पक्षकार राज्यों द्वारा पालन किया जाना है ;

और बालक के अधिकारों से संबंधित अभिसमय ने न्यायिक कार्यवाहियों का सहारा लिए बिना, संभव सीमा तक, पीड़ित बालकों को समाज में पुनः मिलाने के लिए बल दिया है ;

और भारत सरकार ने उक्त अभिसमय का 11 दिसम्बर, 1992 को

अनुसमर्थन कर दिया है ;

और किशोरों से संबंधित विद्यमान विधि को, बालक के अधिकारों से संबंधित अभिसमय में विहित मानकों, किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम, 1985, (बीजिंग नियम), अपनी स्वतंत्रता से वंचित संयुक्त राष्ट्र किशोर संरक्षण नियम, (1990) और सभी अन्य सुसंगत अंतरराष्ट्रीय लिखतों को ध्यान में रखते हुए पुनः अधिनियमित करना समीचीन है ।

भारत गणराज्य के इक्यावनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1
प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय, संपूर्ण भारत पर होगा ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "सलाहकार बोर्ड" से धारा 62 के अधीन गठित, यथास्थिति, केन्द्रीय या राज्य सलाहकार बोर्ड या जिला और नगर स्तर का सलाहकार बोर्ड अभिप्रेत है ;

(ख) "भीख मांगना" से अभिप्रेत है, –

(i) लोक स्थान में भिक्षा की याचना करना या प्राप्त करना या किसी प्राइवेट परिसर में भिक्षा की याचना या प्राप्त करने के प्रयोजन से प्रवेश करना, चाहे वह किसी बहाने से हो ;

(ii) भिक्षा अभिप्राप्त या उद्दापित करने के उद्देश्य से, अपना या किसी अन्य व्यक्ति या जीव जन्तु का कोई व्रण, घाव, क्षति, विरूपता या रोग अभिदर्शित या प्रदर्शित करना ;

(ग) "बोर्ड" से धारा 4 के अधीन गठित किशोर न्याय बोर्ड अभिप्रेत है ;

(घ) "देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद बालक" से ऐसा बालक अभिप्रेत है –

(i) जिसके बारे में यह पाया जाता है कि उसका कोई घर या निश्चित निवास का स्थान और जीवन निर्वाह के दृश्यमान साधन नहीं हैं ;

(ii) जो किसी व्यक्ति के साथ रहता है (चाहे वह बालक का संरक्षक हो अथवा नहीं) और ऐसे व्यक्ति ने, –

(क) बालक को मारने या उसे क्षति पहुंचाने की धमकी दी है और उस धमकी को कार्यान्वित किए जाने की युक्तियुक्त संभावना है, या

(ख) किसी अन्य बालक या बालकों को मार दिया है, उसके या उनके साथ दुर्व्यवहार या उसकी या उनकी उपेक्षा की है और प्रश्नगत बालक के उस व्यक्ति द्वारा मारे जाने, उसके साथ दुर्व्यवहार या उसकी उपेक्षा किए जाने की युक्तियुक्त संभावना है,

(iii) जो मानसिक या शारीरिक रूप से असुविधाग्रस्त या बीमार बालक है या ऐसा बालक है जो घातक रोगों या असाध्य रोगों से पीड़ित हैं, जिनकी सहायता या देखभाल करने वाला कोई नहीं है,

(iv) जिसके माता-पिता या संरक्षक हैं और ऐसे माता-पिता या संरक्षक बालक पर नियंत्रण रखने के लिए अयोग्य या असमर्थ हैं,

(v) जिसके माता-पिता नहीं हैं और कोई भी व्यक्ति उसकी देखरेख करने का इच्छुक नहीं है या उसके माता-पिता ने उसका परित्याग कर दिया है या जो गुमशुदा है और भागा हुआ बालक है और जिसके माता-पिता युक्तियुक्त जांच के पश्चात् भी नहीं मिल सके हैं,

(vi) जिसका लैंगिक दुर्व्यवहार या अवैध कार्यों के प्रयोजन

हेतु घोर दुर्व्यवहार प्रपीड़न या शोषण किया जा रहा है या किए जाने की संभावना है,

(vii) जो असुरक्षित पाया गया है और उसके मादक द्रव्य के कुप्रयोग या उनके अवैध व्यापार में सम्मिलित किए जाने की संभावना है,

(viii) जिसका लोकात्मा विरुद्ध अभिलाभों के लिए दुरुपयोग किया जा रहा है या किए जाने की संभावना है,

(ix) जो किसी सशस्त्र संघर्ष, सिविल उपद्रव या प्राकृतिक आपदा से पीड़ित है ;

(ङ) "बालगृह" से धारा 34 के अधीन राज्य सरकार या स्वैच्छिक संगठन द्वारा स्थापित और उस सरकार द्वारा प्रमाणित संस्था अभिप्रेत है ;

(च) "समिति" से धारा 29 के अधीन गठित बाल कल्याण समिति अभिप्रेत है ;

(छ) "सक्षम प्राधिकारी" से देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बालकों के संबंध में समिति और विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों के संबंध में बोर्ड अभिप्रेत है ;

(ज) "योग्य संस्था" से ऐसा सरकारी या रजिस्ट्रीकृत गैर-सरकारी संगठन या स्वैच्छिक संगठन अभिप्रेत है जो किसी बालक की जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार है और ऐसा संगठन सक्षम प्राधिकारी द्वारा योग्य पाया जाता है ;

(झ) "योग्य व्यक्ति" से ऐसा व्यक्ति, जो सामाजिक कार्यकर्ता है या ऐसा कोई अन्य व्यक्ति अभिप्रेत है जो बालक की जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार है और सक्षम प्राधिकारी द्वारा बालक को प्राप्त करने और उसकी देखरेख करने के लिए योग्य पाया जाता है ;

(ञ) बालक के संबंध में "संरक्षक" से उसका नैसर्गिक संरक्षक या ऐसा कोई अन्य व्यक्ति अभिप्रेत है जिसकी वास्तविक देखरेख या नियंत्रण में बालक है और उसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा उस प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही के दौरान संरक्षक के रूप में मान्यता दी गई है ;

(ट) "किशोर" या "बालक" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने अठारह वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है ;

(ठ) "विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर" से ऐसा किशोर अभिप्रेत है जिसके बारे में यह अभिकथन है कि उसने कोई अपराध कारित किया है ;

(ड) "स्थानीय प्राधिकारी" से गांव स्तर पर पंचायतें और जिला स्तर पर जिला परिषद् अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत नगर पालिक समिति या नगर निगम या छावनी बोर्ड अथवा ऐसा अन्य निकाय भी है जिसे सरकार द्वारा स्थानीय प्राधिकारी के रूप में कार्य करने के लिए विधिक रूप से हकदार बनाया गया है ;

(ढ) "स्वापक ओषधि" और "मनःप्रभावी पदार्थ" के क्रमशः वही अर्थ हैं, जो स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61) में हैं ।

(ण) "संप्रेक्षण गृह" से धारा 8 के अधीन विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर के लिए राज्य सरकार द्वारा या स्वैच्छिक संगठन द्वारा स्थापित और उस राज्य सरकार द्वारा संप्रेक्षण गृह के रूप में प्रमाणित किया गया गृह अभिप्रेत है ;

(त) "अपराध" से तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन दंडनीय कोई अपराध अभिप्रेत है ;

(थ) "सुरक्षित स्थान" से अभिप्रेत है ऐसा कोई स्थान या ऐसी कोई संस्था (जो पुलिस हवालात या जेल नहीं है) जिसका भारसाधक व्यक्ति किसी किशोर को अस्थायी रूप से लेने और उसकी देखरेख करने के लिए रजामंद है और जो सक्षम प्राधिकारी की राय में किशोर के लिए सुरक्षित स्थान है ;

(द) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ध) "परिवीक्षा अधिकारी" से अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (1958 का 20) के अधीन परिवीक्षा अधिकारी के रूप में राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी अभिप्रेत है ;

(न) "सार्वजनिक स्थान" का वही अर्थ होगा जो अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 (1956 का 104) में है ;

(प) "आश्रय गृह" से धारा 37 के अधीन स्थापित गृह या मिलन केन्द्र अभिप्रेत है ;

(फ) "विशेष गृह" से धारा 9 के अधीन राज्य सरकार द्वारा या स्वैच्छिक संगठन द्वारा स्थापित और उस सरकार द्वारा प्रमाणित संस्था अभिप्रेत है ;

(ब) "विशेष किशोर पुलिस एकक" से राज्य पुलिस बल की ऐसी इकाई अभिप्रेत है जो धारा 63 के अधीन किशोरों या बालकों से निपटने के लिए अभिहित है ;

(भ) "राज्य सरकार" से संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त उस संघ राज्यक्षेत्र का प्रशासक अभिप्रेत है ;

(म) उन सभी शब्दों और पदों के जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं किन्तु परिभाषित नहीं हैं और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में परिभाषित हैं, वही अर्थ होंगे जो उस संहिता में उनके हैं ।

3. ऐसे किशोर के बारे में जांच चालू रखना जो किशोर नहीं रह गया है – जहां विधि का उल्लंघन करने वाले किसी किशोर या देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद बालक के विरुद्ध जांच आरंभ कर दी गई है और उस जांच के दौरान वह किशोर या बालक, किशोर या बालक नहीं रह गया है वहां इस अधिनियम में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी उस व्यक्ति के बारे में जांच ऐसे चालू रखी जा सकेगी और आदेश ऐसे किए जा सकेंगे मानो ऐसा व्यक्ति किशोर या बालक बना रहा है ।

अध्याय 2
विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर

4. किशोर न्याय बोर्ड – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उस अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किसी जिले या जिलों के समूह के लिए इस अधिनियम के अधीन विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों के संबंध में ऐसे बोर्ड को प्रदत्त या अधिरोपित शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए एक या अधिक किशोर न्याय बोर्ड का गठन कर सकेगी ।

(2) बोर्ड, यथास्थिति, महानगर मजिस्ट्रेट या न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी और ऐसे दो सामाजिक कार्यकर्ताओं से मिलकर बनेगा जिनमें से कम

से कम एक महिला होगी और वह न्यायपीठ के रूप में गठित होगा और ऐसे प्रत्येक न्यायपीठ को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) द्वारा, यथास्थिति, महानगर मजिस्ट्रेट या न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी को प्रदत्त शक्तियां प्राप्त होंगी और बोर्ड के मजिस्ट्रेट को प्रधान मजिस्ट्रेट के रूप में पदाभिहित किया जाएगा ।

(3) किसी भी मजिस्ट्रेट को बोर्ड के सदस्य के रूप में तब तक नियुक्त नहीं किया जाएगा जब तक कि उसके पास बाल मनोविज्ञान या बाल कल्याण के क्षेत्र में विशेष ज्ञान या प्रशिक्षण न हो और किसी भी सामाजिक कार्यकर्ता को बोर्ड के सदस्य के रूप में तब तक नियुक्त नहीं किया जाएगा जब तक कि वह बालकों से संबंधित स्वास्थ्य, शिक्षा या कल्याण के क्रियाकलापों में कम से कम सात वर्षों तक न लगा रहा हो ।

(4) बोर्ड के सदस्यों की पदावधि और वह रीति, जिसमें ऐसा सदस्य त्यागपत्र दे सकेगा, वे होंगी जो विहित की जाएं ।

(5) बोर्ड के किसी सदस्य की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा, जांच किए जाने के पश्चात् समाप्त की जा सकेगी, यदि –

(i) वह इस अधिनियम के अधीन निहित की गई शक्ति के दुरुपयोग का दोषी पाया गया है,

(ii) वह ऐसे अपराध का सिद्धदोष ठहराया गया है जिसमें नैतिक अधमता अंतर्वलित है और ऐसी दोषसिद्धि को उल्टा नहीं गया है या उसे ऐसे अपराध की बाबत उसे पूर्ण क्षमा प्रदान नहीं की गई है,

(iii) वह किसी विधिमान्य कारण के बिना, लगातार तीन मास तक बोर्ड की कार्यवाहियों में उपस्थिति होने में असफल रहता है या वह किसी वर्ष में कम से कम तीन-चौथाई बैठकों में उपस्थिति होने में असफल रहा है ।

5. बोर्ड के संबंध में प्रक्रिया आदि – (1) बोर्ड ऐसे समयों पर बैठक करेगा और ऐसी बैठकों में कारबार के संव्यवहार के संबंध में प्रक्रिया के ऐसे नियमों का पालन करेगा जो विहित किए जाएं ।

(2) विधि का उल्लंघन करने वाले किसी बालक को, जब बोर्ड की बैठक नहीं हो रही हो, बोर्ड के व्यष्टिक सदस्य के समक्ष पेश किया जा सकेगा ।

(3) बोर्ड, बोर्ड के किसी सदस्य के अनुपस्थित रहते हुए भी कार्य कर सकेगा और बोर्ड द्वारा किया गया कोई आदेश, कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम के दौरान किसी सदस्य की अनुपस्थिति के कारण ही अविधिमान्य नहीं होगा :

परंतु किसी मामले के अंतिम निपटारे के समय प्रधान मजिस्ट्रेट सहित कम से कम दो सदस्य उपस्थित रहेंगे ।

(4) अंतरिम या अंतिम निपटान में बोर्ड के सदस्यों के बीच राय की भिन्नता की दशा में बहुमत की राय अभिभावी होगी, किंतु जहां ऐसा कोई बहुमत नहीं है, वहां प्रधान मजिस्ट्रेट की राय अभिभावी होगी ।

6. किशोर न्याय बोर्ड की शक्तियां – (1) जहां किसी जिले या जिलों के समूह के लिए बोर्ड गठित किया गया है वहां, ऐसे बोर्ड को, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किंतु जैसा इस अधिनियम में अभिव्यक्ततः अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर से संबंधित इस अधिनियम के अधीन सभी कार्यवाहियों के संबंध में अनन्यतः कार्य करने की शक्तियां प्राप्त होंगी ।

(2) इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन बोर्ड को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय द्वारा भी किया जा सकेगा जब कार्यवाही अपील, पुनरीक्षण में या अन्यथा उनके समक्ष आए ।

7. इस अधिनियम के अधीन सशक्त न किए गए मजिस्ट्रेट द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया – (1) जब किसी ऐसे मजिस्ट्रेट की, जो इस अधिनियम के अधीन बोर्ड की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त नहीं है, यह राय है कि इस अधिनियम के किन्हीं उपबंधों के अधीन (उसके समक्ष साक्ष्य देने के प्रयोजन से भिन्न) लाया गया कोई व्यक्ति किशोर या बालक है, तब वह उस राय को अविलंब अभिलिखित करेगा और उस किशोर या बालक को तथा उस कार्यवाही के अभिलेख को उस कार्यवाही पर अधिकारिता रखने वाले सक्षम प्राधिकारी को भेजेगा ।

(2) वह सक्षम प्राधिकारी जिसे उपधारा (1) के अधीन कार्यवाही भेजी गई है, इस प्रकार जांच करेगा मानो वह किशोर या बालक मूलतः उसके समक्ष लाया गया हो ।

8. संप्रेक्षण गृह – (1) कोई राज्य सरकार, प्रत्येक जिले या जिलों के

समूह में या तो स्वयं अथवा स्वैच्छिक संगठनों के साथ करार के अधीन ऐसे संप्रेक्षण गृह स्थापित कर सकेगी और उनका अनुरक्षण कर सकेगी जो इस अधिनियम के अधीन विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों को, उनसे संबंधित किसी जांच के लंबित रहने के दौरान अस्थायी रूप से रखने के लिए अपेक्षित हो ।

(2) जहां राज्य सरकार की यह राय है कि उपधारा (1) के अधीन स्थापित या अनुरक्षित गृह से भिन्न कोई संस्था इस अधिनियम के अधीन विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर को उनसे संबंधित किसी जांच के लंबित रहने के दौरान अस्थायी रूप से रखने के लिए ठीक है, वहां वह उस संस्था को इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए संप्रेक्षण गृह के रूप में प्रमाणित कर सकेगी ।

(3) राज्य सरकार, संप्रेक्षण गृहों के प्रबंध के लिए, जिसमें किशोरों के पुनर्वास और समाज में पुनः मिलाने के लिए उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं का स्तर और उनके विभिन्न प्रकार भी हैं, और उन परिस्थितियों के लिए जिनमें तथा उस रीति के लिए जिससे संप्रेक्षण गृह का प्रमाणन अनुदत्त या प्रत्याहृत किया जा सकेगा, उपबंध इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा कर सकेगी ।

(4) प्रत्येक किशोर को ; जो माता-पिता या संरक्षक के प्रभार में नहीं रखा गया है और संप्रेक्षण गृह में भेजा जाता है, प्रारंभिक पूछताछ, देखरेख और उसकी आयु समूह, जैसे सात वर्ष से बारह वर्ष, बारह वर्ष से सोलह वर्ष और सोलह वर्ष से अठारह वर्ष के अनुसार संप्रेक्षण गृह में आगे सम्मिलित करने के लिए किशोरों के वर्गीकरण के लिए प्रथमतः संप्रेक्षण गृह की स्वागत इकाई में रखा जाएगा जिसमें शारीरिक और मानसिक स्तर और किए गए अपराध की श्रेणी को सम्यक् रूप से ध्यान में रखा जाएगा ।

9. विशेष गृह – (1) कोई राज्य सरकार या तो स्वयं अथवा स्वैच्छिक संगठनों के साथ करार के अधीन, प्रत्येक जिले या जिलों के समूह में ऐसे विशेष गृह स्थापित कर सकेगी और उनका अनुरक्षण कर सकेगी जो इस अधिनियम के अधीन विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों को रखने और उनके पुनर्वास के लिए अपेक्षित हो ।

(2) जहां राज्य सरकार की यह राय है कि उपधारा (1) के अधीन स्थापित या अनुरक्षित गृह से भिन्न कोई संस्था इस अधिनियम के अधीन वहां भेजे जाने वाले विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों को रखने के

लिए ठीक है वहां वह उस संस्था को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए विशेष गृह के रूप में प्रमाणित कर सकेगी ।

(3) राज्य सरकार विशेष गृहों के प्रबंध के लिए, जिसमें उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं का स्तर और उनके विभिन्न प्रकार भी हैं, जो किशोरों को समाज में पुनः मिलाने के लिए आवश्यक हैं, और उन परिस्थितियों के लिए जिनमें तथा उस रीति के लिए जिससे विशेष गृह का प्रमाणन अनुदत्त या प्रत्याहृत किया जा सकेगा, उपबंध, इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा कर सकेगी ।

(4) उपधारा (3) के अधीन बनाए गए नियमों में विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों का, उनकी आयु और उनके द्वारा किए गए अपराधों की प्रकृति और उसके मानसिक और शारीरिक स्तर के आधार पर वर्गीकरण और पृथक्करण के लिए भी उपबंध किया जा सकेगा ।

10. विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर की गिरफ्तारी – (1) जैसे ही विधि का उल्लंघन करने वाला कोई किशोर पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जाता है तभी वह विशेष किशोर पुलिस बल एकक या अभिहित पुलिस अधिकारी के प्रभार के अधीन रखा जाएगा, जो मामले की बोर्ड के किसी सदस्य को तत्काल रिपोर्ट करेगा ।

(2) राज्य सरकार –

(i) उन व्यक्तियों के लिए उपबंध करने के लिए जिनके द्वारा (जिसके अंतर्गत रजिस्ट्रीकृत स्वैच्छिक संगठन भी है) विधि का उल्लंघन करने वाला कोई किशोर, बोर्ड के समक्ष पेश किया जा सकेगा ; और

(ii) उस रीति का उपबंध करने के लिए जिससे ऐसे किशोर को किसी संप्रेक्षणगृह में भेजा जा सकेगा,

इस अधिनियम के संगत नियम बना सकेगी ।

11. किशोर पर अभिरक्षक का नियंत्रण – ऐसे व्यक्ति का, जिसके प्रभार में कोई किशोर, इस अधिनियम के अनुसरण में रखा जाता है, जब आदेश प्रवर्तन में हो, किशोर पर नियंत्रण इस प्रकार होगा जैसे कि उसका नियंत्रण उस समय होता यदि वह उसका माता-पिता होता और उसके भरण-पोषण के लिए उत्तरदायी होगा तथा किशोर, इस बात के होते हुए भी कि उसके माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दावा किया गया है, सक्षम प्राधिकारी द्वारा कथित अवधि के लिए प्रभार में बना रहेगा ।

12. किशोर की जमानत – (1) जब कोई ऐसा व्यक्ति, जो जमानतीय या अजमानतीय अपराध का अभियुक्त है और दृश्यमान रूप में किशोर है, गिरफ्तार या निरुद्ध किया जाता है अथवा बोर्ड के समक्ष उपसंजात होता है या लाया जाता है तब दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उस व्यक्ति को प्रतिभू सहित या रहित जमानत पर छोड़ दिया जाएगा, किन्तु इस प्रकार उसे तब नहीं छोड़ा जाएगा जब यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार प्रतीत होते हैं कि उसके ऐसे छोड़े जाने से यह संभाव्य है कि उसका संसर्ग किसी ज्ञात अपराधी से होगा या वह नैतिक, शारीरिक या मनोवैज्ञानिक रूप से खतरे में पड़ जाएगा या उसके छोड़े जाने से न्याय के उद्देश्य विफल होंगे ।

(2) जब गिरफ्तार किए जाने पर ऐसे व्यक्ति को पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा उपधारा (1) के अधीन जमानत पर नहीं छोड़ा जाता है तब ऐसा अधिकारी उसे विहित रीति से संप्रेक्षण गृह में केवल तब तक के लिए रखवाएगा जब तक उसे बोर्ड के समक्ष न लाया जा सके ।

(3) जब ऐसा व्यक्ति बोर्ड द्वारा उपधारा (1) के अधीन जमानत पर नहीं छोड़ा जाता है तब वह कारागार के सुपुर्द करने के बजाय उसके बारे में जांच के लंबित रहने के दौरान ऐसी कालावधि के लिए जो उस आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, उसे संप्रेक्षण गृह या किसी सुरक्षित स्थान में भेजने के लिए आदेश करेगा ।

13. माता-पिता या संरक्षक अथवा परिवीक्षा अधिकारी को इत्तिला – जहां कोई किशोर गिरफ्तार किया जाता है वहां उस पुलिस थाने या विशेष किशोर पुलिस एकक का भारसाधक अधिकारी, जिसके पास वह किशोर लाया जाता है, गिरफ्तारी के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र –

(क) उस किशोर के माता-पिता या संरक्षक को, यदि उसका पता चलता है, ऐसी गिरफ्तारी की इत्तिला देगा और यह निदेश देगा कि वह उस बोर्ड के समक्ष उपस्थित हो जिसके समक्ष किशोर उपसंजात होगा ; और

(ख) परिवीक्षा अधिकारी को ऐसी गिरफ्तारी की इत्तिला देगा जिससे कि वह किशोर के पूर्ववृत्त और कौटुम्बिक पृष्ठभूमि के बारे में तथा अन्य ऐसी तात्विक परिस्थितियों के बारे में जानकारी अभिप्राप्त कर सके, जिनके बारे में यह संभाव्य है कि वे जांच करने में बोर्ड के लिए सहायक होंगी ।

14. किशोर के बारे में बोर्ड द्वारा जांच – जहां अपराध से आरोपित किशोर, बोर्ड के समक्ष पेश किया जाता है, वहां बोर्ड इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार जांच करेगा और वह किशोर के संबंध में ऐसा आदेश कर सकेगा जो वह ठीक समझे :

परन्तु इस धारा के अधीन कोई जांच इसके प्रारंभ होने की तारीख से चार मास की अवधि के भीतर जब तक कि बोर्ड द्वारा मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखने के पश्चात् और विशेष मामलों में ऐसे विस्तार के लिए लिखित में कारण लेखबद्ध करने के पश्चात् उक्त अवधि विस्तारित नहीं की गई हो, पूरी की जाएगी ।

15. आदेश जो किशोर के बारे में पारित किया जा सकेगा – (1) जहां बोर्ड का जांच करने पर यह समाधान हो जाता है कि किशोर ने अपराध किया है, वहां तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी तत्प्रतिकूल बात के होते हुए भी, वह बोर्ड, यदि वह ऐसा करना ठीक समझता है, तो, –

(क) किशोर को उसके विरुद्ध समुचित जांच करने के पश्चात् और माता-पिता या संरक्षक या किशोर को परामर्श देने के पश्चात् उपदेश या भर्त्सना के पश्चात् घर जाने देने का निदेश दे सकेगा ;

(ख) किशोर को सामूहिक परामर्श और ऐसे ही क्रियाकलापों में भाग लेने का निदेश दे सकेगा ;

(ग) किशोर को सामुदायिक सेवा करने का आदेश दे सकेगा ;

(घ) किशोर के माता-पिता को या स्वयं किशोर को जुर्माने का संदाय करने का आदेश दे सकेगा यदि वह चौदह वर्ष से अधिक आयु का है और धन अर्जित करता है ;

(ङ) किशोर को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने और माता-पिता, संरक्षक या अन्य योग्य व्यक्ति की देखरेख में रखने का निदेश, ऐसे माता-पिता, संरक्षक या अन्य योग्य व्यक्ति द्वारा किशोर के सदाचार और उसकी भलाई के लिए उस बोर्ड की अपेक्षानुसार प्रतिभू सहित या रहित, तीन वर्ष से अनधिक की कालावधि के लिए, बंधपत्र निष्पादित किए जाने पर, दे सकेगा ;

(च) किशोर को सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने और सदाचार और उसकी भलाई के लिए किसी योग्य संस्था की देखरेख में रखने का निदेश तीन वर्ष से अनधिक कालावधि के लिए दे सकेगा ;

(छ) किशोर को निम्नलिखित अवधि के लिए विशेष गृह को भेजने का निदेश देने वाला आदेश कर सकेगा, –

(i) सत्रह वर्ष से अधिक किन्तु अठारह वर्ष की आयु से कम के किशोर की दशा में दो वर्ष से अन्यून कालावधि के लिए ;

(ii) किसी अन्य किशोर की दशा में तब तक के लिए जब वह किशोर न रह जाए :

परन्तु बोर्ड, यदि उसका समाधान हो जाता है कि ऐसा करना अपराध की प्रकृति तथा मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समीचीन है, ठहरने की कालावधि को, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, ऐसी कालावधि तक, जैसी वह ठीक समझे, घटा सकेगा ।

(2) बोर्ड, किशोरों पर किसी परिवीक्षा अधिकारी या मान्यताप्राप्त स्वैच्छिक संगठन की मार्फत या अन्यथा सामाजिक अन्वेषण रिपोर्ट अभिप्राप्त करेगा और ऐसा आदेश पारित करने के पूर्व ऐसी रिपोर्ट के निष्कर्षों पर विचार करेगा ।

(3) जहां उपधारा (1) के खंड (घ), खंड (ङ) या खंड (च) के अधीन आदेश किया जाता है वहां बोर्ड, यदि उसकी यह राय है कि ऐसा करना किशोर के तथा लोकहित में समीचीन है, तो अतिरिक्त आदेश कर सकेगा कि विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर आदेश में नामित परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में, तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी कालावधि के दौरान रहेगा, जो उस आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकेगा जिन्हें वह विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर के सम्यक् पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझे :

परन्तु यदि तत्पश्चात् किसी समय बोर्ड को परिवीक्षा अधिकारी से रिपोर्ट की प्राप्ति पर या अन्यथा यह प्रतीत होता है कि विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर पर्यवेक्षण की कालावधि के दौरान सदाचारी नहीं रहा है अथवा वह योग्य संस्था, जिसकी देखरेख में किशोर को रखा गया था, अब किशोर का सदाचार या भलाई सुनिश्चित करने के लिए असमर्थ है या रजामंद नहीं है तो वह ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर को विशेष गृह को भेजे जाने का आदेश कर सकेगा :

(4) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करते समय बोर्ड किशोर

को तथा, यथास्थिति, माता-पिता, संरक्षक या अन्य योग्य व्यक्ति या योग्य संस्था को, जिसकी देखरेख में किशोर रखा गया है, आदेश के निबंधन और शर्तें समझा देगा और तत्काल उस पर्यवेक्षण आदेश की प्रतिलिपि ; यथास्थिति, किशोर के माता-पिता, संरक्षक या अन्य योग्य व्यक्ति या योग्य संस्था को और यदि कोई प्रतिभू हों तो उन्हें और परिवीक्षा अधिकारी को देगा ।

16. वे आदेश जो किशोर के विरुद्ध पारित न किए जा सकेंगे – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी तत्प्रतिकूल बात के होते हुए भी, किसी विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर को मृत्यु या आजीवन कारावास का दंडादेश नहीं दिया जाएगा, और न जुर्माना देने में व्यतिक्रम होने पर या प्रतिभूति देने में व्यतिक्रम होने पर कारागार के सुपुर्द किया जाएगा :

परन्तु जहां ऐसे किशोर ने, जिसने सोलह वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है, कोई अपराध किया है और बोर्ड का समाधान हो जाता है कि किया गया अपराध ऐसी गंभीर प्रकृति का है या उसका आचरण और आचार ऐसा रहा है कि यह उसके हित में या विशेष गृह में के अन्य किशोरों के हित में नहीं होगा कि उसे ऐसे विशेष गृह भेजा जाए और यह कि इस अधिनियम के अधीन उपबंधित अन्य अध्युपायों में से कोई भी उपयुक्त या पर्याप्त नहीं है वहां बोर्ड, विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर को ऐसे स्थान में और ऐसी रीति से, जिसे वह ठीक समझे, सुरक्षित स्थान में रखे जाने का आदेश कर सकेगा और राज्य सरकार के आदेशार्थ मामले की रिपोर्ट करेगा ।

(2) बोर्ड से उपधारा (1) के अधीन रिपोर्ट की प्राप्ति पर राज्य सरकार, किशोर के बारे में ऐसे इंतजाम कर सकेगी जैसे वह उचित समझे और ऐसे किशोर को ऐसे स्थान में और ऐसी शर्तों पर, जिन्हें वह ठीक समझे, निरुद्ध रखे जाने का आदेश कर सकेगी :

परन्तु इस प्रकार आदिष्ट निरोध की कालावधि कारावास की उस अधिकतम कालावधि से अधिक नहीं होगी जिसके लिए वह किशोर उस किए गए अपराध के लिए दंडादिष्ट किया जा सकता था ।

17. दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 8 के अधीन की कार्यवाही का किशोर के विरुद्ध सक्षम न हो सकना – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी तत्प्रतिकूल बात के होते हुए भी, किसी किशोर के विरुद्ध उक्त संहिता के अध्याय 8 के अधीन न कोई कार्यवाही संस्थित की जाएगी और न ही कोई आदेश किया जाएगा ।

18. किशोर और ऐसे व्यक्ति की, जो किशोर नहीं है संयुक्त कार्यवाही का न होना – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 223 में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी कोई किशोर किसी ऐसे व्यक्ति के साथ जो किशोर नहीं है किसी अपराध के लिए आरोपित या विचारित नहीं किया जाएगा ।

(2) यदि कोई किशोर, किसी ऐसे अपराध का अभियुक्त है जिसके लिए वह किशोर और कोई अन्य व्यक्ति, जो किशोर नहीं है, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 223 के अधीन या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन, उस दशा में जब कि उपधारा (1) में अंतर्विष्ट प्रतिषेध न होता, एक साथ आरोपित और विचारित किया जाता तो अपराध का संज्ञान करने वाला बोर्ड उस किशोर और अन्य व्यक्ति के पृथक् विचारणों का निदेश देगा ।

19. दोषसिद्धि से होने वाली निरर्हताओं का हटाया जाना – (1) किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई किशोर, जिसने कोई अपराध किया है और जिसके बारे में अधिनियम के उपबंधों के अधीन कार्रवाई की जा चुकी है, किसी ऐसी निरर्हता के, यदि कोई हो, अधीन नहीं होगा ; जो ऐसी विधि के अधीन अपराध की दोषसिद्धि से संलग्न हो ।

(2) बोर्ड यह निदेश देते हुए आदेश देगा कि ऐसी दोषसिद्धि के सुसंगत अभिलेख, यथास्थिति, अपील की अवधि या ऐसी युक्तियुक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् जो नियमों में विहित की जाए, हटा लिए जाएंगे ।

20. लंबित मामलों के बारे में विशेष उपबंध – इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, किसी क्षेत्र के न्यायालय में, उस तारीख को जबकि यह अधिनियम उस क्षेत्र में प्रवृत्त होता है ; लंबित किशोर विषयक सब कार्यवाहियां उस न्यायालय में इस प्रकार चालू रखी जाएंगी, मानो यह अधिनियम पारित नहीं किया गया है और यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि किशोर ने अपराध किया है तो वह उस निष्कर्ष को अभिलिखित करेगा और उस किशोर के बारे में कोई दंडादेश करने के बजाय उस किशोर को बोर्ड को भेज देगा, जो उस किशोर के बारे में आदेश इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ऐसे करेगा मानों इस अधिनियम के अधीन जांच पर उसका समाधान हो गया है कि किशोर ने वह अपराध किया है ।

21. इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में अंतर्ग्रस्त किशोर के नाम आदि के प्रकाशन को प्रतिषिद्ध किया जाना – (1) किसी

सामाचारपत्र, पत्रिका या समाचार पृष्ठ या दृश्य माध्यम में इस अधिनियम के अधीन विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर के बारे में किसी जांच की कोई रिपोर्ट किशोर का नाम, पता या विद्यालय या अन्य विशिष्टियां, जिनसे किशोर का पहचाना जाना प्रकल्पित हो, प्रकट नहीं की जाएंगी और ना ही ऐसे किशोर का कोई चित्र ही प्रकाशित किया जाएगा :

परन्तु जांच करने वाला प्राधिकारी ऐसा प्रकटन ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे तब अनुज्ञात कर सकेगा, जब उसकी राय में ऐसा प्रकटन किशोर के हित में है ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करने वाला कोई व्यक्ति जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

22. निकल भागे किशोर की बाबत उपबंध – तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में इसके प्रतिकूल किसी बात के होते हुए भी, कोई पुलिस अधिकारी, विधि का उल्लंघन करने वाले ऐसे किशोर का बिना वारंट के प्रभार ले सकेगा जो विशेष गृह या संप्रेक्षण गृह या किसी ऐसे व्यक्ति की देखरेख से भाग निकला है जिसके अधीन वह इस अधिनियम के अधीन रखा गया था और उसे, यथास्थिति, उस विशेष गृह या संप्रेक्षण गृह या उस व्यक्ति को वापस किया जाएगा और उस किशोर के विरुद्ध ऐसे भाग निकलने के कारण कोई कार्यवाही संस्थित नहीं की जाएगी, किन्तु विशेष गृह या संप्रेक्षण गृह या वह व्यक्ति उस बोर्ड को सूचना देने के पश्चात् जिसने किशोर के संबंध में आदेश पारित किया था, किशोर के संबंध में ऐसे कदम उठा सकेगा जो इस अधिनियम के अधीन आवश्यक प्रतीत हो ।

23. किशोर या बालक के प्रति क्रूरता के लिए दंड – जो कोई किशोर या बालक का वास्तविक भरसाधन या उस पर नियंत्रण रखते हुए ऐसी रीति से, जिससे उस किशोर या बालक को अनावश्यक मानसिक या शारीरिक कष्ट होना संभाव्य हो उस किशोर या बालक पर हमला करेगा, उसका परित्याग करेगा, उसे उच्छन्न करेगा या जानबूझकर उसकी उपेक्षा करेगा या उस पर हमला या उसका परित्यक्त, उच्छन्न या उपेक्षित किया जाना कारित या उपाप्त करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से दंडनीय होगा ।

24. भीख मांगने के लिए किशोर या बालक का नियोजन – (1) जो कोई, भीख मांगने के प्रयोजन के लिए किसी किशोर या बालक को नियोजित या प्रयुक्त करता है या किसी किशोर या बालक से भीख

मंगवाएगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी, दंडनीय होगा ।

(2) जो कोई, किशोर या बालक का वास्तविक भारसाधन या उस पर नियंत्रण रखते हुए, उपधारा (1) के अधीन दंडनीय अपराध का दुष्प्रेरण करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से भी, दंडनीय होगा ।

25. किशोर या बालक को मादक लिकर या स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ देने के लिए शास्ति – जो कोई, सम्यक् रूप से अर्हित चिकित्सा व्यवसायी के आदेश या बीमारी से अन्यथा किसी किशोर या बालक को लोक-स्थान में कोई मादक लिकर या कोई स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ देगा या दिलवाएगा वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से भी, दंडनीय होगा ।

26. किशोर या बालक कर्मचारी का शोषण – जो कोई, किसी परिसंकटमय नियोजन के प्रयोजन के लिए, किशोर या बालक को दृश्यमानतः उपाप्त करेगा या किशोर के उपार्जनों को विधारित करेगा या उसके उपार्जन स्वयं अपने प्रयोजन के लिए उपयोग में लाएगा वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से भी, दंडनीय होगा ।

27. विशेष अपराध – धारा 23, धारा 24, धारा 25 और धारा 26 के अधीन दंडनीय अपराध संज्ञेय होंगे ।

28. वैकल्पिक दंड – जहां कोई कार्य या लोप ऐसा अपराध गठित करता है जो इस अधिनियम के अधीन या किसी केन्द्रीय या राज्य अधिनियम के अधीन भी दंडनीय है, वहां तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे अपराध का दोषी पाया गया अपराधी ऐसे अधिनियम के अधीन हो, जो किसी दंड का उपबंध करता है, ऐसे दंड का भागी होगा जो मात्रा में अधिक हो ।

अध्याय 3
देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद बालक

29. बाल कल्याण समिति – (1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, अधिसूचना में विनिर्दिष्ट प्रत्येक जिले या जिलों के समूह के लिए इस अधिनियम के अधीन देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद

बालक के संबंध में एक या अधिक बाल कल्याण समितियों का, ऐसी समितियों को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए गठन कर सकेगी ।

(2) समिति, एक अध्यक्ष और चार ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगी जिन्हें नियुक्त करना राज्य सरकार ठीक समझे और उनमें कम से कम एक महिला होगी और दूसरा अन्य, बालकों से संबंधित विषयों का विशेषज्ञ होगा ।

(3) अध्यक्ष और सदस्यों की अर्हताएं और पदावधि जिसके लिए उन्हें नियुक्त किया जाए, ऐसी होगी जो विहित की जाए ।

(4) समिति के किसी सदस्य की नियुक्ति, राज्य सरकार द्वारा जांच किए जाने के पश्चात्, समाप्त की जा सकेगी, यदि –

(i) वह इस अधिनियम के अधीन निहित की गई शक्ति के दुरुपयोग का दोषी पाया गया हो ;

(ii) वह किसी ऐसे अपराध का सिद्धदोष ठहराया गया हो जिसमें नैतिक अधमता अंतर्वलित है, और ऐसी दोषसिद्धि को उलटा नहीं गया है या ऐसे अपराध की बाबत उसे पूर्ण क्षमा प्रदान नहीं की गई है ;

(iii) वह, किसी विधिमान्य कारण के बिना लगातार तीन मास तक, समिति की कार्यवाहियों में उपस्थित रहने में असफल रहता है या किसी वर्ष में कम से कम तीन चौथाई बैठकों में उपस्थिति रहने में असफल रहता है ।

(5) समिति, मजिस्ट्रेट की न्यायपीठ के रूप में कार्य करेगी और उसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) द्वारा यथास्थिति, महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट को प्रदत्त शक्तियां प्राप्त होंगी ।

30. समिति के संबंध में प्रक्रिया, आदि – (1) समिति अपनी बैठक ऐसे समय पर और अपनी बैठकों में कारबार के संव्यवहार की बाबत प्रक्रिया के ऐसे नियमों का अनुपालन करेगी जो विहित किए जाएं ।

(2) देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बालक को सुरक्षित अभिरक्षा में रखे जाने के लिए या अन्यथा तब जब समिति सत्र में न हो, व्यष्टिक सदस्य के सामने पेश किया जा सकेगा ।

(3) किसी अंतरिम विनिश्चय के समय समिति के सदस्यों के बीच राय की किसी भिन्नता की दशा में, बहुमत की राय अभिभावी होगी किन्तु जहां कोई ऐसा बहुमत नहीं है वहां अध्यक्ष की राय अभिभावी होगी ।

(4) उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, समिति, समिति के किसी सदस्य के अनुपस्थित रहते हुए भी कार्रवाई कर सकेगी और समिति द्वारा किया गया कोई आदेश, कार्यवाही के किसी प्रक्रम के दौरान केवल किसी सदस्य की अनुपस्थिति के आधार पर ही अविधिमान्य नहीं होगा ।

31. समिति की शक्तियां – (1) समिति का बालकों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास के मामलों का निपटारा करने तथा साथ ही साथ उनकी मूलभूत आवश्यकताओं और मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए उपबंध करने का अंतिम प्राधिकार होगा ।

(2) जहां किसी क्षेत्र के लिए समिति का गठन किया गया है, वहां तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु अधिनियम में अभिव्यक्त रूप में जैसा उपबंधित है, उसके सिवाय, ऐसी समिति की देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बालकों से संबंधित, इस अधिनियम के अधीन सभी कार्यवाहियों के संबंध में अनन्यतः कार्य करने की शक्ति होगी ।

32. समिति के समक्ष पेश किया जाना – (1) देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद किसी बालक को निम्नलिखित किसी व्यक्ति द्वारा समिति के समक्ष पेश किया जा सकेगा –

(i) कोई पुलिस अधिकारी या विशेष किशोर पुलिस एकक या कोई पदाभिहित अधिकारी ;

(ii) कोई लोक सेवक ;

(iii) एक रजिस्ट्रीकृत स्वैच्छिक संगठन, चाइल्ड लाइन या ऐसे अन्य स्वैच्छिक संगठन या किसी अभिकरण द्वारा जिन्हें राज्य सरकार द्वारा मान्यता दी जाए ;

(iv) राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत कोई सामाजिक कार्यकर्ता या लोक भावना से युक्त नागरिक ; या

(v) स्वयं बालक द्वारा ।

(2) राज्य सरकार जांच के लंबित रहने के दौरान पुलिस को और

समिति को रिपोर्ट देने की रीति का और बालक को बालगृह में भेजने और सौंपने की रीति का उपबंध करने के लिए इस अधिनियम से संगत नियम बना सकेगी ।

33. जांच – (1) धारा 32 के अधीन रिपोर्ट की प्राप्ति पर समिति या कोई पुलिस अधिकारी या विशेष किशोर पुलिस एकक या अभिहित पुलिस अधिकारी विहित रीति से जांच करेगा और समिति अपनी स्वयं की या धारा 32 की उपधारा (1) में वर्णित किसी व्यक्ति या अभिकरण से प्राप्त रिपोर्ट पर बालक को सामाजिक कार्यकर्ता या बाल कल्याण अधिकारी द्वारा शीघ्र जांच के लिए बालगृह भेजने के लिए आदेश करेगी ।

(2) इस धारा के अधीन जांच को, आदेश की प्राप्ति के चार मास के भीतर या ऐसी कम अवधि के भीतर जो समिति द्वारा नियत की जाए, पूरा किया जाएगा :

परन्तु जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए समय को, ऐसी अवधि के लिए बढ़ाया जा सकेगा जिसे समिति, परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और लेखबद्ध कारणों के आधार पर अवधारित करे ।

(3) जांच के पूरा हो जाने के पश्चात् यदि समिति की यह राय है कि उक्त बालक का कोई कुटुम्ब या उसका दृश्यमान सहारा नहीं है, तो वह बालक को तब तक बालगृह या आश्रयगृह में रहने की अनुज्ञा दे सकेगी जब तक पुनर्वास नहीं हो जाता या जब तक वह अठारह वर्ष की आयु नहीं प्राप्त कर लेता है ।

34. बालगृह – (1) राज्य सरकार या तो स्वयं या स्वैच्छिक संगठनों से सहयोग करके किसी जांच के लंबित होने के दौरान देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बालक को रखने के लिए और तत्पश्चात् उनकी देखरेख, उपचार, शिक्षा, प्रशिक्षण, विकास और पुनर्वास के लिए, यथास्थिति, प्रत्येक जिले में या जिलों के समूह में बालगृह की स्थापना और उनका रखरखाव कर सकेगी ।

(2) राज्य सरकार इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा, बालगृहों के प्रबंध की बाबत जिसके अंतर्गत उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के मानक और प्रकृति भी है तथा उन परिस्थितियों के लिए जिनके अधीन वह रीति जिसमें किसी स्वैच्छिक संगठन को बालगृह का प्रमाणपत्र या मान्यता प्रदान की जा सकेगी या वापस ली जा सकेगी, उपबंध कर सकेगी ।

35. निरीक्षण – (1) राज्य सरकार, यथास्थिति, राज्य, किसी जिले और नगर के लिए ऐसी अवधि और ऐसे प्रयोजनों के लिए जो विहित किए जाएं, बालगृहों के लिए निरीक्षण समितियां नियुक्त कर सकेगी (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् निरीक्षण समितियां कहा गया है) ।

(2) किसी राज्य, जिले या किसी नगर की निरीक्षण समिति में राज्य सरकार, स्थानीय प्राधिकरण समिति, स्वैच्छिक संगठनों से उतनी संख्या में प्रतिनिधि होंगे और ऐसे अन्य चिकित्सा विशेषज्ञ और सामाजिक कार्यकर्ता होंगे जो विहित किए जाएं ।

36. सामाजिक संपरीक्षा – केन्द्रीय सरकार, या कोई राज्य सरकार, बालगृहों के कृत्यों का ऐसी अवधि पर और ऐसे व्यक्तियों और संस्थाओं की मार्फत जो उस सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं, मानीटर और मूल्यांकन कर सकेगी ।

37. आश्रयगृह – (1) राज्य सरकार, प्रतिष्ठित और समर्थ स्वैच्छिक संगठनों को मान्यता प्रदान कर सकेगी और उन्हें किशोरों या बालकों के लिए, जितने अपेक्षित हों उतने आश्रयगृहों के गठन और उनके प्रशासन के लिए सहायता प्रदान कर सकेगी ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट आश्रयगृह, ऐसे व्यक्तियों के, जो धारा 32 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट हैं, माध्यम से ऐसे गृहों में लाए गए जरूरतमंद बालकों की तत्कालिक मदद के लिए मिलन केन्द्र के रूप में कार्य करेंगे ।

(3) आश्रयगृहों में, जहां तक संभव हो, ऐसी सुविधाएं होंगी, जो नियमों द्वारा विहित की जाएं ।

38. अंतरण – (1) यदि जांच के दौरान यह पाया जाता है कि बालक समिति की अधिकारिता के बाहर के स्थान से है, तो समिति, बालक के निवास के स्थान पर अधिकरिता वाले सक्षम प्राधिकारी को उस बालक को अंतरित करने का आदेश करेगी ।

(2) ऐसे किशोर या बालक को उस गृह के कर्मचारिवृन्द की अनुरक्षा में ले जाया जाएगा, जिसमें वह मूल रूप से ठहराया गया है ।

(3) राज्य सरकार, बालक को संदत्त किए जाने वाले यात्रा भत्ते के लिए उपबंध करने के लिए नियम बना सकेगी ।

39. प्रत्यावर्तन – (1) किसी बालगृह या आश्रयगृह का प्राथमिक उद्देश्य बालक का प्रत्यावर्तन और संरक्षण होगा ।

(2) यथास्थिति, बालगृह या आश्रयगृह, ऐसे कदम उठाएंगे, जो अस्थायी या स्थायी रूप से अपने कुटुम्ब के वातावरण से वंचित बालक के प्रत्यावर्तन और संरक्षण के लिए आवश्यक समझे जाते हैं, जहां ऐसा बालक, यथास्थिति, बालगृह या आश्रयगृह की देखरेख और संरक्षण के अधीन है ।

(3) समिति को देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद किसी बालक को उसके, यथास्थिति, माता-पिता, संरक्षक, उचित व्यक्ति और उचित संस्था को प्रत्यावर्तित करने की शक्ति होगी और वह उन्हें उपयुक्त निदेश देगी ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए "बालक का प्रत्यावर्तन" से, –

(क) माता-पिता ;

(ख) दत्तक माता-पिता ;

(ग) पोषक माता-पिता,

को प्रत्यावर्तन अभिप्रेत है ।

अध्याय 4
पुनर्वास और समाज में पुनः मिलाना

40. पुनर्वास और समाज में पुनः मिलाने की प्रक्रिया – बालक का पुनर्वास और समाज में पुनः मिलाना बालगृह या विशेष गृह में बालक के ठहरने के दौरान आरंभ होगा और बालकों के पुनर्वास और समाज में पुनः मिलाना आनुकल्पिक रूप से (i) दत्तक ग्रहण द्वारा, (ii) पोषक देखरेख, (iii) प्रायोजकता, और (iv) पश्चात्‌वर्ती देखरेख संगठन में बालक को भेजकर किया जाएगा ।

41. दत्तक ग्रहण – (1) बालकों की देखरेख करने और संरक्षण प्रदान करने का प्राथमिक उत्तरदायित्व उसके कुटुम्ब का होगा ।

(2) ऐसे बालक के पुनर्वास के लिए जो अनाथ, परित्यक्त, उपेक्षित और संस्थागत और गैर-संस्थागत तरीकों से दुर्व्यवहार के शिकार हैं, दत्तक ग्रहण का सहारा लिया जाएगा ।

(3) राज्य सरकार द्वारा, समय-समय पर, जारी किए गए दत्तक ग्रहण के संबंध में विभिन्न मार्गदर्शक सिद्धांतों के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए बोर्ड, दत्तक ग्रहण में बालकों को देने और ऐसे अन्वेषण करने के लिए सशक्त किया जाएगा जो इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा, समय-समय पर, जारी किए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार दत्तक ग्रहण में बालकों को दिए जाने के लिए अपेक्षित हो ।

(4) बालगृह या राज्य सरकार द्वारा अनाथों के लिए चलाई जाने वाली संस्थाओं को, उपधारा (3) के अधीन जारी मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार दत्तक ग्रहण के लिए ऐसे बालकों के संवीक्षण और नियोजन दोनों के लिए दत्तक अभिकरणों के रूप में मान्यता प्रदान की जाएगी ।

(5) कोई भी बालक दत्तक ग्रहण के लिए तब तक –

(क) जब तक समिति के दो सदस्य परित्यक्त बालकों की दशा में घोषणा नहीं कर देते कि बालक विधिक रूप से सौंपने के लिए स्वतंत्र हैं,

(ख) अभ्यर्पित बालकों की दशा में माता-पिता के पुनःविचार के लिए दो मास की अवधि बीत न गई हो, और

(ग) उस बालक की दशा में जो अपनी सहमति को समझ और अभिव्यक्त कर सकता है, उसकी सहमति के बिना,

प्रस्थापित नहीं किया जाएगा ।

(6) बोर्ड, बालक को दत्तक ग्रहण में, –

(क) एकल माता या पिता को, और

(ख) जीवित स्वयं से उत्पन्न (जैविक) पुत्रों या पुत्रियों की संख्या को ध्यान में रखे बिना समानलिंग के बालक को दत्तक ग्रहण करने के लिए माता-पिता को,

दिए जाने के लिए अनुज्ञात कर सकेगा ।

42. पोषण देखरेख – (1) ऐसे शिशुओं की, जिन्हें अन्ततोगत्वा दत्तक में दिया जाना है, अस्थायी रूप से रखे जाने के लिए पोषण देखरेख की जा सकेगी ।

(2) पोषण देखरेख के दौरान, बालक को किसी अल्पावधि या बढ़ाई

गई अवधि के लिए किसी दूसरे कुटुंब के साथ रखा जा सकेगा, जो उन परिस्थितियों पर निर्भर करेगी जहां, बालक के अपने माता-पिता प्रायः नियमित रूप से और कभी-कभी पुनर्वास के पश्चात् जहां से बालक अपने-अपने घरों को वापस जा सकेंगे, मिल सकेंगे ।

(3) राज्य सरकार, बालकों की पोषण देखरेख कार्यक्रम की स्कीम के कार्यान्वयन के प्रयोजनों के लिए नियम बना सकेगी ।

43. प्रवर्तकता – (1) प्रवर्तकता कार्यक्रम में, चिकित्सीय, पौषणिक, शैक्षणिक और जीवन स्तर में सुधार की दृष्टि से बालकों की अन्य जरूरतों को पूरा करने के लिए कुटुंबों, बालगृहों और विशेषगृहों को अनुपूरक सहयोग देने का उपबंध किया जा सकेगा ।

(2) राज्य सरकार, बालकों की व्यष्टिक प्रवर्तकता, समूह प्रवर्तकता या सामुदायिक प्रवर्तकता जैसी प्रवर्तकता की विभिन्न स्कीमों के कार्यान्वयन के प्रयोजनों के लिए नियम बना सकेगी ।

44. पश्चात्वर्ती देखरेख संगठन – राज्य सरकार, इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा निम्नलिखित के लिए उपबंध कर सकेगी –

(क) पश्चात्वर्ती देखरेख संगठनों की स्थापना और मान्यता तथा इस अधिनियम के अधीन उनके द्वारा निर्वहन किए जा सकने वाले कृत्य ;

(ख) किशोरों या बालकों की, उनके विशेषगृहों या बालगृहों को छोड़ने के पश्चात् देखरेख के प्रयोजन के लिए और उनको ईमानदार, कर्मठ और उपयोगी जीवन बिताने के लिए समर्थ बनाने के प्रयोजन के लिए ऐसे पश्चात्वर्ती देखरेख कार्यक्रम की कोई स्कीम ;

(ग) प्रत्येक किशोर या बालक की बाबत, उसको विशेषगृहों, बालगृहों से निर्मुक्त किए जाने के पूर्व परिवीक्षा अधिकारी या उस सरकार द्वारा नियुक्त किसी अन्य अधिकारी द्वारा ऐसे किशोर या बालक की पश्चात्वर्ती देखरेख की आवश्यकता और उसकी प्रकृति, ऐसी पश्चात्वर्ती देखरेख की अवधि उसके पर्यवेक्षण के संबंध में एक रिपोर्ट तैयार करने और प्रस्तुत करने और प्रत्येक किशोर या बालक की प्रगति की बाबत इस प्रयोजन के लिए नियुक्त परिवीक्षा अधिकारी या अन्य किसी अधिकारी द्वारा प्रस्तुत करना ;

(घ) ऐसे पश्चात्वर्ती देखरेख संगठनों द्वारा बनाई रखी जाने वाली सेवाओं के मानक और प्रकृति ;

(ङ) ऐसे अन्य विषय जो किशोर या बालक की पश्चात्वर्ती देखरेख के कार्यक्रम की स्कीम के कार्यान्वयन करने के लिए आवश्यक हो :

परन्तु इस धारा के अधीन बनाया गया कोई नियम ऐसे किशोर या बालक के पश्चात्वर्ती देखरेख संगठन में तीन वर्ष से अधिक तक ठहरने के लिए उपबंध नहीं करेंगे :

परन्तु यह और कि सत्रह वर्ष से अधिक परन्तु अठारह वर्ष के कम का किशोर या बालक बीस वर्ष की आयु प्राप्त करने तक पश्चात्वर्ती देखरेख संगठन में रह सकेगा ।

45. संयोजन और समन्वय – राज्य सरकार, बालक के पुनर्वास और उसे समाज में पुनः मिलाने को सुकर बनाने के लिए विभिन्न सरकारी, गैर-सरकारी, निगमित और अन्य सामुदायिक अभिकरणों के बीच प्रभावकारी संयोजन सुनिश्चित करने के लिए नियम बना सकेगी ।

(क्रमशः........... आगामी अंक देखें)

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ और जून, 2010 के अंक से विधि शब्दावली से उद्धृत अंग्रेजी-हिन्दी पारिभाषिक शब्दार्थ और उनके भिन्न-भिन्न संदर्भों में पर्यायों को भी पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं का वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105